बी.एड. प्रथम वर्ष

अधिगम और शिक्षण

(LEARNING AND TEACHING)

GEDE-03

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल
MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Mamta Bakliwal
   Professor
   Rajiv Gandhi College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (M.P.)

3. Dr. Hemlata Dinkar
   HOD, B.Ed.
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (M.P.)

4. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Mamta Bakliwal
   Professor
   Rajiv Gandhi College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P)

COURSE WRITERS

Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Department of Economics, CCS University, Meerut
Units (1.0-1.1, 1.2, 1.3-1.3.1, 1.3.2, 1.3.3, 1.4-1.9, 2.0, 2.1, 2.2, 2.4.2, 2.5.3-2.10, 3.0-3.1, 3.2, 3.2.2, 3.5-3.9, 4.0-4.1, 4.2, 4.2.1, 4.3, 4.5, 4.5.1, 4.6-4.10)
Dr Aradhana Mani, Assistant Professor, Dept of Elementary Education, Mata Sundari College, Delhi University
Units (2.3-2.4.1)
SS Chauhan, Professor and Dean (Retd.),Faculty of Education, Himachal Pradesh University, Shimla
Units (2.5-2.5.1, 3.2.1, 3.3-3.3.1)
J.C. Aggarwal, Deputy Director of Education, (Retd.) Directorate of Education, Delhi
Units (2.5.2)
Dr. Suman Lata, Lecturer, Department of Economics, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modi Nagar, Ghaziabad
Units (3.2.3, 4.3.1-4.3.2, 4.4, 4.5.2)
Dr. Sitesh Saraswat, Reader, Department of Education, Bhagwati College of Education, Meerut
Units (3.3.2)
Dr. Sushma Suri, Assistant Professor, Department of Psychology, Jamia Millia Islamia
Units (3.4)
Dr Pratibha Sharma, Associate Professor, M.Ed. Department, Bareilly College, Bareilly, U.P.
Units (4.2.2)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

अधिगम और शिक्षण

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 : अधिगम की अवधारणा – अधिगम : अधिगम का अर्थ, परिभाषा और प्रकृति – अधिगम को प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति और कारक; संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर – संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर – अधिगम में सीखने की कठिनाइयां और अधिगम अक्षमता – विशिष्ट और समावेशी शिक्षा की अवधारणा; शिक्षण–अधिगम के ज्ञानात्मक आधार – विषय वस्तु का ज्ञान – तथ्यात्मक ज्ञान – प्रक्रियात्मक ज्ञान – अधिगम परिस्थितियां ज्ञान के लिए मूल आधार – ज्ञान प्राप्ति के सामान्य सिद्धांत एवं शिक्षण युक्तियां	**इकाई 1** : अधिगम और ज्ञान **(पृष्ठ 3–81)**
इकाई–2 : अधिगम के संज्ञानात्मक और व्यवहारवादी विचार – अधिगम के संज्ञानात्मक विचार – अधिगम के व्यवहारवादी विचार – अंतर्दृष्टि का सिद्धांत और इसका महत्व; पियाजे का ज्ञान क्रिया अधिगम का रचनावादी दृष्टिकोण एवं वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद – पियाजे का ज्ञान का रचनावादी दृष्टिकोण – वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद; अधिगम के बारे में ब्रूनर और गेने के विचार – अधिगम के बारे में ब्रूनर के विचार – अधिगम के बारे में गेने के विचार; स्मृति, विस्मृति, विस्मृति के सिद्धांत, दीर्घ और अल्पकालिक स्मृति – स्मृति – विस्मृति या विस्मरण – विस्मृति या विस्मरण के सिद्धांत – अल्पकालिक और दीर्घ स्मृति	**इकाई 2** : अधिगम के दृष्टिकोण **(पृष्ठ 83–158)**
इकाई–3 : अभिप्रेरणा की अवधारणा – आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरणा – शिक्षार्थी की आवश्यकता और अभिप्रेरणा बढ़ाना – सहयोग और प्रतिस्पर्धा की भूमिका; बुद्धिमता की अवधारणा – विविध क्षमताएं – शिक्षण अधिगम के लिए आकलन और महत्व; रचनात्मकता की अवधारणा – रचनात्मकता का मापदंड – शिक्षार्थियों में रचनात्मकता को बढ़ावा देने की रणनीतियां	**इकाई 3** : अभिप्रेरणा अभिसरण और विभिन्न अधिगम **(पृष्ठ 159–209)**
इकाई–4 : कक्षा के अंदर वैयक्तिक अंतर और अनौपचारिक व्यवस्था – सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर शिक्षार्थियों में विविधता – शिक्षार्थियों की मातृभाषा और अनुदेशन की भाषा; छात्रों की शिक्षण शैली और सीखने की शैली के संदर्भ में शिक्षक की जटिल भूमिका – शिक्षक के निजी और व्यावसायिक गुण – शिक्षण अध्ययन में शिक्षक की ज्ञान–संचारक, प्रतिमान, सुविधाकारक, वार्ताकारक एवं सह–शिक्षार्थी के रूप में भूमिका; शिक्षक केंद्रित शिक्षण और शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षण के दृष्टिकोण; वर्तमान शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण और प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग – वर्तमान शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का परिचय – प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग	**इकाई 4** : अधिगम की विविधता और शिक्षण **(पृष्ठ 211–274)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 अधिगम और ज्ञान **3–81**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अधिगम की अवधारणा
  1.2.1 अधिगम : अधिगम का अर्थ, परिभाषा और प्रकृति
  1.2.2 अधिगम को प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति और कारक
1.3 संज्ञानात्मक में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर
  1.3.1 संज्ञानात्मक में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर
  1.3.2 अधिगम में सीखने की कठिनाइयां और अधिगम अक्षमता
  1.3.3 विशिष्ट और समावेशी शिक्षा की अवधारणा
1.4 शिक्षण–अधिगम के ज्ञानात्मक आधार
  1.4.1 विषय वस्तु का ज्ञान
  1.4.2 तथ्यात्मक ज्ञान
  1.4.3 प्रक्रियात्मक ज्ञान
  1.4.4 अधिगम परिस्थितियां ज्ञान के लिए मूल आधार
  1.4.5 ज्ञान प्राप्ति के सामान्य सिद्धांत एवं शिक्षण युक्तियां
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 अधिगम के दृष्टिकोण **83–158**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अधिगम के संज्ञानात्मक और व्यवहारवादी विचार
  2.2.1 अधिगम के संज्ञानात्मक विचार
  2.2.2 अधिगम के व्यवहारवादी विचार
  2.2.3 अंतर्दृष्टि का सिद्धांत और इसका महत्व
2.3 पियाजे का ज्ञान क्रिया अधिगम का रचनावादी दृष्टिकोण एवं वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद
  2.3.1 पियाजे का ज्ञान का रचनावादी दृष्टिकोण
  2.3.2 वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद
2.4 अधिगम के बारे में ब्रूनर और गेने के विचार
  2.4.1 अधिगम के बारे में ब्रूनर के विचार
  2.4.2 अधिगम के बारे में गेने के विचार
2.5 स्मृति, विस्मृति, विस्मृति के सिद्धांत, दीर्घ और अल्पकालिक स्मृति
  2.5.1 स्मृति
  2.5.2 विस्मृति या विस्मरण
  2.5.3 विस्मृति या विस्मरण के सिद्धांत
  2.5.4 अल्पकालिक और दीर्घ स्मृति
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 अभिप्रेरणा अभिसरण और विभिन्न अधिगम **159–209**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 अभिप्रेरणा की अवधारणा
3.2.1 आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरणा
3.2.2 शिक्षार्थी की आवश्यकता और अभिप्रेरणा बढ़ाना
3.2.3 सहयोग और प्रतिस्पर्धा की भूमिका
3.3 बुद्धिमता की अवधारणा
3.3.1 विविध क्षमताएं
3.3.2 शिक्षण अधिगम के लिए आकलन और महत्व
3.4 रचनात्मकता की अवधारणा
3.4.1 रचनात्मकता का मापदंड
3.4.2 शिक्षार्थियों में रचनात्मकता को बढ़ावा देने की रणनीतियां
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 अधिगम की विविधता और शिक्षण **211–274**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 कक्षा के अंदर वैयक्तिक अंतर और अनौपचारिक व्यवस्था
4.2.1 सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर शिक्षार्थियों में विविधता
4.2.2 शिक्षार्थियों की मातृभाषा और अनुदेशन की भाषा
4.3 छात्रों की शिक्षण शैली और सीखने की शैली के संदर्भ में शिक्षक की जटिल भूमिका
4.3.1 शिक्षक के निजी और व्यावसायिक गुण
4.3.2 शिक्षण अध्ययन में शिक्षक की ज्ञान–संचारक, प्रतिमान, सुविधाकारक, वार्ताकारक एवं सह–शिक्षार्थी के रूप में भूमिका
4.4 शिक्षक केंद्रित शिक्षण और शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षण के दृष्टिकोण
4.5 वर्तमान शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण और प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग
4.5.1 वर्तमान शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का परिचय
4.5.2 प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'अधिगम और शिक्षण' विश्वविद्यालय द्वारा बी.एड. (प्रथम वर्ष) के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप तैयार की गई है।

अधिगम एवं शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें बहुत से कारक शामिल होते हैं। सीखने वाला जिस तरीके से अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ते हुए नया ज्ञान, आचार और कौशल को समाहित करता है, ताकि उसके सीखने के अनुभवों में विस्तार हो सके, वैसे ही ये सारे कारक आपस में संवाद की स्थिति में आते रहते हैं।

पिछली सदी के दौरान शिक्षण के क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोण उभरे हैं। इनमें एक है ज्ञानात्मक शिक्षण, जो शिक्षण को मस्तिष्क की एक क्रिया के रूप में देखता है। दूसरा है, रचनात्मक शिक्षण जो ज्ञान को सीखने की प्रक्रिया में की गई रचना के रूप में देखता है। इन सिद्धांतों को अलग–अलग देखने की बजाय इन्हें संभावनाओं की एक ऐसी शृंखला के रूप में देखा जाना चाहिए, जिन्हें शिक्षण के अनुभवों में पिरोया जा सके। एकीकरण की इस प्रक्रिया में अन्य कारकों को भी संज्ञान में लेना जरूरी हो जाता है, जैसे– ज्ञानात्मक शैली, शिक्षण की शैली, हमारी मेधा का एकाधिक स्वरूप और ऐसा शिक्षण जो उन लोगों के काम आ सके, जिन्हें इसकी विशेष जरूरत है और जो विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते हैं।

इस पुस्तक में अधिगम एवं शिक्षण से संबंधित सभी अहम पहलुओं का रेखांकन किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिये समूचे पाठ्यक्रम को चार इकाइयों में समायोजित किया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के अन्तर्गत स्व–मूल्यांकन के प्रश्न दिये गये हैं, ताकि विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर की परख हो सके। इकाई के अंत में अभ्यास के लिये प्रश्न रखे गये हैं। इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई अधिगम और ज्ञान पर आधारित है। इसमें अधिगम की अवधारणा, परिभाषा, प्रकृति, अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक, संज्ञानात्मक अधिगम, समावेशी शिक्षा की अवधारणा, अधिगम में सीखने की कठिनाइयों और अक्षमता आदि तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

दूसरी इकाई अधिगम के दृष्टिकोणों पर आधारित है। इसमें व्यवहारवादी एवं संज्ञानात्मक विचार, पियाजे व वाइगोत्सकी के रचनावादी सिद्धांत, ब्रूनर व गेने के विचार तथा स्मृति, विस्मृति आदि सिद्धांतों का विश्लेषण किया गया है।

तीसरी इकाई में अभिप्रेरणा की अवधारणा, सहयोग और प्रतिस्पर्धा की भूमिका, अधिगम के लिए आकलन, रचनात्मकता की अवधारणा आदि का अध्ययन किया गया है।

टिप्पणी

चौथी इकाई अधिगम की विविधता और शिक्षण पर आधारित है। इसमें शिक्षण के अंतर्गत कक्षा में वैयक्तिक अंतर एवं अनौपचारिक व्यवस्था, छात्रों की शिक्षण शैली के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका, शिक्षक व शिक्षार्थी केंद्रित दृष्टिकोण तथा मनोवैज्ञानिक व शैक्षिक परीक्षणों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में अधिगम एवं शिक्षण का सांगोपांग अध्ययन सरल भाषा में रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

इकाई 1 अधिगम और ज्ञान

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय

1.1 उद्देश्य

1.2 अधिगम की अवधारणा

- 1.2.1 अधिगम : अधिगम का अर्थ, परिभाषा और प्रकृति
- 1.2.2 अधिगम को प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति और कारक

1.3 संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर

- 1.3.1 संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर
- 1.3.2 अधिगम में सीखने की कठिनाइयां और अधिगम अक्षमता
- 1.3.3 विशिष्ट और समावेशी शिक्षा की अवधारणा

1.4 शिक्षण–अधिगम के ज्ञानात्मक आधार

- 1.4.1 विषय वस्तु का ज्ञान
- 1.4.2 तथ्यात्मक ज्ञान
- 1.4.3 प्रक्रियात्मक ज्ञान
- 1.4.4 अधिगम परिस्थितियां ज्ञान के लिए मूल आधार
- 1.4.5 ज्ञान प्राप्ति के सामान्य सिद्धांत एवं शिक्षण युक्तियां

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1.6 सारांश

1.7 मुख्य शब्दावली

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

मनुष्य के व्यवहार में अधिगम (सीखना) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति को संतुष्टि मिलती है, प्रेरणा मिलती है। अधिगम कठिनाइयों व समस्याओं पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने व्यवहार को समायोजित करने में समर्थ होता है। अधिगम का अर्थ है अनुभव शिक्षण अथवा प्रशिक्षण अथवा अध्ययन के द्वारा नये–नये तथ्यों को जानना और नई–नई क्रियाओं को करना और उन्हें बहुत दिनों तक धारण करना और आवश्यकता पड़ने पर इनका प्रयोग करना। अतः यह कहा जा सकता है कि अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ–साथ निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो न केवल विद्यालयी जीवन तक सीमित है बल्कि सामाजिक जीवन में भी चलती रहती है।

अधिगम शिक्षा के सभी स्वरूपों में केंद्र बिंदु माना जाता है। शिक्षा का स्वरूप चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक दोनों में ही अधिगम को केंद्र बिंदु माना गया है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें बालक नए अनुभवों से सीखता है तथा इन्हीं अनुभव से वह परिपक्वता की ओर बढ़ता है। व्यक्ति अपने जन्म के समय से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। वह अपने और दूसरों के अनुभवों से सीखकर अपने व्यवहार, विचार, इच्छा, भावनाओं आदि में परिवर्तन करता है। मानवीय संदर्भ में अधिगम

टिप्पणी

को जीवन–पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार शिक्षण आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है उसी प्रकार अधिगम भी आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती रहती है। अनुभव होने के कारण अधिगम हस्तांतरणीय है जो समान परिस्थितियों में स्थानांतरित किया जा सकता है। मनुष्य बिना अधिगम के अपने मूल व पशुवत प्रवृत्तियों से छुटकारा नहीं पा सकता है। इसी कारण मानव जीवन में अधिगम का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत इकाई में अधिगम का अर्थ, स्वरूप, इसको प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति, कारक, संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर, अधिगम अक्षमता, विशिष्ट और समावेशी शिक्षा, शिक्षण–अधिगम के ज्ञानात्मक आधार आदि तथ्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अधिगम के अर्थ, प्रकृति व उद्देश्यों को समझ पाएंगे;
- अधिगम को प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति और कारकों का उल्लेख कर पाएंगे;
- संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर को समझ पाएंगे;
- विशिष्ट और समावेशी शिक्षा की अवधारणा की विवेचना कर पाएंगे;
- शिक्षण–अधिगम के ज्ञानात्मक आधार का वर्णन कर पाएंगे।

1.2 अधिगम की अवधारणा

अधिगम (सीखना) एक व्यापक शब्द है। यह जन्मजाति प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। व्यक्ति अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों से होकर जो क्रिया करता है उसके फलस्वरूप वह किसी नवीन परिस्थिति के सम्पर्क में आता है। जब वह पुराने अनुभवों के आधार पर इस नवीन परिस्थिति द्वारा अपनी प्रवृत्तियों को संतुष्ट नहीं कर पाता है तो वह इस परिस्थिति के साथ समायोजन करने का प्रयत्न करता है। परिणामतः वह अपने उन व्यवहारों को छोड़ देता है जो उक्त परिस्थिति के अनुकूल नहीं होते हैं और नवीन परिस्थिति के अनुकूल व्यवहारों को अपनाने लगता है। इस प्रकार उसके व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जित होते रहते हैं। उदाहरणार्थ शिशु के सामने दीपक ले जाने पर वह स्वाभाविक रूप से उसकी लौ को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाता है किंतु लौ हाथ में लगते ही उसे जलन का अनुभव होता है और वह हाथ खींच लेता है। पुनः जब कभी उसके सामने दीपक लाया जाता है तब वह अपने अनुभव के आधार पर अबकी बार लौ को पकड़ने के लिए हाथ नहीं बढ़ाता है वरन् वह उससे दूर भागने का प्रयास करता है। इस प्रकार अनुभव के आधार पर उसके स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत इस प्रकार के स्वाभाविक व्यवहार में होने वाले प्रगतिशील परिवर्तन या परिमार्जिन को ही सीखना कहते हैं।

टिप्पणी

अतः हम सब लोगों के लिए सीखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। वास्तव में सीखना है। मनुष्यों तथा जानवरों में भेद करता हैं जानवर आरम्भ में प्रशिक्षित तो किये जाते हैं, पढ़ाये नहीं जाते। माता–पिता अपने बच्चों को विद्यालय सीखने के लिए ही भेजते हैं। मनुष्य जन्म के बाद से ही सीखना शुरू कर देता है और जीवन भर कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। शैशवावस्था के आरम्भ में वह बिल्कुल असहाय और पराश्रित होता है किन्तु धीरे–धीरे वह अपने को वातावरण से समायोजित करने का प्रयत्न करता है। इस समायोजन में वह जिस प्रक्रिया द्वारा अपने अनुभवों से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करता है मनोवैज्ञानिक उसे सीखना कहते हैं।

हम जो भी कुछ हैं। वह सीखने का ही परिणाम है। हमारे सोचने, खाने–पीने, चलने–फिरने तथा वेश–भूषा आदि के तौर–तरीके, सभी कुछ सीखने पर ही निर्भर है। इस प्रकार हमारा सम्पूर्ण जीवन ही सीखने का परिणाम है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सीखना ही शिक्षा है और दोनों एक ही क्रिया की ओर संकेत करते हैं। सीखना तथा शिक्षा दोनों ही जीवन–पर्यन्त तथा सर्वत्र चलती रहती हैं।

सीखने की विशेषताएं

सीखने की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर सीखने की निम्नलिखित सामान्य विशेषताओं का वर्णन किया गया है–

1. **सीखना सार्वभौमिक है** (Learning is universal) – सीखने का गुण केवल किसी विशिष्ट स्थान या विशिष्ट मनुष्यों में ही नहीं पाया जाता है वरन् संसार के सभी स्थानों में तथा सभी जीवधारियों में पाया जाता है। पशु, पक्षी तथा कीड़े–मकोड़े भी सीखते हैं।
2. **सीखना सम्पूर्ण जीवन चलता है** (All living is learning)–सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवनपर्यन्त चलती रहती है। व्यक्ति जन्म के समय से ही माता–पिता भाई–बहन तथा परिवार के अन्य सदस्यों से सीखना आरम्भ करता है और वह जीवनभर विभिन्न सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं, संगी–साथी, विद्यालय, अन्य व्यक्तियों आदि से कुछ न कुछ सीखता रहता है।
3. **सीखना विकास है** (Learning is growth)–व्यक्ति को प्रतिक्षण कुछ न कुछ गये अनुभव प्राप्त होते रहते हैं जिनसे वह सीखता है। इसके फलस्वरूप उसका शारीरिक व मानसिक विकास होता है। इस प्रकार सीखना ही विकास का आधार है। पेस्तालॉजी ने वृक्ष और फ्रोबेल ने उपवन के उद्धरण के द्वारा सीखने की इस विशेषता को स्पष्ट किया है।
4. **सीखना परिवर्तन है** (Learning is Change)–व्यक्ति अपने तथा दूसरों के अनुभवों के आधार पर अपने व्यवहारों, विचारों, इच्छाओं, मूल प्रवृत्तियों, भावनाओं आदि में परिवर्तन करता है और वास्तव में यही सीखना है। यह बात गेट्स तथा अन्य विद्वानों के विचारों से स्पष्ट हो जाता है उनके अनुसार–"सीखना, अनुभव प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार परिवर्तन है।"
5. **सीखना विवेकपूर्ण है** (Learning is intelligent)–सीखना यांत्रिक कार्य न होकर विवेकपूर्ण कार्य है। वही बात शीघ्रता और सरलता से सीखी जा सकती

है जो सोच–समझकर बुद्धि का प्रयोग करके की जाती है। बिना सोचे–समझे किसी बात को सीखने में सदैव असफलता ही हाथों में लगती है। मरसेल का विचार है–''सीखने की असफलताओं का कारण समझने में असफलताएं हैं।''

टिप्पणी

6. **सीखना सक्रिय है** (Learning is Active) –किसी कार्य को सीखने के लिए व्यक्ति का सक्रिय ही वास्तविक सीखना है। बालक तभी कुछ सीखता है जबकि वह सक्रिय होकर सीखने की प्रक्रिया में स्वयं भाग लेता है। इसी को ध्यान में रखते हुए आज बालकों की शिक्षा में माण्टेसरी डाल्टन प्लान, किण्डरगार्टन, प्रोजेक्ट पद्धति आदि प्रगतिशील शिक्षण विधियों को अपनाया जा रहा है। यह सभी विधियां बालक की क्रियाशीलता के ऊपर विशेष बल देती हैं।

7. **सीखना, अनुभवों का संगठन है** (Learning is Organisation of experiences) –सीखना न तो नये अनुभवों की प्राप्ति है और न ही पुराने अनुभवों का योग है। सीखना वास्तव में नये और पुराने अनुभवों का संगठन है। जैसे–जैसे व्यक्ति को नये अनुभव प्राप्त होते जाते हैं वह नयी–नयी बातें सीखता जाता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार उन्हें संगठित करता जाता है।

8. **सीखना उद्देश्यपूर्ण है** (Learning is purposive)–सीखना सदैव उद्देश्यपूर्ण होता है। व्यक्ति किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ही कार्य को सीखता है। उद्देश्य जितना ही प्रबल होता है। सीखने की प्रक्रिया भी उतनी ही तीव्र होती है। उद्देश्य के अभाव में सीखना निष्फल रहता है। मरसेल ने इस सम्बन्ध में लिखा है–''सीखने के लिए उत्तेजित और निर्देशित उद्देश्य की अति आवश्यकता है और ऐसे उद्देश्य के बिना सीखने में असफलता निश्चित है।''

9. **सीखना अनुकूलन है** (Learning is adjustment)–वातावरण से अभियोजन करने के लिए व्यक्ति को अनेक नये व्यवहारों, क्रियाओं, भाषाओं, उठने–बैठने के तरीकों, रहन–सहन, रीति–रिवाज आदि सीखने पड़ते हैं। अतः सीखने के पश्चात् ही व्यक्ति नई परिस्थितियों से अपना अनुकूलन कर सकता है।

10. **सीखना व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों है** (Learning is both individual and social)– व्यक्ति प्रायः स्वयं प्रयत्न करके सीखता है। बहुत सी बातों को वह दूसरों से देखकर तथा सुनकर सीखता है। वह समाज में ही रहने का ढंग, बातचीत करने की कला, उठने–बैठने का ढंग, परम्पराओं और प्रथाओं को मानने, दूसरों से उचित व्यवहार करना आदि सीखता है। इस प्रकार सीखना, व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही है। योकम और सिम्पसन के विचारों में–''सीखना सामाजिक है क्योंकि किसी प्रकार के सामाजिक वातावरण के अभाव में व्यक्ति का सीखना असंभव है।

11. **सीखना वातावरण की उपज है** (Learning is a Product of Environment) –बालक सदैव वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही सीखता है। बालक जैसे वातावरण में रहता है उसी के अनुसार सीखता है। यही कारण है कि आजकल विद्यालयीय वातावरण के ऊपर काफी अनुसंधान हो रहे हैं और उसे सक्रिय, उपयुक्त एवम् प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जा रहा है ताकि बालक अच्छी क्रियाओं तथा अच्छी बातों को सीख सके।

टिप्पणी

12. **सीखना खोज करना है** (Learning is Discovery)–सीखना वास्तव में किसी कार्य को सोच–समझकर करना और एक निश्चित परिणाम पर पहुंचना है अर्थात्, नये ज्ञान की खोज करना है, व्यक्ति में खोज करने की क्षमता जितनी ही तीव्र होती है वह उतनी ही शीघ्रता से किसी बात को सीखता है। मरसल के विचारों में ''सीखना उस बात को खोजने और जानने का कार्य है जिसे एक व्यक्ति खोजना और जानना चाहता है।''

प्रक्रिया और कार्य

जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि सीखना एक सतत, व्यापक एवं जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। सीखना एक साथ ही नहीं हो जाता है वरन् सीखने के लिए विभिन्न अनुभवों को एकत्रित करना पड़ता है। सम्पूर्ण अनुभव अनेक क्रियाओं तथा उपक्रियाओं से बनता है। सीखने की प्रक्रिया के सोपानों का संबंध मिलर तथा डोलार्ड ने निम्न प्रकार वर्णन किया है– "सीखने के लिए व्यक्ति को किसी वस्तु की आवश्यकता अनुभव होनी चाहिए, उसे कुछ देखना–भालना चाहिए, उसे कुछ करना चाहिए और अन्त में उसे कुछ प्राप्त करना चाहिए।" "In order to learn one must wnat something, notice something do something and get something."-Miller and Dallard

सीखने की प्रक्रिया को निम्न चित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है–

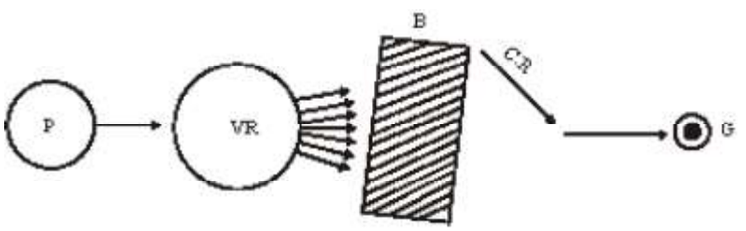

P = Person

VR = various Responses

B = barrier

CR = Correct Responses

G = Goal

सीखने की अभिक्रिया के सोपानों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है–

1. **अभिप्रेरणा** (Motivation) : मनुष्य का प्रत्येक कार्य जिसे वह करना चाहता है किसी न किसी अभिप्रेरणा से संचालित होता है। व्यक्ति की बहुत–सी आवश्यकताएं होती हैं। ऐसी आवश्यकताएं जिनकी सन्तुष्टि नहीं हो पाती है। वह उनकी सन्तुष्टि करने के लिये प्रयत्न करता है। इनकी पूर्ति के लिए उसमें प्रेरक (Motive) उत्पन्न हो जाता है तथा व्यक्ति अत्यधिक क्रियाशील हो जाता है। अभिप्रेरणा ही उसे उद्देश्य की ओर ले जाती है तथा व्यक्ति उस प्रयोजन से प्रेरित होकर क्रिया करने को बाध्य हो जाता है।

टिप्पणी

2. **उद्देश्य** (Goal) : सीखना एक लक्ष्य प्रेरित क्रिया है। व्यक्ति का व्यवहार प्रयोजन से पूर्ण होता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक निश्चित उद्देश्य की ओर व्यवहार करने लगता है। उद्देश्य निर्धारित हो जाने पर उसके व्यवहार की दिशा स्पष्ट एवं निश्चित हो जाती है। मानव उस क्रिया को सीखना नहीं चाहता है जो उसकी आवश्यकता तथा उद्देश्य की पूर्ति नहीं करती।
3. **बाधा** (Barrier) : उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए बाधा उपस्थित न होने पर व्यक्ति को कोई नया अनुभव प्राप्त होता है। बाधा के आ जाने पर व्यक्ति अनेक प्रकार के सम्भावित व्यवहार करता है। वह प्रयत्न एवं मूल, सूझ अथवा तर्क के द्वारा उपर्युक्त व्यवहार को खोज निकलता है।
4. **विभिन्न संभावित अनुक्रियाएं** (Different Probability Response)–बाधा उत्पन्न होने पर मानव समस्त परिस्थिति की खोज करता है। वह अनेक सम्भावित क्रिया व प्रतिक्रियायें करता है तथा इस सबसे लिये वह तर्क–वितर्क, सूझ, प्रयत्न तथा भूल आदि का सहारा लेता है।
5. **पुनर्बलन** (Reinforcement)–यदि कोई अनुक्रिया आवश्यकता की पूर्ति में सफलता प्रदान करती है तो वह अनुक्रिया संतोषजनक एवं सुखदायक होती है, साथ ही वह अनुक्रिया पुनर्बलित हो जाता है। अन्य सभी असफल अनुक्रियाओं को व्यक्ति भुला देता है तथा भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर सफल क्रिया की पुनरावृत्ति करता है।
6. **संगठन** (Integration)–सीखना, उचित एवं सफल अनुक्रियाओं का चुनाव एवं संगठन है। प्रत्येक प्रकार की सीखने की क्रिया में प्रगति के साथ ही मानसिक संगठन भी होता रहता है। अधिगम की क्रिया के विभिन्न अंगों का संगठन नवीन ज्ञान की पूर्व ज्ञान से जोड़ने के लिये किया जाता है। इससे नवीन अनुक्रिया उसके ज्ञान का एक अंग बन जाती है।

1.2.1 अधिगम : अधिगम का अर्थ, परिभाषा और प्रकृति

अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है तथा किसी भी प्रकार की शिक्षण प्रणाली में अधिगम का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा मनोविज्ञान में अधिगम को विशेष महत्व दिया गया है। अधिगम शब्द का प्रयोग अधिगम प्रक्रिया तथा उस प्रक्रिया के मूल्यांकन (Product) दोनों के लिए किया जाता है।

अधिगम का सामान्य अर्थ है सीखना अथवा व्यवहार में परिवर्तन। छात्र के व्यवहार में परिवर्तन अनुभव तथा प्रशिक्षण के द्वारा होता है। उदाहरणार्थ, एक बालक जलती हुई मोमबत्ती को पकड़ लेता है। लौ पकड़ने से उसका हाथ जलने लगेगा तथा बालक को पीड़ा होगी तो भविष्य में बालक पुनः अग्नि के नजदीक नहीं जायेगा। यह बालक का अपना स्वयं का अनुभव हो गया और इस प्रकार के सीखने को अनुभवों द्वारा सीखना कहते हैं। एक छात्राध्यापक पढ़ाना नहीं जानता लेकिन सर्वप्रथम सहपाठी (Par) समूह में सूक्ष्म शिक्षण ही कराया जाता है ताकि शिक्षण कौशलों के सम्बन्ध में जान ले, उसके बाद शिक्षणाभ्यास कराया जाता है ताकि कक्षागत परिस्थितियों के बारे में पता कर सके तथा उसके बाद वास्तविक शिक्षण (खण्ड शिक्षण) कराया जाता है। इस प्रकार छात्राध्यापक शिक्षण कार्य में शनैःशनैः निपुणता प्राप्त कर लेता है। इसे ही

प्रशिक्षण द्वारा सीखना कहते हैं। व्यक्ति के दैनिक जीवन में अधिगम अथवा सीखने के अनेक उदाहरण हैं, यथा–पाठ याद करना, कम्प्यूटर चलाना, कार चलाना, खाना बनाना, विज्ञान सम्बन्धी प्रयोग करना आदि।

टिप्पणी

गेग्ने (1965) के अनुसार अधिगम में प्रमुख रूप से तीन तत्व होते हैं–

1. सीखने वाले प्राणी या अधिगमकर्ता।
2. उत्तेजक परिस्थितियां या पर्यावरण।
3. अनुक्रिया।

अधिगम अथवा सीखने के अर्थ को स्पष्ट करते हुए डॉ. एस.एन. दुबे, 'शरतेन्दु' (S.N. Dubey, Shortendu) ने लिखा है कि ''सीखने का अर्थ है अनुभव शिक्षण अथवा प्रशिक्षण अथवा अध्ययन के द्वारा नये–नये तथ्यों को जानना और नई–नई क्रियाओं को करना और उन्हें बहुत दिनों तक धारण करना और आवश्यकता पड़ने पर इनका प्रयोग करना।'' अतः यह कहा जा सकता है कि सीखना अथवा अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ–साथ सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जो न केवल विद्यालयी जीवन तक सीमित है बल्कि सामाजिक जीवन में भी चलती रहती है। यह सीखना नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अधिगम अथवा सीखने से समायोजन में सहायता मिलती है।

अधिगम की परिभाषाएं (Definitions of Learning)–अधिगम अथवा सीखने की विभिन्न शिक्षाविदों, शिक्षाशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने अलग–अलग परिभाषाएं दी हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

1. स्किनर (Skinner) ने अधिगम की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''अधिगम व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।''
2. वुडवर्थ (Wood Worth) ने अधिगम अथवा सीखने के बारे में कहा है कि ''नवीन ज्ञान और अनुक्रियाओं को अर्जित करने की प्रक्रिया को सीखने की प्रक्रिया कहा जाता है।''
3. क्रो एंड क्रो (Crow and crow) कहते हैं कि ''अधिगम आदतों, ज्ञान एवं अभिवृत्तियों को अर्जित करना है।''
4. किंग्सले और ग्रे (Kingsley and gray) ने अधिगम की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति को संतुष्टि की प्राप्ति होती है, प्रेरणा मिलती है तथा वह कठिनाइयों व समस्याओं पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने व्यवहार को समायोजित करने में समर्थ होता है।''
5. मर्फी (Murphy) महोदय का कहना है, ''कि अधिगम व्यवहार में परिवर्तन के साथ–साथ देखने का या प्रेक्षण की एक कला भी है।''
6. हिलगार्ड (Hilgard) के अनुसार, ''अधिगम वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है अथवा परिस्थिति का सामना करने पर परिवर्तन होता है। इसके लिए आवश्यक है कि क्रिया के परिवर्तन की विशेषताओं को मूल अनुक्रियाओं, प्रवृत्तियों, परिपक्वता अथवा प्राणी की अस्थायी स्थिति के आधार पर व्याख्या न की जा सके।''

टिप्पणी

7. जे.पी. गिलफोर्ड (Guilford, J.P.) के अनुसार, ''व्यवहार में होने वाले परिवर्तन के कारण सीखना एक व्यावहारिक परिवर्तन है।''
8. गेट्स (Gates) महोदय की परिभाषा अधिक प्रचलित है। वे कहते हैं कि, ''अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार परिवर्तन को अधिगम कहते हैं।''
9. गैरिट (Garret) महोदय अधिगम के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार देते हैं, ''अधिगम को व्यवहार का संगठन माना जाता है।''
10. गुथरी (Guthrie) के अनुसार, ''यह सीखने की योग्यता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिगम व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है और इस व्यवहार परिवर्तन का प्रमुख आधार अनुभव है, अर्थात् अनुभव के आधार पर सीखी गई कोई भी चीज हमारे मस्तिष्क में स्थाई स्थान बना लेती है। इसीलिए अधिगम के आधार के रूप में अनुभव को प्राथमिकता दी जाती है। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन है।

डॉ. एस.पी. कुलश्रेष्ठ ने अपनी पुस्तक ''शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार'' में डॉ. टी.आर. शर्मा द्वारा अधिगम के विभिन्न लक्षणों का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं–

1. अधिगम छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाता है एवं व्यवहार को प्रभावित करता है।
2. अधिगम का अर्थ है प्राप्त करना, स्मरण रखना तथा अनुभव को संगठित एवं परिष्कृत करना।
3. अधिगम अभिप्रेरक एवं अनुक्रिया में नवीन सम्बन्ध स्थापित करता है।
4. अधिगम अर्थपूर्ण एवं लक्ष्य निर्देशित होता है।
5. अधिगम वातावरण की देन है।
6. अधिगम एक क्रियाशील एवं सृजनात्मक पद्धति है।
7. अधिगम ज्ञान, बोध तथा संकल्प शक्ति द्वारा ही सम्भव है।
8. अधिगम की इच्छा व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकताओं से जाग्रत होती है।

अधिगम की प्रकृति (Nature of Learning)–अधिगम की परिभाषाओं एवं उपर्युक्त वर्णित विशेषताओं का अध्ययन करने के बाद अधिगम की प्रकृति को स्पष्ट किया जा सकता है। यह विवरण अधिगम की प्रकृति को निम्न प्रकार स्पष्ट करता है–

1. इसकी प्रक्रिया छात्र नये अनुभवों, व्यवहारों, प्रत्ययों, तथ्यों, सिद्धान्तों आदि को अर्जित करते हैं। इन्हें अधिगम का परिणाम माना जाता है।
2. अधिगम के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों का विकास अधिगम प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। यही अधिगम के तीनों उद्देश्य है।
3. अधिगम सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का होता है।
4. व्यक्ति की क्रियाओं की पुष्टि से अधिगम प्रभावशाली होता है क्योंकि अनुक्रिया की पुष्टि होने से अधिगमकर्ता में एक नई ऊर्जा का विकास होता है।

टिप्पणी

5. अधिगम व्यक्ति के जीवन की एक आवश्यक क्रिया है। इसके बिना जीवन में प्रगति सम्भव नहीं है।
6. अधिगम के द्वारा व्यक्ति के जीवन का प्रत्येक कार्य अथवा पक्ष प्रभावित होता है तथा उसमें परिवर्तन भी आता है।
7. जिस प्रकार शिक्षण आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है उसी प्रकार अधिगम भी आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता रहता है।
8. अधिगम एक अनुभव है।
9. अधिगम अनुभव होने के कारण हस्तांतरणीय है जो समान परिस्थितियों में स्थानान्तरित किया जा सकता है
10. अधिगम परिस्थितियों के अनुकूल व्यक्ति को समायोजन करना सिखाता है।
11. अधिगम हेतु व्यक्तिगत स्तर पर भी प्रयास करने पड़ते हैं।
12. अधिगम मानसिक क्रियाओं की एक प्रक्रिया है।
13. अधिगम एक खोज की प्रक्रिया है।
14. अधिगम आवश्यकताओं की संतुष्टि मात्र है।
15. अधिगम एक समस्या समाधान की प्रक्रिया है।

1.2.2 अधिगम को प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति और कारक

अधिगम को प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति और कारक को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

(क) अभिवृत्ति

अभिवृत्ति, व्यक्ति के उस दृष्टिकोण की ओर संकेत करती है जिसके वह किसी वस्तु परिस्थिति, संस्था या व्यक्ति के प्रति किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करता है। विषयों, पदार्थों, व्यक्तियों, पशुओं, पक्षियों, संस्थाओं, जातियों धर्मों एवं प्रथाओं के प्रति वह प्रवृत्ति अथवा पूर्व प्रवृत्ति जो हमें विशिष्ट प्रकार से उनके साथ अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करती है, अभिवृत्ति कहलाती है। ये वस्तुएं प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष बाह्य उत्प्रेरण के रूप में प्रस्तुत होती है। उनके प्रति व्यक्ति की अनुक्रियायें उसकी अनुभूति के रूप में प्रकट होती है।

अभिवृत्ति को अंग्रेजी में (Attidude) कहते हैं तथा इस शब्द को कई अर्थों में प्रयुक्त किया जा सकता है लेकिन आजतक इस मनोवैज्ञानिक प्रत्यय का कोई अर्थ निश्चित नहीं हो पाया है। अभिवृत्ति का शाब्दिक अर्थ है, विशेष वृत्ति। अर्थात मन की वह विशेष वृत्तियां जो किसी व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति, संस्था या विचार के प्रति हमारे आचरण का स्वरूप निर्धारित करती हैं, जिसके कारण हम इन वस्तुओं के प्रति अपनी कोई विशेष धारणा या विचार बना लेते हैं, अभिवृत्ति कहलाती है।

अभिवृत्तियां सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं, एक विभात्मक और द्वि–विभात्मक, मान लीजिए किसी वस्तु के प्रति अनुभाव की अभिवृत्ति अधिक उपयुक्त हो सकती है

टिप्पणी

और विभात्मक की अभिवृत्ति कम उपयुक्त। इस प्रकार विभात्मक और अनुभाव दोनों को ही अभिवृत्ति मापनी पर दो निश्चित स्थानों पर रखा जाता है, जो शून्य के एक ही ओर होंगे, लेकिन यदि अनुभाव उस वस्तु को प्रेम करती है और विमा उसे घृणा तो यह अभिवृत्ति प्रेम– घृणा द्वि–विभात्मक मानी जा सकती है। इतना निश्चित है कि किसी विशेष अभिवृत्ति के आधार पर दो व्यक्तियों को एक सीधी रेखा पर दो निश्चित स्थान दिये जा सकते हैं। यदि ऐसा है तो अभिवृत्तियों का मापन किया जा सकता है। अभिवृत्तियों की इसी विशेषता का उपयोग परीक्षण पद तैयार करने में किया जाता है।

परिभाषाएं–

1. किम्बल यंग के शब्दों में, "अभिवृत्ति अनिवार्य रूप से एक पूर्वज्ञापी प्रतिक्रिया का कारण है, क्रिया एक आरम्भ है, जो अनिवार्य नहीं कि पूरी हुई हो।"
2. वुडवर्थ के अनुसार, "अभिवृत्तियां मत, रुचि या उद्देश्य की थोड़ी बहुत स्थायी प्रवृत्तियां हैं, जिनमें किसी प्रकार के पूर्व–ज्ञान की प्रत्याशा और उचित प्रक्रिया की तत्परता निहित है।"
3. थर्स्टन के शब्दों में, "कुछ मनोवैज्ञानिक पदार्थों से संबंधित सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों की मात्रा को अभिवृत्ति कहा गया है।"

अभिवृत्तियों की उत्पत्ति एवं प्रारम्भिक विकास

अपने सबसे प्रारम्भिक काल में, अभिवृत्तियों का अस्तित्व बच्चे की सीधी–सादी रुचिकर अथवा अरुचिकर मनोदशा के रूप में रहता है। इनमें से कुछ भावनाएं तो तृप्त अथवा अतृप्त जैविकीय आवश्यकताओं का परिणाम होती है तथा कुछ अभिवृत्तियां माता–पिता अथवा भाई–बहन की रुचिकर अथवा अरुचिकर अनुक्रियाओं से उत्पन्न होती है। जब कोई बच्चा कोई क्रिया करता है, तो यह उसकी अपने जड़ तथा चेतन परिवेश के साथ क्रिया–प्रतिक्रिया होती है। बच्चे की वृद्धि तथा विकास के साथ–साथ उसकी बदलती हुई नाना प्रकार की आवश्यकताओं के फलस्वरूप, वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रसंग में उसकी प्रतिक्रियाएं भी नई होती हैं। एक शिशु को दूसरों की सहायता तथा संरक्षण प्राप्त करके सुख मिलता है, परन्तु जब बच्चा नया–नया चलना सीखता है तो वह दूसरों की सहायता करने पर झुंझलाता है और उसे स्वीकार नहीं करता है। मुंह में खाने–पीने की वस्तुएं लेने, मां के स्तन से दूध पीने आदि मौलिक क्रियाओं में शिशु को प्रत्यक्ष सुख मिलता है, परन्तु जब बच्चे के दांत निकलने लगते हैं, तो उसका मुंह उसके लिए पीड़ा का स्रोत बन जाता है। इस प्रकार ये परिवर्तनों के फलस्वरूप, वस्तुओं तथा स्थितियों के साथ, बच्चे के संबंध तथा धारणा बदल जाते हैं।

शरीर तंत्र के सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध विकास के फलस्वरूप बालक में भावना के अंकुर फूटते है। साधारण तथा किसी वस्तु या क्रिया से बच्चे को बहुत समय तक संतोष प्राप्त होता रहे तो उस वस्तु अथवा किया के प्रति बच्चे के मन में एक सकारात्मक भावना उत्पन्न हो जाती है। जिसे बच्चे ने मां के स्तन से या बोतल से दूध पीने में आनन्द अनुभव किया है, वह दूसरी चीजे खाने में भी वैसा ही आनन्द अनुभव करने की आशा पहले से ही करता है। दूध पीने की अवस्था में असंतोष और अरुचिकर अनुभव से खाने के प्रति भी नकारात्मक भावना उत्पन्न होने की संभावना रहती है

टिप्पणी

जैसे–जैसे बच्चे का मानसिक जीवन और जअथ्ल होता जाता है उसकी कुछ आवश्यकताएं दूसरी आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष विरोध करने लगती है, वैसे–वैसे बाह्य परिस्थितियों के साथ उसकी भावनाओं का संबंध उतना सरल नहीं रह पाता।

बड़ों के प्रति बच्चे का रवैया स्पष्टतः समाजीकरण का एक बहुत महत्वपूर्ण तत्व है। इस अभिवृत्ति का सूत्रपात उन प्रारम्भिक अनुभवों से होता है, जिनमें बच्चा और उसके माता–पिता, अध्यापक, प्रिंसिपल, नेता आदि सम्मिलित होता है। इनके प्रति विरोध की अभिवृत्ति संघर्ष के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है।

इटिकन ने 400 विद्यार्थियों और उनके माता–पिता के बारे में छानबीन करके, अपने पिता के प्रति छात्र एवम छात्राओं दोनों के ही रवैये तथा पिता द्वारा बच्चे के स्वीकरण अस्वीकरण के बीच एक अत्यंत महत्वपूर्ण संबंध का पता लगाया। यह संबंध पिता के रोब या ढीलेपन का परिणाम नहीं था बल्कि केवल यह भावना थी, जो पिता और बच्चे के बीच होती है (प्रौढ़ लोगों के प्रति बच्चे की अभिवृत्ति के प्रारम्भिक विकास में एक और महत्वपूर्ण तत्व यह होता है कि अपने माता–पिता पर, विशेष रूप मां पर, अवलम्बित रहने पर बच्चे को कितना संतोष या असंतोष मिलता है, इस विषय के अध्ययन में स्विटज और निबल का योगदान महत्वपूर्ण है। इन निष्कर्षों को रुडिनेस्को ने इन शब्दों में बहुत ही अच्छे ढंग से व्यक्त किया है कि परिवार से और विशेषकर मां के बिछुड़ने से, छोटे बच्चे के लिए बहुत ही कष्टप्रद और पीड़ाजनक अनुभव होता है, जो दिशा अैर काल की संकल्पनाओं का ज्ञान हुये बिना उनके लिए असहनीय होता है। तीन वर्ष से कम आयु के बच्चों को इस प्रकार का अनुभव होने से प्रायः प्रौढ़ लोगों के साथ उसके व्यवहार में भी परिवर्तन आ जाता है। यदि बच्चे को लंबे समय तक इस प्रकार रहना पड़े और उसकी आवश्यकता भी पूरी न हों, तो घनिष्ट तथा निकट मानव संबंध स्थापित करने की उसकी क्षमता नष्ट हो जाने का भय रहता है।

काख ने 5–6 वर्ष की आयु के 384 बच्चों के बारे में छानबीन करके यह निष्कर्ष निकाला कि अध्यापक के प्रति बच्चे के रवैये पर माता और संतान के पारस्परिक संबंध का गहरा असर पड़ता है। बच्चों की दूसरी अभिवृत्तियों का स्रोत उसके घर के पारस्परिक संबंध में मिलता है। इसी प्रकार के एक अध्ययन में बाल्डविन ने फेल्स इंस्टीट्यूट में पाया निभाता–पिता का रवैया स्वीकारात्मक लोकतांत्रिक होने पर, दूसरे रवैये की तुलना में, बच्चे की वृद्धि तथा विकास में अधिक सुविधा होती है। यह देखा गया है कि घर पर इस प्रकार के स्नेहमय तथा समतापूर्ण वातावरण में पले हुए बच्चों का बौद्धिक विकास अधिक तेजी से होता है, उनमें अधिक मौखिकता होती है, वे अधिक संवेगात्मक सुरक्षा तथा संयम का परिचय देते हैं और दूसरे घरों के बच्चों की तुलना में कम आसानी से उत्तेजित होते हैं इसी प्रकार लास्कों ने अपने अध्ययन के आधार पर तीन प्रकार के घरेलू वातावरण बताये–स्नेहमय, लोकतांत्रिक, तथा अत्यधिक लाड–प्यार भरे। बच्चों के व्यवहार में जो अंतर देखे गये। उनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका लोकतांत्रिक वातावरण की है। स्कूल की स्थिति में बच्चे का व्यवहार निर्धारित करने में इस बात का बहुत बड़ा हाथ रहता है कि माता–पिता बच्चे को स्वीकार करते हैं या नहीं और घर पर प्रतिदिन के सम्पर्कों में उसने कितनी स्वतंत्रता अनुभव की है।

परिवार के अन्य सदस्य भी बच्चे की प्रारम्भिक अभिवृत्तियों को विकसित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। काख ने यह पता लगाया कि परिवार के

टिप्पणी

सदस्यों में आयु के अंतरों का अभिवृत्तियों से गहरा संबंध है। उसके अनुसार दोनों भाइयों या बहनों की अपेक्षा उन जोड़ियों में तनाव के अधिक चिह्न देखो गये, जिनमें एक भाई या बहन। जिन जोडियों में भाई–बहन की उम्र में दो से चार वर्ष तक का अंतर था उनमें, उन दोनों भाइयों या बहनों वाली जोड़ी की तुलना में अधिक आत्मक विश्वास था, वे अधिक प्रसन्नचित, सक्रिय तथा स्वस्थ थे। उनमें अनिश्चय कम था वे ज्यादा आसानी से अपना खोया हुआ संतुलन वापस ले आते थे। इस अध्ययन से यह पता चला कि दो बच्चों की आयु के अंतर का विश्वास, संवेगात्मक तीव्रता, उत्तेजना, मन–मौजीपन, क्रोध, निश्चय बहानेबाजी, दोषारोषण और निर्देशन के अभाव से गहरा संबंध था। अभिवृत्तियों के अंतर का इस सीधे–सादे लिंग भेद से कोई उल्लेखनीय संबंध नहीं था।

स्कूल जीवन के प्रथम कुछ वर्षों में विकसित होने वाली कुछ अभिवृत्तियों का संबंध उस पूरी संस्कृति से भी होता है, जिस, वातावरण में बालक रहता है। सिस्टर मेरी चार्लीन ने अपने अध्ययन के आधार पर कहा कि वर्ष–भेद संबंधी समस्याओं, धार्मिक मतभेदों और आर्थिक पद के बारे में बच्चों की राय स्कूल में प्रवेश लेने से पूर्व ही बन चुकी होती है। इसी प्रकार आलपोर्ट ने बताया कि निजी अनुभवों के प्रतिक्रिया के अलावा बच्चे में अभिवृत्तियों, तादातम्य, अंतर्निवेश के फलस्वरूप भी पैदा होती है।

ऑलपोर्ट ने अभिवृत्ति के विकास की चार अवस्थाएं बताई हैं–

1. समन्वय – अभिवृत्तियां अनुभव के संगठन के आधार पर निर्मित होती है।
2. विभेदीकरण – व्यक्ति अपनी अभिवृत्तियों को दूसरे व्यक्तियों की अभिवृत्तियों से भिनन रखता है।
3. आघात – किसी प्रकार का आघात मिलने के कारण व्यक्ति उनके प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखता है।
4. अनुकूलन – व्यक्ति माता–पिता, साथियों, शिक्षकों तथा समाज द्वारा पूर्व–निर्धारित अभिवृत्तियों को सहज रूप में स्वीकार कर लेता है।

डेविस ने चारों स्थितियों में अभिवृत्ति निर्माण को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया कि कुछ व्यक्ति ऐसे थे जो दुख झोलने के कारण परेशान होकर कम्युनिस्ट बन गये (समन्वय), कुछ घर के आघातमय अनुभव के कारण कम्युनिस्ट बने (आघात); कुछ व्यक्ति नवीन विचारों में रुचि रखने के कारण कम्युनिस्ट बने गये (विभेदीकरण) तथा कुछ व्यक्ति ऐसे थे जो मित्रों, शिक्षकों, माता–पिता के सुझाव के कारण कम्युनिस्ट बने (अनुकूलन)। कहने का तात्पर्य है कि अभिवृत्ति निर्माण के अभिवृत्तियों का संगठन महत्वपूर्ण है। रोजेनबर्ग ने अपने सिद्धांत में इन्हें S-R के मध्य 'मध्यवर्ती चर' (Intervening Variable) के रूप में स्वीकार किया है। उनका कहना है कि संज्ञान, प्रभाव एवं व्यवहार अभिवृत्ति के निर्धारक हैं।

अभिवृत्तियों की विशेषताएं – जिस प्रकार कुछ पदार्थों, व्यक्तियों, कार्यकलापों, पेशों में दत्तचित्त हो जाने की हमारी प्रवृत्ति होती है और उस प्रवृत्ति के कारण हम अपना ध्यान उसमें केन्द्रित कर देते हैं, उसकी ओर आकृष्ट होते हैं और उसके साथ सम्पर्क स्थापित करने के आनन्द की अनुभूति करते हैं, उसी प्रकार, कुछ पदार्थों, व्यक्तियों, विषयों और संस्थाओं के प्रति हमारी भावनाएं उत्तम कोटि की होती है और

उनको हम आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं तथा कुछ के प्रति हमारी भावनाएं विकृत होती हैं। यही भावनाएं हमारी अभिवृत्तियां हैं। किसी वस्तु के प्रति हमारी अभिवृत्ति वह प्रवृत्ति होती है, जिसके अनुसार हम उस वस्तु के प्रति अनुक्रिया करते हैं।

टिप्पणी

ये प्रवृत्तियां कुछ वस्तुओं के प्रति अधिक तीव्र होती हैं, कुछ के साथ कम तीव्र। उनकी कुछ के साथ अधिक संयोजकता होती है, कुछ के साथ कम।

इस प्रकार प्रत्येक अभिवृत्ति में तीन लक्षण होते हैं–

(अ) उस वस्तु की उपस्थिति, जिसके प्रति हमारी भावनाएं उत्पन्न होती हैं।

(ब) भावनाओं का अधिक और कम तीव्र होना (Intensity of the feeling)।

(स) भावनाओं का संयुज होना (Valency direction of the feeling)।

ये वस्तुएं जिनके प्रति हमारी भावनाएं अथवा अभिवृत्तियां विकृत होती है, निम्नांकित हैं–

(i) कुछ देश, धर्म एवं जातियां

(ii) कुछ पेशे

(iii) विद्यालय, संस्थाएं तथा कुछ अध्यापक।

अभिवृत्ति के आयाम – अभिवृत्ति के चार आयाम होते हैं– तीव्रता (Intensity), दिशा (Direction) विस्तार (Span) और अवधि (Duration)। किसी अभिवृत्ति की तीव्रता का प्रमाण इस बात में मिलता है कि वह किसी व्यक्ति के व्यवहार को किस सीमा तक प्रेरित करती है। तीव्रता की सीमाओं का पता इस बात से लगाया जा सकता है कि किसी अनुक्रिया को रोकने के लिए किस प्रकार के अवरोधों की आवश्यकता पड़ती है। क्षीण अभिवृत्ति द्वारा प्रेरित व्यवहार को ऐसी बाधाओं द्वारा रोका जा सकता है जिनकी वास्तविक प्रतिरोध–क्षमता देखने में बहुत कम मालूम होती है, परन्तु तीव्र अभिवृत्ति अनुल्लंघनीय बाधाओं के बावजूद व्यवहार में व्यक्त होकर ही रहती है। अवलोकन करने वाले को इस बात का आभास रहना चाहिए कि किसी भी अभिवृत्ति को कई प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है और यदि वह तीव्र होती है तो कठिन बाधाओं का सामना होने पर उसकी अभिवृत्ति के तरीके में हेर–फेर होने की संभावना बढ़ जाती है। यदि किसी बच्चे में प्रधानाचार्य के प्रति तीव्र नकारात्मक अभिवृत्ति है, तो उसे उन पर प्रत्यक्ष प्रहार करने से तो रोका जा सकता है, परन्तु उसे कॉलिज की दीवारों पर, सार्वजनिक स्थानों पर अशोभनीय तथा गन्दी–गन्दी बातें लिखने से नहीं रोका जा सकता।

किसी अभिवृत्ति की दिशा बच्चे के व्यवहार में उस शक्ति के रूप में दिखाई देती है जो बच्चे को किसी विशेष दिशा की ओर आकर्षित या उस दिशा से विमुख करती है या उस दिशा की ओर बढ़ने की प्रेरणा ही उत्पन्न नहीं कर पाती, जैसे–'मेरे लिए इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता' वाली अभिवृत्ति यद्यपि, व्यवहार किसी खास दिशा में होने से, उससे प्रत्यक्ष संबंध रखने वाली अभिवृत्ति का पता लगता है। लेकिन, कई अवसर ऐसे भी होते हैं जहां बिल्कुल ही विपरीत निष्कर्ष निकालना उचित होता है। हो सकता है कि कोई व्यक्ति किसी समूह के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखता हो, पर वह उसमें सम्मिलित हो जाय, बाहर से देखने में उसकी अभिवृत्ति बहुत सकारात्मक हो, परन्तु बहुत ही गूढ़ ढंग से वह उस दल में फूट डाल दे और उसमें गड़बड़ी मचा दें या उसे अपने लक्ष्य की ओर मोड़ दे।

टिप्पणी

व्यापकता का ज्ञान, किसी व्यक्ति की अभिवृत्तियों के विभिन्न प्रकारों के व्यापक सर्वेक्षण से होता है। कुछ अभिवृत्तियों के प्रभाव व्यापक तथा स्थायी होते हैं ये अभिवृत्तियों, विविध प्रकार की ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं, जो भावनाओं को उस समय तक बल प्रदान करती रहती हैं, जब तक कि वे सामान्यता का रूप न धारण कर ले। कोई ऐसी अकेली प्रबल घटना भी, जिसका सामान्यीकरण संभव हो, बहुत व्यापक प्रभाव उत्पन्न करती है। अन्य अभिवृत्तियां या तो विलक्षण होती हैं या हद से हद उनका संबंध व्यवहार के एक बहुत ही छोटे क्षेत्र से होता है। जो काम बच्चा आमतौर पर नहीं करता, उनमें इस प्रकार की सीमित अभिवृत्ति का प्रमाण मिलता है।

अभिवृत्ति की अवधि – एक और पहलू है जो शिक्षकों के लिये महत्वपूर्ण है। शिक्षा का एक उद्देश्य है, मौजूदा नकारात्मक अभिवृत्तियों को सुधारना और ऐसी नई अभिवृत्तियां पैदा करना, जो सकारात्मक और स्थायी हों। कुछ अभिवृत्तियां केवल इसलिए ज्यादा समय तक नहीं टिक पाती कि उन्हें अनुभवों का अवलम्बन नहीं मिलता। वास्तव में, कभी–कभी ऐसा भी होता है कि नये अनुभव किसी पुरानी अभिवृत्ति को बिल्कुल ही उलट दें। आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि कोई अभिवृत्ति उसी समय तक बनी रहती है जब तक वह उस व्यक्ति को अपने लक्ष्यों तक पहुंचाने में सहायता दे। यह बात स्पष्ट है कि अभिवृत्तियां अनुभव से बदलती हैं। बहुत सी नकारात्मक अभिवृत्तियां बदलकर सकारात्मक या बहुत सकारात्मक अभिवृत्तियां बदलकर नकारात्मक हो जाती हैं या फिर इन दो सीमा–बिन्दुओं के बीच उनमें थोड़ा बहुत अन्तर आ जाता है।

अभिवृत्ति मापन क्यों

बुद्धि और अभियोग्यता के होते हुए भी यदि छात्र में कक्षा कार्य के प्रति उत्तम अभिवृत्तियों का अभाव है, तो अधिगम की मात्रा निश्चित रूप से कम होगी। विषय के प्रति अभिवृत्ति छात्रों को सीखने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करती है। शिक्षक संगी–साथियों, विद्यालय, कक्षा क्रियाओं व पढ़ाये जाने वाले विविध विषयों के प्रति अच्छी अभिवृत्तियां शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होती है। इसके विपरीत, इन वस्तुओं तथा व्यक्तियों के प्रति छात्रों की विकृत अभिवृत्तियां, विद्यालय तथा शिक्षा के प्रति तटस्थता तथा अनेक विद्रोह की भावना पैदा कर देती हैं, फलस्वरूप, शिक्षा के अन्तिम लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। अतः अध्यापक के लिये छात्रों की बुद्धि और अभियोग्यता का परीक्षण जितना आवश्यक और महत्वपूर्ण है, अभिवृत्तियों का मापन उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है।

अभिवृत्ति मापन निम्नांकित बिन्दुओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है–

1. अभिवृत्ति, बालक की विषयगत उपलब्धि तथा सीखने के तरीके दोनों को ही प्रमाणित करती है।
2. अभिवृत्तियों का विकास शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना जाता है।

बालक उन बातों की याद रखते हैं, जिनके प्रति उनकी अभिवृत्ति सकारात्मक होती है तथा उन बातों को भूल जाते हैं, जिनके प्रति उनकी विकृत अभिवृत्ति होती है। अभिवृत्ति शिक्षण कार्य को प्रभावहीन बना देती है। विभिन्न विषयों का शिक्षण केवल

इसीलिये नहीं कराया जाता कि बालक इन विषयों से संबंधित तथ्यों, सिद्धांतों एवं प्रत्ययों की जानकारी प्राप्त कर लें अथवा कुछ विशेष दक्षता अपने में विकसित कर लें वरन् इसीलिए भी कराया जाता है कि वे उत्तम अभिवृत्तियों का विकास कर सकें।

टिप्पणी

विभिन्न विषयों के शिक्षण से अभिवृत्तियों का विकास कैसे होता है, इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार दिया जा रहा है–

इतिहास – उत्तम नागरिकता, निष्पक्ष चिन्तनशील, ऐतिहासिक वृत्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक रुचियां, सामयिक, स्थानीय तथा विश्व इतिहास में रुचि, पर्यटन, आर्ट गैलरी, अजायबघरों में रुचि आदि।

भूगोल – देश प्रेम, विश्वप्रेम, अन्तर्राष्ट्रीय समक्षता, देश–विदेश में भ्रमण करने की इच्छा भौगोलिक पदार्थों की आकृतियां बनाने तथा अन्य देशों की भौगोलिक परिस्थितियों का चित्रण करने की इच्छा आदि।

सामाजिक अध्ययन – समाज की सभी संस्थाओं, छात्रों के प्रति उदार दृष्टिकोण, विश्व बन्धुत्व की भावना, सहकारिता, सहिष्णुता, विवेकपूर्ण आशावादिता आदि।

अभिवृत्ति मापन– ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Attitude Assessment- Historical Pesrspective)

अभिवृत्ति परीक्षाओं के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से अभिवृत्ति मापन का इतिहास अत्यन्त प्राचीन नहीं है। लगभग पांच दशक पूर्व ही मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों एवं विद्वानों ने इस दिशा में परीक्षण निर्माण कार्य प्रारम्भ किया, जिनमें थर्स्टन का नाम सर्वप्रथम आता है। थर्स्टन ने सन् 1927 में मौलिक रूप से सर्वप्रथम अभिवृत्ति मापनी 'युग्य तुलनात्मक निर्णय प्रविधि (Method of Paired Comparative Judgement) का निर्माण किया उनके इस कार्य को सन् 1951 में इस प्रविधि की सार्थकता (Test of Significance) ज्ञात करने हेतु X2 - Text का प्रतिपादन कर मोस्टेलर ने अत्यधिक बल दिया। फलतः कुछ समय पश्चात ही थर्स्टन ने अपने सहयोगी येव की मदद से आधुनिक समय में सबसे अधिक प्रचलित प्रविधि 'समदृष्टि अन्तर विधि' (Method of Equal Appering Interval) का विकास किया लिकर्ट ने सन 1932 में 'योग निर्धारण विधि (Method of Summated Rating) का निर्माण कर इस क्षेत्र को आगे बढ़ाया। इसी प्रकार सफीर ने सन् 1937 में 'क्रमबद्ध अन्तर विधि' (Method of Successive Intrval), गटमैन ने सन् 1945 में 'स्केलोग्राम विधि' (Scalogram Method), एडवर्ड्स तथा किलपैट्रिक ने सन् 1948 में 'भेदबोधक मापनी में 'भेदबोधक मापनी विधि' (Method of Scale Discrimination), ओसगुड ने 'सिमेन्टिक डिफरेंशियल विधि' (Sementic Differential Method) तथा रेमर्स ने 'मास्टर प्रकार मापनी; का निर्माण कर अभिवृत्ति मापन के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गत 50 वर्षों में अभिवृत्ति मापन के क्षेत्र में परीक्षण निर्माण कार्य में पर्याप्त प्रगति हुई। साथ ही, इन परीक्षणों का समय–समय पर मूल्यांकन भी किया जाता रहा जिनमें हेवनर सीशोर (Seshore) 1933, बलिन तथा फर्नस्वार्थ (Ballin and Farnswrth), 1941, वेब 1951 आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने किसी पहलू विशेष के आधार पर पूर्व निर्मित परीक्षणों की आलोचना एवं मूल्यांकन किया।

टिप्पणी

उपरोक्त प्रविधियों के आधार पर आवश्यकता पड़ने पर समय–समय पर अनेकों अभिवृत्ति–मापनियों की रचना दी गई। उदाहरणार्थ, थर्स्टन ने अपने साथियों के सहयोग से नीग्रो, चीनी, बुद्ध, बाइबिल, चर्च देशभक्ति आदि से संबंधित अभिवृत्ति–मापनी की एक दो शृंखला का विकास किया। सन् 1953 में बोगार्ड्स ने 'सामाजिक–अन्तर–मापनी (Social Distance Scale) की रचना। कोरिया युद्ध के प्रति अमेरिका वालों की अभिवृत्ति जानने का निर्माण किया। तत्पश्चात कूम्ब तथा ट्रेवर्स ने शिक्षा, आर्थिक वार्तालाप, कानून, परिवार, नैतिकता आदि के प्रति अभिवृत्ति मापनियों का निर्माण कियां।

अभिवृत्ति–परीक्षण (Attitude Tests)

अभिवृत्ति परीक्षण की दो प्रमुख प्रविधियां हैं–

(अ) व्यावहारिक प्रविधियां (Behavioural Techniques)

(ब) मनोवैज्ञानिक प्रविधियां (Psychological Techniques)

(अ) व्यावहारिक प्रविधियां (Behavioural Techniques) –

इन प्रविधियों के अन्तर्गत हम साधारण व्यवहार के माध्यम से ही अभिवृत्तियों का पता लगाते हैं। यह विधि वस्तुनिष्ठ तो है किन्तु इस विधि में कठिनाई यह है कि अधिक व्यक्तियों की अभिवृत्ति मापन करने में समय बहुत अधिक लगता है। व्यवहारिक प्रविधियों के रूप में हम जिन प्रविधियों का उपयोग अभिवृत्ति मापन हेतु करते हैं, उनमें चार प्रमुख हैं, जो निम्नांकित हैं–

1. निरीक्षण (Obsavation)
2. आत्म–प्रतिवेदन (Self-Reports)
3. साक्षात्कार (Interview)
4. सम्मति प्रकाशन (Tests of Opinion)

(ब) मनोवैज्ञानिक प्रविधियां (Psycholigical Techniques) –

यूं तो अभिवृत्ति मापन में व्यावहारिक प्रविधियों के योगदान को कम नहीं आंका जा सकता, फिर भी इन प्रविधियों की अपनी कुछ सीमाएं थी। इसी के परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग प्रकाश में आया तथा यही कारण था कि बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक के प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रविधियों का निर्माण होने लगा कालान्तर में कुछ विभिन्न प्रविधियां विकसित हुई, जिनका आज अभिवृत्ति मापन के क्षेत्र में व्यापकता से प्रयोग किया जा रहा है।

कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक प्रविधियां निम्नांकित हैं–

1. थर्स्टन की युग्म तुलना विधि
2. थर्स्टन तथा येव की चर्च संबंधी सम–दृष्टि अंतर विधि
3. सफीर क्रमबद्ध– अंतर विधि
4. लिकर्ट योग–निर्धारण विधि
5. शाब्दिक भेदक मापनी

6. एडवर्ड्स तथा किल पैट्रिक की मापनी भेद बोधक विधि
7. गटमैन स्केलोग्राम विधि।

(ख) अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

टिप्पणी

अधिगम एक व्यापक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की सफलता केवल प्रभावशाली शिक्षण पर ही नहीं वरन् अनेक सामूहिक कारकों पर निर्भर करती है। शिक्षार्थी, शिक्षक, पाठ्यवस्तु, अधिगम व्यवस्था, वातावरण इत्यादि से संबंधित अनेक कारक अधिगम की मात्रा, स्वरूप एवं गति के निर्धारक के रूप में उत्तरदायी होते हैं। ये कारक मुख्य रूप से छह होते हैं। इन कारकों का संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है–

(अ) अधिगम को प्रभावित करने वाले सामान्य कारक (General Factors Affecting Learning)

अधिगम को प्रभावित करने वाले कुछ सामान्य कारक भी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. **थकान** (Fatigue)–सामान्यतः कार्य करने के दौरान जब कोई व्यक्ति यह महसूस करता है कि उसका शरीर कार्य करने में साथ नहीं दे रहा है तो हम इसे थकान कहते हैं। इस थकान का कारण मांसपंशियों में तनाव को माना जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने थकान के शारीरिक एवं मानसिक कारणों पर शोध किये हैं। मनोवैज्ञानिक फ्रीमैन (Freeman) के अनुसार–थकान वह अवस्था है जिसमें शारीरिक तन्त्र प्रतिक्रिया नहीं करता तथा मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता है। स्टार्च ;जंतबीद्ध कहता है कि यदि किसी व्यक्ति की किसी कार्य में रुचि नहीं है तब भी वह शारीरिक स्थिति ठीक होने के बावजूद थकान महसूस करता है। इस प्रकार थकान एक ऐसी मनोवैज्ञानिक अवस्था है जिसमें कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है तथा पूरी तरह समाप्त हो जाती है।
2. **संघर्ष** (Conflicts)–संघर्ष तनाव या द्वन्द्व का ही नाम है। जब दो विपरीत परिस्थितियों या उद्देश्य या विचार एक साथ किसी के मस्तिष्क में आते हैं और वह व्यक्ति इनमें से किसी एक को निश्चित नहीं कर पाता तो ऐसी स्थिति मानसिक संघर्ष की स्थिति कहलाती है। उदाहरण के तौर पर एक विद्यार्थी परीक्षा में भी सबसे अच्छे अंक प्राप्त करना चाहता है कि तब दूसरी ओर खेलों में भी सर्वोत्तम स्थान पाना चाहता है लेकिन दोनों में से किसी एक स्थिति का चयन नहीं कर पाता है तो इस प्रकार की स्थिति संघर्ष कहलाती है। बाद में यह स्थिति सांवेगिक तनाव को जन्म देती है और तब तक बनी रहती है जब तक व्यक्ति किसी निर्णय पर नहीं पहुंच जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि संघर्ष एक मानसिक कमी है जिसमें व्यक्ति यह निर्णय नहीं ले पाता है कि उसे क्या करना चाहिए। क्या नहीं। इस प्रकार, संघर्ष या तनाव अधिगम में बाधक तत्व है।
3. **चिन्ता** (Anxiety)–मनोवैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार चिन्ता व्यक्ति की ऐसी मानसिक अवस्था है जिसमें वह एक अनजान अप्रत्याशित डर से परेशान हो जाता है। उदाहरण के तौर पर तूफान के आने पर इसका सामना करना एक चिन्ता का विषय अवश्य है लेकिन रास्ता तय करते समय बिना किसी आधार के तूफान के बारे में सोचना चिन्ता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। स्पष्ट है कि जब कोई अधिगमकर्त्ता चिन्ताग्रस्त रहता है तो वह ऐसी स्थिति में अधिगम पर

टिप्पणी

ध्यान नहीं दे सकता। देखने में आता है कि जब कोई विद्यार्थी किसी विषय या पाठ्य–वस्तु को बहुत कठिन मानता है तो यह निश्चित है कि वह उसे न तो ठीक से समझ पायेगा और न ही ठीक से केन्द्रित कर पायेगा। परिणामतः उसकी व्यर्थ की चिन्ता उसके अधिगम में एक बाधक तत्व बन जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को व्यर्थ की चिन्ता से बचना चाहिये तथा उसके उपस्थित होने पर उसका दृढ़ता से मुकाबला करना चाहिये।

4. **कुण्ठा** (Frustration)–मानव व्यवहार दो प्रकार के प्रेरकों से प्रभावित होता है–आन्तरिक तथा बाह्य। वह अपना उद्देश्य इन प्रेरकों के आधार पर ही तय करता है। वह निश्चित करता है कि उसे जीवन में क्या प्राप्त करना है। अपना उद्देश्य निर्धारित करने के बाद वह इस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। ऐसा देखा गया है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति में जब कुछ बाधायें सामने आ जाती हैं तथा बार–बार के प्रयास करने के बावजूद भी वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता, तो वह एक ऐसी मानसिक स्थिति का शिकार हो जाता है जिसे मनोविज्ञान की भाषा में कुण्ठा कहते हैं।

   कुण्ठा की अवस्था में व्यक्ति तनाव में आ जाता है, अपना मानसिक संतुलन बिगाड़ लेता है तथा तनावग्रस्त हो जाता है। यह वह मानसिक अवस्था होती है जिसमें बालक निष्क्रिय हो जाता है तथा अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता है और इस प्रकार अभिगम के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने लगता हैं लेकिन कुछ बालक ऐसे भी होते हैं जो इन तत्वों को चुनौती मानकर उसका धैर्य से सामना कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

5. **अहं** (Ego)–सामान्य अर्थ में इस मनोवैज्ञानिक पद को आत्मचेतना के नाम से जाना जाता है। यह व्यक्ति की वह मानसिक अवस्था है जिसमें वह स्वयं को अपने में ही खोया महसूस करता है। हर समय स्वयं के बारे में सोचता रहता है तथा कुछ–कुछ इस बाहरी दुनिया से भी अलग–अलग रहने लगता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्ति का अहं उसे अपने कार्य से नियुक्त कर देता है। यही कारण है कि इस अहं के कारण ही छात्र अपने कक्षा कार्य में मन नहीं लगता तथा वह अपना ध्यान अधिगम में केन्द्रित नहीं कर पाता। अहं मात्र उसके अधिगम को ही प्रभावित नहीं करता है वरन् यह उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में ही नकारात्मक प्रवृत्तियों को जन्म देकर उसे दोषपूर्ण बना देता है। जिन व्यक्तियों में अहं भावना अत्यधिक घर कर जाती है। उन्हें समाज अच्छी निगाह से नहीं देखता क्योंकि ऐसे लोग सामाजिक हित के कार्यों में ज्यादा रुचि नहीं दिखाते और यही कारण है कि लोग इन्हें अहंकारी (Egoistic) करार देते हैं।

6. **शिक्षण–अधिगम की अनुपयुक्त विधियां** (Appropriate method of Learning Teaching)–अधिगम विधियां वे होती हैं जिनके माध्यम से अध्यापक सिखाता है या पढ़ाता है। दोनों विधियों की यह मान्यता है कि अधिगमकर्त्ता सक्रिय बना रहे। अब यदि अधिगमकर्ता की दृष्टि से ये शिक्षण–अधिगम विधियां उपयुक्त नहीं है तो वे सक्रिय नहीं रह सकेंगे तथा ऐसी स्थिति में किसी भी प्रकार के अधिगम की कल्पना नहीं की जा सकती। हम जानते हैं कि छोटे बालक खेल क्रियाओं व कहानियों में रुचि लेते हैं इसलिये उन्हें खेल–विधि तथा कहानी

टिप्पणी

कथन विधि से पढ़ाया जाना चाहिये। बाल्यावस्था में बच्चे सामूहिक क्रियाओं में रुचि लेते हैं अतः इस अवस्था में बालकों को सामूहिक विधियों के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिये। किशोरावस्था में छात्र सार्थक एवं तार्किक क्रियाओं में रुचि लेते हैं अतः इस अवस्था में शिक्षण के लिये इन्हीं विधियों को अपनाया जाना चाहिये। स्पष्ट है कि यदि अब उपरोक्त प्रक्रिया में फेर–बदल किया जाता है तो छात्र पढ़ने में रुचि नहीं लेंगे और ऐसी स्थिति में ये विधियां अधिगम के मार्ग में बाधक सिद्ध होने के अतिरिक्त और कुछ सार्थक योगदान नहीं कर पायेगी।

(ब) शिक्षार्थी से संबंधित कारक (Factors Belonging to the Learner)

बालक जब प्रथम बार विद्यालय में प्रवेश करता है तो उस पर घर का वातावरण छाया रहता है। विद्यालय प्रांगण में आने पर उसके मन में अनेक जिज्ञासाएं उठती हैं जिनको वह शान्त करना चाहता है। उसे नवीन वातावरण में समायोजन करना होता है। ऐसी स्थिति में अधिगम क्रिया अनेक कारकों से प्रभावित होती है। जो निम्न हैं–

1. **बालक** (Child)–बालक किसी भी क्रिया को सीखने का केन्द्र बिन्दु होता है। शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। इस दृष्टि से बालकों की रुचि, योग्यता, क्षमता, व्यक्तिगत भेद बुद्धि आदि के आधार पर सम्पन्न की गई क्रिया प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है। बालक शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का आधार है। इसलिये उसके अभाव में अधिगम की कल्पना थी नहीं की जा सकती है।
2. **सीखने की इच्छा** (Willingness to learn)–बालकों को नया ज्ञान देने से पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि उनमें सीखने के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की जायें क्योंकि ऐसा होने पर विद्यार्थी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी किसी बात को सीखने में सफल हो जाता है सीखने की इच्छा के अतिरिक्त छात्रों को आकांक्षा स्तर भी उच्च कोटि का होना चाहिए जिससे बालक कठिन तथ्यों को भी आसानी से समझ सकें।
3. **शैक्षिक पृष्ठभूमि** (Educational Background)–अधिगम पर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ता है कि सीखने वाले की शैक्षिक योग्यता क्या है? यदि छात्र किसी विषय में पिछड़ा है तो उस विषय से संबंधित नवीन ज्ञान सीखने में उसे कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। यदि किसी छात्र की एक विषय में शैक्षिक योग्यता सामान्य से अधिक है तो छात्र उस विषय में नया ज्ञान सुगमता से सीख लेगा।
4. **शारीरिक व मानसिक स्वास्थ** (Physical and mental Health)–सीखने से पहले बालक का शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहना भी नितान्त आवश्यक है, क्योंकि बालक के ध्यान, रुचि व एकाग्रता पर इसका प्रभाव पड़ता है। किसी भी प्रकार की मानसिक विकृति, शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ बालक शीघ्र ही थक जाते हैं।
5. **परिपक्वता** (Maturity)–अधिगम की प्रक्रिया को बालक की शारीरिक एवं मानसिक परिपक्वता अधिक प्रभावी बनाती है। छोटी कक्षाओं में बालक की मांस–पेशियों को मजबूत बनाने की ओर ध्यान दिया जाता है ताकि वे कलम, किताब आदि को पकड़ना सीख जायें। उन्हें व्याकरण एवं पहाड़े आदि का ज्ञान भी इसी दृष्टि से बाद में कराया जाता है। बहुत–सी चीजें बालक तभी सीख

पाता है जब उसमें परिपक्वता आ जाती है चाहे हम उसे कितना भी प्रशिक्षण क्यों न दें।

टिप्पणी

6. **अभिप्रेरणा** (Motivation)–सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण योगदान है। यदि बालक को किसी नवीनतम ज्ञान अथवा कार्य को सीखने के लिये प्रेरित नहीं किया जाता है तो वह उस क्रिया में रुचि नहीं लेगा। अभिप्रेरणा उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि बालक को उसका लक्ष्य स्पष्ट कर दिया जाये।

7. **सीखने वाले की अभिवृत्ति** (Attitude of the Learner)–यदि विषय के प्रति छात्र की नकारात्मक अभिवृत्ति है तो शिक्षक चाहे जितना परिश्रम करे छात्र के अधिगम में उन्नति होने की सम्भावना नहीं होती है। इसके विपरीत यदि सीखने वाले की किसी विषय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति है तो वह सरलता से उस विषय को सीख जाता है। किसी विषय के प्रति सीखने वाले का रुझान बहुत महत्वपूर्ण होता है।

8. **सीखने का समय तथा अवधि** (Time and Duration of Learning)–यदि छात्र अधिक देर तक किसी क्रिया को करता रहता है तो वह थकान का अनुभव करने लगता है और थकान अनुभव होने से अधिगम प्रक्रिया में शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। विद्यालयों में समय चक्र बनाते समय भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि पहले कठिन विषय तथा बाद में सरल विषय पढ़ाये जाये। मध्यान्तर की भी व्यवस्था इसी उद्देश्य से की जाती है।

9. **बुद्धि** (Intelligence)–तीव्र बुद्धि वाला छात्र किसी भी ज्ञान को शीघ्रता एवं सरलता से सीख लेता है तथा मन्द बुद्धि वाले छात्र को सामान्य बुद्धि वाले छात्र के साथ भी सीखने में बाधा रहती है। बुद्धिलब्धि तथा शैक्षिक लब्धि में उच्च सकारात्मक सह–सम्बन्ध होता है। बुद्धि लब्धि तथा शैक्षिक लब्धि में उच्च सकारात्मक सह–सम्बन्ध होता है। तीव्र बुद्धि बालक को अभिप्रेरणा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अधिगम प्रक्रिया का बुद्धि एक सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं।

10. **अधिगम प्रक्रिया** (Learning Process)–किसी क्रिया को किस प्रकार सम्पादित किया जाता है, इससे भी अधिगम प्रभावित होता है। यद्यपि मनोवैज्ञानिक अधिगम की प्रक्रिया के सम्पादन पर एक मत नहीं है, फिर भी, यह बात अपनी जगह सत्य है कि बालक किसी भी क्रिया को अपने ही ढंग से ग्रहण करता है चाहे अधिगम की प्रक्रिया किसी भी ढंग से क्यों न सम्पादित की जायें।

(स) शिक्षक से संबंधित कारक (Factors Belonging to the Teacher)

अधिगम को प्रभावित करने वाले शिक्षक से संबंधित कुछ कारक इस प्रकार हैं–

1. **विषय का ज्ञान** (Knowledge of Subject)–अध्यापक का किसी विषय से संबंधित ज्ञान, अनुभव एवं योग्यता आदि छात्रों के अधिगम को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। यदि अध्यापक को अपने विषय की गहन जानकारी नहीं है तो वह छात्रों को बहुत कुछ नहीं दे सकता। इसके विपरीत, यदि अध्यापक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान है तो वह आत्मविश्वास के साथ छात्रों को नवीन ज्ञान देने में सक्षम होगा तथा उसका शिक्षण प्रभावी होगा।

टिप्पणी

2. **शिक्षक का व्यवहार** (Teacher's Behaviour)–शिक्षक का व्यवहार छात्रों के सीखने को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। शिक्षक में एक आदर्श शिक्षक के सभी गुण होने चाहिए। उसके व्यवहार में सहानुभूति, सहयोग, समानता, शिक्षण कला में निपुणता, मृदुभाषी, संयत आदि गुण यदि हैं तो छात्र सहज रूप से सब कुछ सीख सकेंगे। लेकिन यदि शिक्षक का व्यवहार अत्यन्त कठोर है तो छात्र उसकी कला से पलायन करेंगे। साथ ही अध्यापक को सभी छात्रों से एक जैसा ही व्यवहार करना चाहिये ताकि छात्रों के मन में उसके प्रति दुर्भावना पैदा न हो।

3. **मनोविज्ञान का ज्ञान** (Knowledge of Psychology)–कहा गया है कि शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान एक अध्यापक के लिए अनिवार्य है। इस परिप्रेक्ष्य में यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती हैं कि जब तक एक अध्यापक को मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता तब तक वह इन सिद्धान्तों का शिक्षा में प्रयोग कर उसे प्रभावी नहीं बना सकता। उसे बाल विकास प्रक्रिया, वंशानुक्रम, व्यक्तिगत विभेद, प्रेरणा, सीखने के सिद्धान्त आदि का ज्ञान होना ही चाहिये। निःसंन्देह आधुनिक शिक्षा को मनोविज्ञान ने एक नई दिशा प्रदान की है।

4. **शिक्षण–विधि** (Method of Teaching)–शिक्षण–विधि का सीधा सम्बन्ध अधिगम प्रक्रिया से होता है। साथ ही प्रत्येक शिक्षक का पढ़ाने का तरीका भी भिन्न होता है तथा सभी छात्र एक ही विधि से नहीं सीख पाते। शिक्षण की विधि जितनी अधिक वैज्ञानिक एवं प्रभावशाली होगी उतनी ही सीखने की प्रक्रिया सरल एवं लाभप्रद होगी। बच्चों के संदर्भ में खेल विधि द्वारा सिखाना, करके सिखाना, निरीक्षण द्वारा सीखना, योजना विधि द्वारा सीखना, खोज विधि द्वारा सीखना आदि का अपना अलग–अलग महत्व है।

5. **व्यक्तिगत भेदों का ज्ञान** (Knowledge of Individual Differences)–प्रत्येक छात्र की बुद्धि, रुचि, योग्यता, क्षमता, अभिवृत्ति आदि अलग–अलग होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण कुछ छात्र अध्यापक द्वारा प्रदत्त ज्ञान को आसानी से आत्मसात कर लेते हैं और कुछ देर से कर पाते हैं या बिल्कुल ही नहीं कर पाते हैं सामान्यतः एक कला में अध्यापक को तीन प्रकार के छात्रों का सामना करना होता है। मेधावी, सामान्य तथा पिछड़े हुए बालक और इन्हीं के अनुरूप उसे अपने शिक्षण की व्यवस्था करनी होती है। व्यक्तिगत भेद, अध्यापक को छात्र के समझने में पूरा–पूरा सहयोग देते हैं।

6. **व्यक्तिगत** (Personality)–शिक्षक का व्यक्तिगत सफल शिक्षण का आधार होता है। इस दृष्टि से शिक्षक का व्यक्ति आकर्षक एवं अत्यन्त प्रभावशाली होना चाहिये। उसे अपने कार्यों एवं व्यवहार में सन्तुलन बनाये रखते हुए छात्रों पर एक अनूठी छाप छोड़नी चाहिये।

   छात्र जाने–अनजाने शिक्षक के व्यवहार से बहुत–सी बातें स्वयं ही सीख लेते हैं। कहा भी गया है कि शिक्षक छात्रों के लिये श्रेष्ठ प्रेरणा का काम करता है। इस दृष्टि से एक अध्यापक को आत्मविश्वासी, दृढ़–इच्छा शक्ति वाला कर्त्तव्यनिष्ठ, निरोगी, श्रेष्ठ रुचियों एवं अभिरुचियों वाला होना चाहिए।

7. **बालक–केन्द्रित शिक्षा** (Child-Centred Education)–बाल मनोविज्ञान ने आज शिक्षा की धारा एवं प्रत्यय को पूरी तरह बदल दिया है। प्राचीनकाल में शिक्षा का

टिप्पणी

केन्द्र बालक न होकर अध्यापक था। बालक की आवश्यकताओं, रुचियों, अभिरुचियों एवं दृष्टिकोणों की परवाह किये बिना ही शिक्षण कार्य चलता रहता था। अब समय बदल गया है और उसी के साथ–साथ अब शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बालक को गया है। अतः शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह जो भी ज्ञान छात्रों को प्रदान करे वह उनकी रुचियों, क्षमताओं एवं स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।

8. **समय सारणी** (Time Table)–शिक्षा मनोविज्ञान के कारण ही विद्यालयों में समय सारणी बनाते समय ध्यान रखा जाता है कि कौन–सा विषय पहले लिया जो ओर कौन सा बाद में। पहले बालकों की थकान, विश्राम एवं अवधान पर कोई ध्यान नहीं रखा जाता था लेकिन अब इन सभी पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। खेल के समय तथा दूसरी विविध क्रियाओं के आयोजन की भी व्यवस्था समय चक्र में सूक्ष्म रूप से कर ली जाती है। साथ ही, समय सारणी बनाते समय मौसम, बालकों की योग्यता, रुचि एवं व्यक्तिगत विभेदों पर भी ध्यान दिया जाता है।

9. **पाठ्य–सहगामी क्रियायें** (Co-Curricular Activities)–शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के योगदान के रूप में आज पाठ्यक्रम में अनेक महत्वपूर्ण सहगामी क्रियाओं को यथोचित स्थान दिया जाता है। पहले यह समझा जाता था कि पढ़ाई के अतिरिक्त क्रियाओं का आयोजन करने से छात्र अपना अमूल्य समय नष्ट करते हैं। लेकिन, अब यह विचार बदल गया है। परिणामतः वाद–विवाद प्रतियोगिता, निबन्ध, लेख, कहानी, अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, बालचर शिक्षा, भ्रम, छात्र–संघ, खेलकूद, अभिनय तथा नाटक, संगीत आदि इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देने के कारण बालकों के सर्वांगीण विकास में बहुत सहयोग मिलता है।

10. **अनुशासन** (Discipline)–शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के कारण आज यह धारणा निर्मूल हो गई है 'डण्डा हाथ से छूटा और मारपीट, भय एवं आतंक के बल पर कला में स्थायी अनुशासन की स्थापना नहीं की जा सकती। यह हो सकता कि छात्र तुरन्त कुछ समय के लिये अनुशासित हो जाये लेकिन कुछ समय बाद वह अपनी पुरानी प्रवृत्तियों पर पुनः लौट आयेंगे। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि छात्र अपराध करने पर दण्ड से डरते नहीं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि छात्र को मनमानी करने दी जाये। उसे उसके अपराध के अनुकूल दण्ड अवश्य दिया जाना चाहिये।

(द) पाठ्य–वस्तु से संबंधित कारक

अधिगम को प्रभावित करने वाले पाठ्य–वस्तु से संबंधित कुछ मुख्य कारक इस प्रकार हैं–

1. **विषय–वस्तु की प्रकृति** (Nature of Subject Matter)–विषय–वस्तु की प्रकृति अधिगम–प्रक्रिया को पूर्ण रूप से प्रभावित करती है। सीखी जाने वाली विषय–वस्तु यदि सरल है तो मध्यम श्रेणी का छात्र भी उसे सरलता से सीख सकता है और यदि विषय–वस्तु कठिन है तो छात्रों को सीखने में कठिनाई का अनुभव होता है। साथ ही, कठिन पाठय–वस्तु को याद करने में समय भी

अधिक लगता है, अपेक्षाकृत सरल पाठ्य–वस्तु के। इसके अतिरिक्त कविता, गद्य, गणित, विज्ञान आदि की प्रकृति भिन्न होने के कारण भी अधिगम प्रक्रिया प्रभावी होती है।

टिप्पणी

2. **विषय–वस्तु का आकार** (Size of Content)–विषय वस्तु का आकार अर्थात् उसकी लम्बाई एवं मात्रा भी छात्रों की अधिगम प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। देखने में आया है कि छात्र प्राथमिकता के तौर पर पहले उन पाठों का अध्ययन करता है जो छोटे होते हैं तथा विषय–वस्तु कम होती है। वह लम्बे–लम्बे पाठों से बचना चाहता है और यही कारण है कि जब विद्यार्थी को ऐसे पाठों को पढ़ने के लिये विवश किया जाता है तो वह इनकी तैयारी उतनी तत्परता एवं मन लगाकर नहीं करता जितना कि छोटे पाठों को। विस्तृत विषय–वस्तु से वह शीघ्र ही थक एवं ऊब जाता है।

3. **विषय–वस्तु का क्रम** (Serial Order of Content)–प्रत्येक विषय परन्तु का कठिनाई स्तर अलग–अलग होता है। इसलिये विषय–वस्तु को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने का क्रम भी उनके सीखने की प्रक्रिया के पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से छात्र को पहले सरल विषय–वस्तु पढ़ायी जाये। बाद में कठिन। ऐसा करने से वह कठिन पाठ्य–वस्तु को भी आसानी से सीख सकेगा। दूसरे शब्दों में, छात्रों के समक्ष पाठ्य–वस्तु प्रस्तुत करते समय हमें शिक्षण के महत्वपूर्ण सूत्र 'सरल' से 'कठिन की ओर' का अनुसरण करना चाहिये कि वे यह सूत्र पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से सम्बद्ध करने में भी सहायक सिद्ध होता है।

4. **उदाहरण प्रस्तुतीकरण** (Illustration Presentation)–प्रत्येक विषय में दो प्रत्यय होते हैं, स्थूल तथा सूक्ष्म/विद्यार्थी स्थूल प्रत्ययों को आसानी से समझ लेता है जबकि सूक्ष्म प्रत्ययों को समझने में से उसे कठिनाई होती है। इसलिये ऐसे प्रत्ययों का स्पष्टीकरण करने हेतु अध्यापक को उदाहरणों का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण देते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वे विद्यार्थी के दैनिक जीवन से संबंधित हो तथा तर्क संगत हो। दूसरे शब्दों में, पाठ्य–वस्तु को गहनता से समझाने की दृष्टि से अध्यापक को विशिष्ट से सामान्य की ओर अथवा उदाहरण से नियम की ओर शिक्षण सूत्रों को प्रयोग करना चाहिये।

5. **भाषा–शैली** (Language Style)–सीखने की प्रक्रिया में भाषा–शैली का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। प्रत्येक लेखक का विषय–वस्तु के प्रस्तुतीकरण का तरीका भिन्न होता है। एक अच्छे लेखक की यह पहचान होती है कि यह कठिन से कठिन पाठ्य–वस्तु सुमाह्य बना देता है। इसी दृष्टि से विषय–वस्तु की यदि सरल भाषा में बालकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाये तो वे सरलता से उसे सीख लेते हैं। कठिन भाषा एवं लम्बे–लम्बे वाक्य सीखने में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इसलिये भाषा सरल, संक्षिप्त, सुबोध एवं प्रवाहमय बनाने का प्रयास किया जाना चाहिये।

6. **दृश्य–श्रव्य सामग्री** (Audio-Visual material)–अधिगम को रोचक बनाने में दृश्य श्रव्य सामग्री का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कठिन से कठिन पाठ्य–वस्तु को भी दृश्य श्रव्य सामग्री के उपयोग से सुगम बनाया जा सकता है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जबरदस्ती सहायक–सामग्री का प्रयोग

टिप्पणी

पाठ्य–वस्तु में किया गया है। वस्तुतः, सहायक–सामग्री का प्रयोग विषय–वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है तथा उसी की मांग के अनुरूप दृश्य श्रव्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है। कहा भी गया है कि ''बेहूदा, बेढंगी एवं हास्यापद सहायक सामग्री के प्रयोग से तो बिना सहायक सामग्री के पढ़ाना कहीं अधिक श्रेयस्कर होता है।

7. **रुचिकर विषय–वस्तु** (Interesting Subject matter)–यदि पाठ्य–वस्तु रुचिकर है तो छात्र उसे खूब मन लगाकर पढ़ते हैं और यदि विषय–वस्तु रुचिकर नहीं है तो छात्र सीखने में ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते और शीघ्र ही ऊब जाते हैं या थक जाते हैं। इस दृष्टि से पाठ्य–वस्तु का रुचिकर होना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षण भी एक कला है। अतः अध्यापक को कला शिक्षण करने से पूर्व छात्रों में विषय के प्रति गहन रुचि उत्पन्न करनी चाहिये तथा अपनी सूझ–बूझ से विषय–वस्तु को रोचक बनाने में भरसक प्रयास करना चाहिये।

8. **विषय–वस्तु की उद्देश्यपूर्णता** (Purposiveness of Subject Matter)– यदि पाठ्य–वस्तु उद्देश्यपूर्ण है तथा छात्रों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती है तो छात्र उसे सरलता से सीख लेते हैं। अतः किसी भी विषय–वस्तु को बढ़ाने से पूर्व अध्यापक को छात्रों के समक्ष उससे जुड़े उद्देश्य एवं उपयोगिता को स्पष्ट कर देना चाहिये। वस्तुतः यह प्रत्यय सीखने के प्रभाव के नियम पर आधारित है। विद्यार्थी जिस चीज को अपने लिये उपयोगी समझता है उसे सीखने में भी तत्परता दिखाता है और जो उसके लिए उपयोगी नहीं होती उसे सीखने में भी वह लापरवाही बरतता है।

9. **विषय वस्तु की संरचना** (Structure of Subject Matter)–विषय–वस्तु की संरचना का अधिगम प्रक्रिया को सफल या असफल बनाने में बड़ा हाथ होता है। अतः विषय–वस्तु की संरचना के सिद्धान्तों का पालन करके विषय–वस्तु का संगठन करना चाहिये। इसके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक एवं तार्किक पहलुओं पर दृष्टि रखनी चाहिये। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विषय–वस्तु छात्र के मानसिक स्तर के अनुरूप हो तथा तार्किक दृष्टि से कठिन से कठिन एवं सूक्ष्म प्रत्ययों को समझाने के लिये चित्र, रेखाचित्र, ग्राफ, आंकड़े एवं उदाहरणों का यथास्थान प्रयोग किया जाना चाहिये। समय–समय पर विषय–वस्तु को पुनर्गठित भी करते रहना चाहिये।

10. **विभिन्न विषयों का कठिनाई स्तर** (Difficulty Level of Various Subjects)– प्रत्येक विषय की प्रकृति अनूठी होती है। ठीक इसी प्रकार प्रकृति ने प्रत्येक छात्र में रुचि का स्वरूप भी उसकी व्यक्तिगत विभिन्नता के सन्दर्भ में सुनिश्चित किया है। इसलिये एक विद्यार्थी अंग्रेजी में रुचि लेता है तो दूसरा गणित में तीसरा कला में आदि। विषयों का कठिनाई स्तर भी मूलतः एक–दूसरे से पर्याप्त भिन्न होता है और इसलिये एक विषय विद्यार्थी को सरल प्रतीत होता है तो दूसरा अत्यन्त जटिल।

इसी सन्दर्भ में यह भी कहना तर्कसंगत है कि कुछ विषयों जैसे–संगीत, गृह विज्ञान, साहित्य, ललित–कलाएं आदि में लड़कियां अधिक रुचि रखती हैं जबकि लड़के विज्ञान, गणित, सामाजिक एवं यान्त्रिक विषयों में।

(य) **अधिगम–व्यवस्था से संबंधित कारक** (Factors Related to Management of Learning)

टिप्पणी

अधिगम को प्रभावित करने वाले अधिगम–व्यवस्था से संबंधित कुछ मुख्य कारक निम्न प्रकार से हैं–

1. **सम्पूर्ण बनाम खण्ड विधि** (Whole Vs. Poed method)–इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि इसके आधार पर विद्यार्थी अपनी स्मरण शक्ति बढ़ा सकती है। सम्पूर्ण विधि के अन्तर्गत विद्यार्थी समस्त पाठ्यवस्तु को एक साथ याद कर लेता है जबकि खण्ड–विधि में समस्त पाठ्य–वस्तु को छोटे–छोटे अंगों में विभक्त करके एक–एक खण्ड याद किया जाता है। कुछ विद्यार्थी सम्पूर्ण विधि को अच्छा मानते हैं तो कुछ खण्ड विधि को, लेकिन अधिकांशत सम्पूर्ण विधि को ही बेहतर मानते हैं। इसी तथ्य की पुष्टि हेतु एवलिंग महोदय ने एक लम्बी कविता को दोनों विधियों से याद कराया और देखा की सम्पूर्ण विधि बेहतर है। खण्ड–विधि विशेषकर उस स्थिति में उपयोगी सिद्ध होती है जब याद करने वाला अनुभवहीन हो या आत्मविश्वासी न हो। साथ ही, सिखायी जाने वाली विषयवस्तु व्यापक, जटिल एवं दुरूह हो।
2. **उप–विषय बनाम सकेन्द्रीय विधि** (Topical Vs Concentric Method)–इस विधि के अन्तर्गत विभिन्न कक्षाओं के लिये बालकों के मानसिक स्तर और आयु के अनुसार उप–विषय निर्धारित किये जाते हैं और ये उप–विषय पूर्णतया उसी कला अथवा कक्षाओं में समाप्त कर दिये जाते हैं। जैसे–जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग इत्यादि प्राइमरी कक्षा में, समीकरण, ब्याज, समानुपात इत्यादि का जूनियर हाई स्कूलों की कलाओं में पूर्णतया पढ़ाया जाता है। और बाद की कक्षाओं में इन्हें फिर बिल्कुल नहीं पढ़ाया जाता है। लेकिन इन विषयों के प्रश्नों को हल करने का पर्याप्त अभ्यास उसी स्तर पर करा दिया जाता है। सकेन्द्रीय विधि के अन्तर्गत किसी भी उप–विषय को किसी कला विशेष में पढ़ाकर पूर्णतया समाप्त नहीं कर दिया जाता बल्कि बालकों की आयु और मानसिक स्तर के अनुकूल उस उप–विषय के केवल उतने ही कठिन प्रश्न हल कराये जाते हैं जिन्हें बालक आसानी से समझ सकें। उनकी आयु और मानसिक स्तर बढ़ जाने पर उस विषय–वस्तु को फिर पढ़ाया जाता है और अब पहले की अपेक्षा अधिक कठिन प्रश्न हल कराये जाते हैं। इस प्रकार बालक के मानसिक स्तर के साथ–साथ उप–विषय का कठिनाई स्तर भी बढ़ाया जाता है।
3. **संकलित बनाम वितरित विधि** (Nassed Vs Distributed Method)–संकलित विधि के अंतर्गत सम्पूर्ण विषय–वस्तु को एक ही सत्र में बिना अन्तराल या विश्राम देकर समाप्त करा दिया जाता है। प्रयोगों के आधार पर विद्वानों ने यह स्पष्ट किया है कि वितरित विधि से सीखी गई विषय–वस्तु चिरस्थायी एवं प्रभावशाली सिद्ध होती है। लेकिन यहां यह ध्यान रखना भी आवश्यक होता है कि वितरित विधि से पढ़ाते समय–समय अन्तराल की सीमा बहुत अधिक न हो जाये अथवा प्रक्रिया के दौरान बार–बार बहुत अधिक विश्राम भी न दिया जाये क्योंकि ऐसा होने पर विषय–वस्तु भली प्रकार समझने के स्थान पर उसमें

व्यवस्थान ही अधिकार उपस्थित होंगे और हम अपने मूल उद्देश्य से भटक जायेंगे। समय अन्तराल की सीमा विषय–वस्तु की प्रकृति को देखकर सुनिश्चित की जानी चाहिए।

टिप्पणी

4. **आयोजित बनाम प्रासंगिक विधि** (Organised Vs Incidental Method)– प्रोजेक्ट विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान प्रासंगिक होता है। प्रोजेक्ट प्रणाली हरबर्ट के विषय संगठन का परिणाम है। इसमें एक ही विषय को केन्द्र मानकर पढ़ाया जाता है। उसे पढ़ाते समय जो अन्य विषय पढ़ाते जाते हैं वे अकस्मात् ही पढ़ाये जाते हैं, यद्यपि पढ़ाने वाले ने इनको पढ़ाने की कोई विशेष योजना नहीं बनायी होती। इस विधि का सिद्धान्त यह है कि ज्ञान एक इकाई है, इसके भिन्न–भिन्न अंग नहीं है। ज्ञान इकाई के रूप में देना चाहिये। इस विधि द्वारा आशा की जाती है कि विद्यार्थी ज्ञान के सभी अंगों से परिचित हो सकेगा।

   इस विधि का खेल विधि से बहुत गहरा सम्बन्ध है। पोस्टमैन, दुकानदार, बैंक बाबू, रेलवे बाबू आदि गणित खेल–खेल में ही सीख लेते हैं। स्कूल में यदि प्रोजेक्ट चलाये जायें तो विद्यार्थी कितने ही विषयों का ज्ञान आसानी से प्राप्त कर सकता है। लेकिन कुछ लोगों के अनुसार गठित पढ़ाने के लिये विशेष योजना अनिवार्य है। गठित को गणित के रूप में ही पढ़ाया जाना चाहिये जो कि आयोजित विधि द्वारा सम्भव है।

5. **सक्रिय बनाम निष्क्रिय विधि** (Active Vs Passive Method)–विद्यार्थी पाठ्य–वस्तु को दो तरीकों से याद करता है, प्रथम–सक्रिय विधि तथा द्वितीय–निष्क्रिय विधि/सक्रिय विधि से हमारा तात्पर्य यह है कि इसके अन्तर्गत विद्यार्थी किसी पाठ्य–वस्तु को जोर–जोर से या धीमे–धीमे बोल–बोलकर कंठस्थ करने का प्रयास करता है जबकि निष्क्रिय विधि के अन्तर्गत विद्यार्थी पाठ्य–वस्तु को मन ही मन पढ़कर कंठस्थ करने का प्रयास करते हैं। गेरस, एबिंगहम एवं उनके साथियों की दृष्टि से सक्रिय विधि, निष्क्रिय विधि की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ है कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों ही विधियां अपने आप में महत्वपूर्ण हैं और विद्यार्थी अपनी अभिवृत्ति के अनुरूप नवीन ज्ञान को सीखने में इनमें से किसी एक चयन करता है।

(र) वातावरण से संबंधित कारक (Environmental Factors)

अधिगम को प्रभावित करने वाले वातावरण से संबंधित कुछ मुख्य कारक इस प्रकार हैं–

1. **वंशानुक्रम** (Heredity)–वंशानुक्रम का बालक के सीखने पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि वंशानुक्रम दोषरहित है तो उन बालकों अथवा व्यक्तियों में भी उत्तम गुणों का विकास होता है। वस्तुतः बालक की अस्सी प्रतिशत योग्यताएं एवं क्षमताएं उनके वंशानुक्रम की ही देन है। इसलिये रॉस कहते हैं कि बालक जो कुछ भी है और जिस रूप में विकसित होता है, वह वंशक्रम की ही देन है। व्यक्ति का जीवन सुखमय या दुःखमय होना भी उसके वंशक्रम से प्राप्त गुणों पर निर्भर करता है।

टिप्पणी

2. **सामाजिक वंशक्रम का ज्ञान** (Knowledge of Social Heredity)–वंशानुक्रम का महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक बढ़ जाता है कि बालक को अपने पूर्वजों से जहां एक और जैविक वंशक्रम की जानकारी प्राप्त होती है वहीं दूसरी ओर अपने पूर्वजों के सामाजिक वंशक्रम का ज्ञान होता है। इस प्रकार बालक को अपने पूर्वजों के आदर्शों पर चलने की प्रेरणा मिलती है। वह उनके जीवन से बहुत कुछ सीखना चाहता है तथा उनके चरित्र को अपना आदर्श मानकर तदनुसार कार्य करके महान बनने का प्रयास करता है।

3. **वातावरण का प्रभाव** (Effect of Environment)–वंशानुक्रम के बालक केवल अपने पूर्वजों के गुणों को ही प्राप्त करते हैं लेकिन उन गुणों का समुचित विकास वातावरण द्वारा ही होता है। यदि वातावरण उचित नहीं है तो उसके गुणों का विकास भी ठीक दिशा में नहीं हो पायेगा। वातावरण का उचित होना वंशानुक्रम के विकास के लिये एक अनिवार्य शर्त है। अतः व्यक्ति वंशानुक्रम की आधारभूत मान्यताओं को विकसित करने के लिये वातावरण को उपयोगी बनाने में विश्वास करता है। कहा भी गया है कि व्यक्तित्व वंशानुक्र तथा वातावरण का गुणनफल होता है।

4. **शिक्षा के अनौपचारिक साधन** (Informal Means of Education)–बालक शिक्षा दो प्रकार के साधनों द्वारा प्राप्त करता है, औपचारिक तथा अनौपचारिक। इन दोनों ही प्रकार के साधनों का बालकों के अधिगम पर गहन प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के औपचारिक साधनों के अंतर्गत नियमित रूप से शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाएं आती हैं, जैसे–विद्यालय। इन संस्थाओं के निर्धारित व निश्चित नियम होते हैं तथा प्रदान की जाने वाली शिक्षा की पद्धति भी पूर्वनिश्चित होती है। अनौपचारिक साधनों अन्तर्गत रेडियो, समाचार–पत्र, चलचित्र, पुस्तकालय, वाचनालय तथा अन्य कार्यक्रम आते हैं जिनका शिक्षा प्राप्ति में अपना अलग ही प्रभाव होता है।

5. **व्यक्तित्व का विकास** (Personality Development)–वंशानुक्रम तथा वातावरण के ज्ञान से व्यक्ति मानवीय मूल्यों के विकास में रुचि लेने लगता है। वंशानुक्रम के प्रति आस्था व्यक्ति के सांवेगिक तथा सामाजिक विकास में विशेष योग देती है तथा सामाजिक व्यक्ति समाज के लिये उपयोगी सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में यदि अभिभावकों में अपने वंशक्रम के प्रति आस्था एवं मोह है तो वे अपने शिशुओं के व्यक्तित्व को भी उसी के अनुरूप ढालने का प्रयास करेंगे। इस प्रकार वंशानुक्रम तथा वातावरण व्यक्तित्व के विकास के लिये मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं।

6. **परिवार का वातावरण** (Family Environment)–बालक की अधिगम प्रक्रिया पर उसके परिवार के वातावरण का काफी प्रभाव पड़ता है। यदि परिवार में लड़ाई–झगड़े होते रहते हैं तो ऐसे वातावरण का बालकों के मस्तिष्क पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वे उदास तथा खिन्न रहने लगते हैं, घर का माहौल उन्हें बोझिल लगता है, काटने को दौड़ता है तथा वे अपने अध्ययन के लिये घर से

टिप्पणी

दूर किसी नदी या बाग की शरण लेता है। घर का अच्छा वातावरण उन्हें निरन्तर आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहन देता रहता है।

7. **कला का भौतिक वातावरण** (Phsysical Environment of the Class)–कक्षा का भौतिक वातावरण क्षेत्रों के अधिगम को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। भौतिक वातावरण के अन्तर्गत प्रकाश, वायु, कोलाहल आदि आते हैं। इस प्रकार यदि कक्षा में छात्रों के बैठने की समुचित व्यवस्था नहीं है, कमरों में अंधेरा है, रोशनी तथा हवा का कोई प्रबन्ध नहीं है, फर्नीचर टूटा–फूटा है। तथा कक्षा के बाहर कोलाहल मचा रहता है तो ऐसी स्थिति में छात्रों का मन कोलाहल मचा रहता है तो ऐसी स्थिति में छात्रों का मन अधिगम से ऊचाट हो जाता है, वे थोड़ी देर में थकान का अनुभव करने लगते हैं तथा इन सब बातों से उसके सीखने में बाधा उत्पन्न होती है।

8. **मनोवैज्ञानिक वातावरण** (Psychological Environment)–कला का मनोवैज्ञानिक वातावरण भी छात्रों के सीखने की प्रक्रिया को काफी हद तक प्रभावित करता है। यदि छात्रों में एक–दूसरे के प्रति सहयोग ओर सहानुभूति की भावना है, उनमें आपस में मधुर सम्बन्ध है। तो सीखने का प्रक्रिया सुचारु रूप से आगे बढ़ने लगती है। इसके विपरीत यदि कला का वातावरण बोझिल, तनावमुक्त व अतिरिक्त आतंकित बना रहता है तो ऐसे माहौल में छात्र घुटन महसूस करता है।

9. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण** (Social and Cultural Environment)–छात्रों के अधिगम पर उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः सांस्कृतिक वाातवरण का आशय व्यक्ति द्वारा निर्मित या प्रभावित उन समस्त नियमों, विचारों, विश्वासों एवं भौतिक वस्तुओं की पूर्णता से है जो जीवन को चारों ओर से घेरे रहते हैं। सामाजिक, वातावरण के अन्तर्गत समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, मान्यताएं, आदर्श, मूल्य एवं स्वयं व्यक्ति की समाज में स्थिति आती है। जो उसके अधिगम को निश्चित तौर पर प्रभावित करती है। इसलिये व्यक्ति हर सामाजिक परिस्थिति में अनुकूलन बनाये रखता है।

10. **सम्पूर्ण परिस्थिति** (Situation as Whole)–बालक के प्रभावी अधिगम को दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे एक ऐसी समुचित सम्पूर्ण परिस्थिति प्रदान की जाये जिसमें सीखने के सभी तत्व तथा दशायें विद्यमान हों। इसीलिये विद्यालय का सम्पूर्ण व्यवहार परिवेश इस प्रकार से निर्मित किया जाता है, जो विद्यार्थी को पूर्ण सन्तुष्टि प्रदान करें तथा उसकी शैक्षिक उपलब्धि स्तर को ऊंचा उठाने के साथ–साथ उसके मनोबल को भी बनाये रखे। विद्यालय की सम्पूर्ण परिस्थिति कृत्रिम न लगकर स्वाभाविक होनी चाहिये तथा उसका बालक के सामान्य जीवन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये। सम्पूर्ण परिस्थिति का संतोषप्रद होना अधिगम की अनिवार्य शर्त है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. "अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार परिवर्तन को अधिगम कहते है।" उपर्युक्त परिभाषा किस मनोवैज्ञानिक की है?

   (क) मर्फी (ख) हिलगार्ड

   (ग) गेट्स (घ) गुथरी

2. ऑलपोर्ट ने अभिवृत्ति के विकास की कितनी अवस्थाएं बताई हैं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) सात

1.3 संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अंतर्गत बच्चे की चिंतन बुद्धि तथा भाषा में परिवर्तन आता है। संज्ञान से तात्पर्य मन की उन आंतरिक प्रक्रियाओं और उत्पादों से है जो जानने की ओर ले जाती हैं। इनमें सभी मानसिक गतिविधियां शामिल रहती है– ध्यान देना, याद करना, सांकेतीकरण, वर्गीकरण योजना बनाना, विवेचना, समस्या हल करना, सृजन करना और कल्पना करना। निश्चित ही हम इस सूची को आसानी से बढ़ा सकते हैं। क्योंकि मनुष्य द्वारा किये जाने वाले लगभग किसी भी कार्य में मानसिक प्रक्रियाएं शामिल हो जाती हैं। जीवन निर्वाह के लिए हमारी संज्ञानात्मक शक्तियां बहुत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण की बदलती दशाओं के अनुरूप अपने को ढालने में, दूसरी प्रजातियों को छदमावरण, पंखों, फरों और विलक्षण रतार का लाभ मिलता है। इसके विपरीत मनुष्य सोचने पर निर्भर करते हैं जिसके द्वारा वे न सिर्फ अपने पर्यावरण के अनुरूप खुद को ढाल लेते हैं बल्कि उसे रूपांतरित भी कर देते हैं। अपनी असाधारण मानसिक क्षमताओं के चलते हम पृथ्वी के समस्त प्राणियों के बीच श्रेष्ठ हो जाते हैं।

1.3.1 संज्ञानात्मक अधिगम में सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर

प्रत्येक शिशु जन्म के समय एक संगठित शारीरिक ढांचा मात्र होता है। वह न तो अपने बारे में जानता है और न आस–पास के माहौल के बारे में। घर में, समाज में, विद्यालय में उसे किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, यह सब उसे परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों–परिचितों के आचरण और उनके बताने से सीखने को मिलता है।

समाज और परिवार में रहकर बालक समाज की संस्कृति के बारे में सीखता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है। इसी प्रक्रिया के माध्यम से समाज में संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अंतरित होती रहती है। इस प्रकार समाज और संस्कृति अनवरत रूप से थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ जीवंत व्यवस्था की तरह चलते हैं। इस अधिगम प्रक्रिया के द्वारा बालक सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है, समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से उसे समाज

टिप्पणी

के मूल्यों एवं मानकों को स्वीकारने की प्रेरणा मिलती है। यह सीखने की प्रक्रिया समाजीकरण के नाम से जानी जाती है।

समाजीकरण सीखने की प्रक्रिया का नाम है, लेकिन कोई बालक अपनी संस्कृति क्यों सीखता है यह अब तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। जे.एच. फिक्ट्र ने बताया है कि सीखने की प्रक्रिया में तीन उपक्रियाएं शामिल होती हैं–

1. नकल (Imitation)
2. सुझाव (Suggestions)
3. प्रतियोगिता (Competition)

व्यक्तित्व कभी बनाया नहीं जाता। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति जन्म से ही अपने गुणों को प्राप्त नहीं कर ता है बल्कि समाज के सदस्य के रूप में वह धीरे–धीरे अर्जित करता है।

बालक के सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिगम में निम्नलिखित अभिकरणों की अहम भूमिका होती है– (1) परिवार, (2) मित्रों का समूह, (3) पड़ोस, (4) विद्यालय, (5) राज्य, (6) जनसंपर्क के साधन।

इस प्रकार सिखाने–सीखने की इस प्रक्रिया की विशेषताएं इस प्रकार हैं– (1) हर समय, हर अनुभव से सीखने की प्रक्रिया, (2) आजीवन प्रक्रिया, (3) संस्कृति को आत्मसात करने की प्रक्रिया, (4) गत्यात्मक प्रक्रिया।

जैविक आधार

जैविक आधार में निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित कर सकते हैं–

1. सहज प्रवृत्तियां
2. अंतःक्रियात्मक आवश्यकताएं
3. बाल्यावस्था की निर्भरताएं
4. सीखने की क्षमता
5. भाषा आदि।

सांस्कृतिक अधिगम

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने–पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, विचारने, कार्य करने, खाने–पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है। संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घकाल तक अपनायी गई पद्धतियों का परिणाम होता है।

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की धातु कृ (करना) से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं– प्रकृति (मूल स्थिति), संस्कृति (परिष्कृत स्थिति) और विकृति (अवनति स्थिति)। जब प्रकृत या कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृत हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो विकृत हो जाता है।

टिप्पणी

संस्कृति का शब्दार्थ है– उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है, वह एक सुधरा हुआ तथा व्यवस्थित जीवन जीना चाहता है। सांस्कृतिक धरोहर तथा मूल्य मनुष्य को ऐसा जीवन जीने के लिए निर्देशित करते हैं। बालक एक अच्छे सांस्कृतिक वातावरण में अनेक अच्छे गुण ग्रहण करता है तथा विनम्रता, सहनशीलता, समायोजन तथा सामंजस्य जैसे नैतिक मूल्यों को सीखता है। वह विद्यालय तथा बाहर के वातावरण में तालमेल बैठाने का हुनर भी इसी प्रकार के माहौल में सीखता है।

इस प्रकार एक बालक की शिक्षा अपनी विषय वस्तु, दिशा एवं प्रेरणा उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से ही ग्रहण करती है। उसका दृष्टिकोण, मूल्य मौलिक व्यवहार तथा जीवन के प्रति संपूर्ण दृष्टिकोण आदि पारिवारिक संस्कृति के रंग में ही रंगे होते हैं तथा उनकी जड़ें उस स्थान में होती है जहां उसका जन्म हुआ है। अतः सांस्कृतिक अधिगम एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति कुछ प्रभावों को स्वीकार करता है तथा कुछ को अस्वीकार कर देता है।

1.3.2 अधिगम में सीखने की कठिनाइयां और अधिगम अक्षमता

अधिगम अक्षमता एक ऐसी समस्या है जिसमें बालक साधारण होते हुए भी पढ़ने–लिखने और तर्क संबंधी रोगों में विभिन्न प्रकार की कठिनाई का अनुभव करते हैं। यहां पर अधिगम अक्षमता के अर्थ और परिभाषा को बताया जा रहा है।

अधिगम अक्षमता : अर्थ और परिभाषा

अधिगम अक्षमता पद दो पदों अधिगम और अक्षमता से मिलकर बना है। अधिगम शब्द का अभिप्राय सीखने से है तथा अक्षमता का तात्पर्य क्षमता के अभाव से है अर्थात सामान्य भाषा में अधिगम अक्षमता का तात्पर्य सीखने की क्षमता अथवा योग्यता की कमी या अनुपस्थिति से है। सीखने में कठिनाइयों को समझने के लिए हमें एक बच्चें की सीखने की क्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का आकलन करना चाहिए। प्रभावी अधिगम के लिए मजबूत अभिप्रेरणा, सकारात्मक आत्म छवि और उचित अध्ययन व रणनीतियां आवश्यक शर्तें हैं, औपचारिक शब्दों में अधिगम अक्षमता को विद्यालयी पाठ्यक्रम सीखने की क्षमता की कमी या अनुपस्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

अधिगम अक्षमता पद का सर्वप्रथम प्रयोग 1963 ई. में सैमुअल किर्क द्वारा किया गया था और इसे निम्न शब्दों में परिभाषित किया गया था–

अधिगम अक्षमता को वाक्, भाषा, पठन, लेखन अंकगणितीय प्रक्रियाओं में से किसी एक या अधिक प्रक्रियाओं में मंदता, विकृति अथवा अवरुद्ध विकास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। संभवतः यह मस्तिष्क कार्यविरूपता या संवेगात्मक अथवा व्यावहारिक विक्षोभ का परिणाम है न कि मानसिक मंदता, संवेदी अक्षमता अथवा सांस्कृतिक अनुदेशन कारक का। इसके पश्चात से अधिगम अक्षमता को परिभाषित करने के लिए विद्वानों द्वारा निरंतर प्रयास किए गए लेकिन कोई सर्वमान्य परिभाषा विकसित नहीं हो पाई।

टिप्पणी

अमेरिका में विकसित फेडरल परिभाषा के अनुसार, विशिष्ट अधिगम अक्षमता को लिखित एवं मौखिक भाषा के प्रयोग एवं समझने में शामिल एक या अधिक मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में विकृति, जो व्यक्ति के सोच, वाक्, पठन, लेखन एवं अंकगणितीय गणना को पूर्ण या आंशिक रूप में प्रभावित करता है, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसके अंतर्गत इंद्रियजनित विकलांगता, मस्तिष्क क्षति, अल्पतम असामान्य दिमागी प्रक्रिया, डिस्लेक्सिया एवं विकासात्मक वाच्चाघात आदि शामिल हैं। इसके अंतर्गत वैसे बालक नहीं सम्मिलित किए जाते हैं, जो दृष्टि, श्रवण या गामक विकलांगता, संवेगात्मक विक्षोभ, मानसिक मंदता, सांस्कृतिक या आर्थिक दोष के परिणामतः अधिगम संबंधी समस्या से पीड़ित हैं। (फेडरल रजिस्टर, 1977)

वर्ष 1994 में अमेरिका की अधिगम अक्षमता की राष्ट्रीय संयुक्त समिति (द नेशनल ज्वायंट कमिटी ऑन लर्निंग डिसेबिलिटिज्म) ने अधिगम अक्षमता को परिभाषित करते हुए कहा कि अधिगम अक्षमता एक सामान्य पद है, जो मानव में अनुमानतः केंद्रीय तांत्रिक तंत्र के सुचारू रूप से कार्य नहीं करने के कारण उत्पन्न आंतरिक विकृतियों के विषम समूह, जिसमें कि बोलने, सुनने, पढ़ने, लिखने, तर्क करने या गणितीय क्षमता के प्रयोग में कठिनाई शामिल होते हैं, को दर्शाता है। जीवन के किसी भी पड़ाव पर यह उत्पन्न हो सकता है। हालांकि अधिकतम अक्षमता अन्य प्रकार की अक्षमताओं जैसे कि संवेदी अक्षमता, मानसिक मंदता, गंभीर संवेगात्मक विक्षोभ या सांस्कृतिक भिन्नता, अनुपयुक्तता या अपर्याप्त अनुदेशन के प्रभाव के कारण होता है लेकिन ये दर्शाएं अधिगम अक्षमता को प्रत्यक्षतः प्रभावित नहीं करती है। (दी नेशनल ज्वायंट कमिटी ऑन लर्निंग डिसेबिलिटिज्म 1994)

उपर्युक्त परिभाषाओं की समीक्षा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिगम अक्षमता एक व्यापक संप्रत्यय है, जिसके अंतर्गत वाक्, भाषा, पठन, लेखन एवं अंकगणितीय प्रक्रियाओं में से एक या अधिक के प्रयोग में शामिल एक या अधिक मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में विकृति को शामिल किया जाता है, जो अनुमानतः केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के सुचारू रूप से कार्य न करने के कारण उत्पन्न होता है। यह स्वभाव से आंतरिक होता है।

ऐतिहासिक परिदृश्य

अधिगम अक्षमता के इतिहास पर दृष्टिपात करने से आप पाएंगे कि इस पद ने अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण करने के लिए एक लंबा सफर तय किया है। इस पद का सर्वप्रथम प्रयोग 1963 में सैमुअल किर्क ने किया था। यह पद आज सार्वभौम एवं सर्वमान्य है। जिसके पूर्व विद्वानों ने अपने–अपने कार्यक्षेत्र के आधार पर अनेक नामकरण किए थे, जैसे न्यूनतम मस्तिष्क क्षतिग्रस्तता (औषधि विज्ञानियों या चिकित्सा विज्ञानियों द्वारा), मनोस्नायुजनिक विकलांगता (मनोवैज्ञानिकों + स्नायुवैज्ञानिकों द्वारा), अतिक्रियाशीलता (मनोवैज्ञानिकों द्वारा), न्यूनतम उपलब्धता (शिक्षा मनोवैज्ञानिकों द्वारा) आदि।

रेड्डी, रमार एवं कुशमा (2003) ने अधिगम अक्षमता के क्षेत्र के विकास को निम्नलिखित तीन चरणों में विभाजित किया है–

- प्रारंभिक काल
- रूपांतरण काल

टिप्पणी

- स्थापन काल
- **प्रारंभिक काल**– यह काल अधिगम अक्षमता के उद्‌भव से संबंधित है। वर्ष 1802 से 1946 के मध्य का यह समय अधिगम अक्षमता के लिए कार्यकारी साबित हुआ। अधिगम अक्षमता प्रत्यय की पहचान एवं विकास इसी समय से आरंभ हुई तथा उनकी पहचान और उपयुक्त निराकरण हेतु प्रयास किए जाने लगे।
- **रूपांतरण काल**– यह काल अधिगम अक्षमता के क्षेत्र में एक नए रूपांतरण के काल के रूप में जाना जाता है। जब अधिगम अक्षमता एक विशेष अक्षमता के रूप में स्थापित हुई और जब अधिगम अक्षमता प्रत्यय का उद्‌भव हुआ, इन दोनों के मध्य का संक्रमण का काल ही रूपांतरण काल से संबंधित है।
- **स्थापन काल**– 60 के दशक के मध्य में अधिगम अक्षमता से संबंधित कठिनाइयों को सामूहिक रूप से पहचान मिली। इस काल में ही सैमुअल किर्क ने 1963 में अधिगम अक्षमता शब्द को प्रतिपादित किया। 60 के दशक के बाद इस क्षेत्र में अनेक विकासात्मक कार्य किए गए और विशिष्ट शिक्षा में अधिगम अक्षमता एक बड़े उपक्षेत्र के रूप में प्रतिस्थापित हुई।

  क्रुकशैक ने 1972 में 40 शब्दों का एक शब्दकोष विकसित किया। इसी क्रम में यदि आप कुर्त गोल्डस्टीन द्वारा 1927 ई. और 1939 ई. में किए गए कार्यों का मूल्यांकन करें तो आप पाएंगे कि उनके द्वारा वैसे मस्तिष्कीय क्षतिग्रस्त सैनिकों जो प्रथम विश्वयुद्ध में कार्यरत थे की अधिगम समस्याओं का जो उल्लेख किया गया है, वही अधिगम अक्षमता का आधार स्तंभ है। उनके अनुसार, स्ट्रॉस (1939) ने अपने अध्ययन में कुछ लक्षण बताए थे जिनमें मूलतः अधिगम अक्षम बालकों पर बल दिया जो बुद्धिलब्धि परीक्षण पर सामान्य से कम बुद्धिलब्धि रखते थे। उन्होंने कहा कि यदि किसी बालक की बुद्धिलब्धि न्यून है और साथ ही वह न्यूनतम शैक्षिक योग्यता प्राप्त करता है तो उसकी शैक्षिक योग्यता की न्यूनता का कारण बुद्धिलब्धि की न्यूनता ही है। इन अध्ययनों को सैमुअल किर्क ने अपने अध्ययन का आधार बनाया और कहा कि अधिगम अक्षमता सिर्फ शैक्षिक न्यूनता नहीं है, यह न्यूनतम मस्तिष्क क्षतिग्रस्तता, पढ़ने की दक्षता में समस्या और अतिक्रियाशीलता आदि जैसे गुणों का समूह है।

  उन्होंने ये भी कहा कि जो बालक इन सारे गुणों से संयुक्त रूप से पीड़ित है, वो अधिगम अक्षम बालक है। शैक्षिक न्यून बालकों के संबंध में अपने मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि अधिगम अक्षम बालक शैक्षिक न्यूनता से पीड़ित होगा और यह न्यूनता उसके आंतरिक एवं बाह्य दशाओं के परिणाम के कारण ही नहीं बल्कि उसमें उपलब्ध न्यूनतम शैक्षिक दशाओं के कारण भी संभव है। सैमुअल किर्क ने इस कार्य को और अधिक प्रसारित करने के लिए अधिगम अक्षमता अध्ययनकर्ताओं का एक संघ बनाया जिसे एसोसिएशन फॉर चिल्ड्रेन विद लर्निंग डिसेबिलिटी, कहा गया तथा अधिगम अक्षमता शोध पत्रिका का प्रारंभ किया। आज विश्व स्तर पर अधिगम अक्षमता संबंधी अध्ययन किए जा रहे हैं और अधिगम अक्षमता पर आधारित दो विश्वस्तरीय शोध पत्रिकाएं मौजूद हैं

टिप्पणी

जो किए जा रहे अध्ययनों का प्रचार–प्रसार करने में अपनी अहम भूमिका निभा रही है।

भारत में इस संबंध में कार्य शुरू हुए अभी कम ही समय हुआ है। आज यह पश्चिमी देशों में अधिगम अक्षमता संबंधी हो रहे कार्यों के तुलनीय है। भारत वर्ष में अधिगम अक्षम बालकों की पहचान विदेशियों द्वारा की गई लेकिन धीरे–धीरे भारतीयों में भी जागरूकरता बढ़ रही है। वर्तमान में भारत में सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाएं इस क्षेत्र में कार्यरत है। लेकिन आज भी अधिगम अक्षमता को भारत में कानूनी विकलांगता के रूप में पहचान नहीं मिली है। निःशक्त जन (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 में उल्लिखित सात प्रकार की की विकलांगता में यह शामिल नहीं है। ज्ञात हो कि यही अधिनियम भारतवर्ष में विकलांगता के क्षेत्र में सबसे वृहद कानून है अर्थात भारत में अधिगम अक्षम बालक को कानूनी रूप से विशिष्ट सेवा पाने का आधार प्राप्त नहीं है।

अधिगम अक्षमता की प्रकृति एवं विशेषताएं

अधिगम संबंधी कठिनाई, श्रवण दृष्टि स्वास्थ्य, वाक् एवं संवेग आदि से संबंधित अस्थाई समस्याओं से जुड़ी होती है। समस्या का समाधान होते ही अधिगम संबंधी वह कठिनाई समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत अधिगम अक्षमता उस स्थिति को कहते हैं जहां व्यक्ति की योग्यता और उपलब्धि में एक स्पष्ट अंतर हो। यह अंतर संभवतः स्नायुजनित होता है और यह व्यक्ति विशेष में आजीवन विद्यमान रहता है।

चूंकि अधिगम अक्षमता को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं है तथा सही जनगणना में अधिगम अक्षमता को आधार नहीं बनाया जाता है। इसलिए देश में मौजूद अधिगम अक्षम बालकों के संबंध में बहुत अधिक आंकड़े प्रदान करना तो मुश्किल है लेकिन एक अनुमान के अनुसार यह कहा जा सकता है कि देश में इस प्रकार के बालकों की संख्या अन्य प्रकार के विकलांग बालकों की संख्या से कहीं अधिक है। यह संख्या, देश में उपलब्ध कुल स्कूली जनसंख्या की 1–42 प्रतिशत तक हो सकती है। वर्ष 2012 में चेन्नई में समावेशी शिक्षा एवं व्यावसायिक विकल्प विषय पर संपन्न हुए एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'लर्न 2012' में विशेषज्ञों ने कहा कि भारत में लगभग 10 प्रतिशत बालक अधिगम अक्षम है। (टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 27, 2012)

अधिगम अक्षमता की विभिन्न मान्यताओं पर दृष्टिपात करने से अधिगम अक्षमता की प्रकृति के संबंध में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होती हैं–

1. अधिगम अक्षमता आंतरिक होती है।
2. यह स्थाई स्वरूप का होता है अर्थात यह व्यक्ति विशेष में आजीवन उपस्थि रहता है।
3. यह कोई एक विकृति नहीं बल्कि विकृतियों का एक विषम समूह है।
4. इस समस्या से ग्रसित व्यक्तियों में कई प्रकार के व्यवहार और विशेषताएं पाई जाती हैं।
5. चूंकि यह समस्या केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की कार्यविरूपता से संबंधित है, अतः यह एक जैविक समस्या है।

6. यह अन्य प्रकार की विकृतियों के साथ हो सकता है, जैसे– अधिगम अक्षमता और संवेगात्मक विक्षोभ तथा
7. यह श्रवण, सोच, वाक्, पठन, लेखन एवं अंकगणितीय गणना में शामिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में विकृति के फलस्वरूप उत्पन्न होता है, अतः यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या भी है।

टिप्पणी

अधिगम बालक के लक्षण

- सामान्य और सामान्य से थोड़ा ज्यादा सोचने एवं तर्क करने की योग्यता
- औसत विद्यालय उपलब्धि से निम्न का प्रदर्शन
- उपलब्धि और योग्यता के बीच में सार्थक अंतर का प्रदर्शन
- निष्पादन संबंधी कठिनाई से युक्त।

अधिगम अक्षमता के लक्षण को आप अधिगम अक्षम बालकों की विशेषताओं के संदर्भ में समझ सकते हैं। उपर्युक्त मुख्य लक्षणों के अतिरिक्त कुछ अन्य लक्षण भी प्रदर्शित किए जा सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

- अधिगम अक्षमता वाले बालक बिना सोचे–विचारे कार्य करते हैं
- ये उपयुक्त आचरण नहीं करते
- ये निर्णयात्मक क्षमता का अभाव करते
- ये स्वयं के प्रति लापरवाही होते हैं
- इनमें निर्णयात्मक क्षमता का अभाव होता है।
- ये लक्ष्य आसानी से विचलित हो जाते हैं
- ये सामान्य ध्वनियों एवे दृश्यों के प्रति आकर्षित होते हैं
- इनमें भावात्मक अस्थिरता होती है
- इनमें ध्यान कम केंद्रित करना या ध्यान का भटकाव होता है
- एक ही स्थिति में शांत एवं स्थिर रहने की असमर्थता होती है
- सामान्य से ज्यादा सक्रियता होती है
- स्वप्रगति के प्रति लापरवाही बरतते हैं
- इनकी कार्य करने की मंद गति होती है
- गामक क्रियाओं में बाधा होती है
- ये सामान्य कार्य को संपादित करने के लिए एक से अधिक बार प्रयास करते हैं
- इनमें पाठ्य सहगामी क्रियाओं में शामिल होना पाया जाता है
- इनमें क्षीण स्मरण शक्ति का होना पाया जाता है
- बिना बाह्य हस्तक्षेप के अन्य गतिविधियों में भाग लेने में असमर्थ होते हैं
- इनमें प्रत्यक्षीकरण संबंधी दोष होता है।

टिप्पणी

अधिगम अक्षमता का वर्गीकरण

अधिगम अक्षमता वृहद प्रकार के कई आधारों पर विभेदीकृत किया गया है। ये सभी विभेदीकरण अपने उद्देश्यों के अनुकूल हैं। इसका प्रमुख विभेदीकरण ब्रिटिश कोलंबिया 2011 एवं ब्रिटेन के शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक सपोर्टिंग स्टूडेंट्स विद लर्निंग डिसेबिलिटि ए गाइड फॉर टीचर्स में दिया गया है, जो इस प्रकार है–

1. डिस्लेक्सिया (पढ़ने संबेंधी विकार)
2. डिस्ग्राफिया (लेखन संबंधी विकार)
3. डिस्कैलकुलिया (गणितीय कौशल संबंधी विकार)
4. डिस्फैसिया (वाक् क्षमता संबंधी विकार)
5. डिस्प्रैक्सिया (लेखन एवं चित्रांकन संबंधी विकार)
6. डिसऑर्थोग्राफिया (वर्तनी संबंधी विकार)
7. ऑडीटरी प्रोसेसिंग डिसआर्डर (श्रवण संबंधी विकार)
8. विजुअल परसेप्शन डिसआर्डर (दृश्य प्रत्यक्षण क्षमता संबंधी विकार)
9. सेंसरी इंटीग्रेशन और प्रोसेसिंग डिसआर्डर (इंद्रिय समन्वयन क्षमता संबंधी विकार)
10. ऑर्गेनाइजेशनल लर्निंग डिसआर्डर (संगठनात्मक पठन संबंधी विकार)

डिस्लेक्सिया

डिस्लेक्सिया शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्द 'डस' और 'लेक्सिस' से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है– कठिन भाषा (डिफिकल्ट स्पीच)। वर्ष 1887 में एक जर्मन नेत्र रोग विशेषज्ञ रूडोल्फ बर्लिन द्वारा खोजे गए इस शब्द को शब्द अंधता भी कहा जाता है। डिस्लेक्सिया को भाषायी और सांकेतिक कोडों भाषा के ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करने वाले वर्णमाला के अक्षरों या संख्याओं का प्रतिनिधित्व कर रहे अंकों के संसाधन में होने वाली कठिनाई के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह भाषा के लिखित रूप, मौखिक रूप तथा भाषायी दक्षता को प्रभावित करता है। यह अधिगम अक्षमता का सबसे सामान्य प्रकार है।

डिस्लेक्सिया के लक्षण

इसके लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. वर्णमाला अधिगम में कठिनाई होती है
2. अक्षरों की ध्वनियों को सीखने में कठिनाई होती है
3. एकाग्रता में कठिनाई होती है
4. पढ़ते समय स्वर वर्णो का लोप होता है
5. वर्तनी दोष से पीड़ित होना पाया जाता है।
6. शब्दों को उल्टा या अक्षरों का क्रम इधर–उधर कर पढ़ा जाना, जैसे शाक नाम को मान या शावक को शाक पढ़ा जाना इत्यादि परेशानी होती है

टिप्पणी

7. समान उच्चारण वाली ध्वनियों को न पहचान पाना
8. भाषा का अर्थपूर्ण प्रयोग का अभाव होता है
9. शब्दकोष का अभाव होता है
10. क्षीण स्मरण शक्ति होती है

डिस्लेक्सिया की पहचान– उपर्युक्त लक्षण हालांकि डिस्लेक्सिया की पहचान करने में उपयोगी होते हैं लेकिन इन लक्षणों के आधार पर पूर्णतः विश्वास के साथ किसी भी व्यक्ति को डिस्लेक्सिया घोषित नहीं किया जा सकता है। डिस्लेक्सिया की पहचान करने के लिए सन् 1973 में अमेरिकन फिजिशयन एलेन बोडर ने बोडर टेस्ट ऑफ रीडिंग स्पेलिंग पैटर्न' नामक एक परीक्षण का विकास किया। भारत में इसके लिए 'डिस्लेक्सिया अर्ली स्क्रीनिंग टेस्ट' और 'डिस्लेक्सिया स्क्रीनिंग टेस्ट' का प्रयोग किया जाता है।

डिस्लेक्सिया का उपचार– डिस्लेक्सिया पूर्ण उपचार असंभव है लेकिन इसको उचित शिक्षण–अधिगम पद्धति के द्वारा निम्नतम स्तर पर लाया जा सकता है।

डिस्ग्राफिया

डिस्ग्राफिया अधिगम अक्षमता का वो प्रकार है जो लेखन क्षमता को प्रभावित करता है। यह वर्तनी संबंधी कठिनाई खराब हस्तलेखन एवं अपने विचारों को लिपिबद्ध करने में कठिनाई के रूप में जाना जाता है। (नेशनल सेंटर फॉर लर्निंग डिसेबिलिटिज्म, 2006)

डिस्ग्राफिया के लक्षण

इसके निम्नलिखित लक्षण हैं–

1. लिखते समय स्वयं से बातें करना
2. पठनीय होने पर भी कॉपी करने में अत्यधिक श्रम का प्रयोग करना
3. अशुद्ध वर्तनी एवं अनियमित रूप और आकार वाले अक्षर को लिखना
4. लेखन सामग्री पर कमजोर पकड़ या लेखन सामग्री को कागज के बहुत नजदीक पकड़ना
5. लाइनों का ऊपर–नीचे लिखा जाना एवं शब्दों के बीच अनियमित स्थान छोड़ना
6. अपठनीय हस्तलेखन

उपचार कार्यक्रम– चूंकि यह एक लेखन संबंधी विकार है, अतः इसके उपचार के लिए यह आवश्यक है कि इस विकार से ग्रसित व्यक्ति को लेखन का ज्यादा से ज्यादा अभ्यास कराया जाय।

डिस्कैलकुलिया

इस व्यापक पद का प्रयोग गणितीय कौशल अक्षमता के लिए किया जाता है। इसके अंतर्गत अंकों संख्याओं के अर्थ समझने की अयोग्यता से लेकर अंकगणितीय समस्याओं के समाधान में सूत्रों एवं सिद्धांतों के प्रयोग की अयोग्यता तथा सभी प्रकार के गणितीय कौशल की अक्षमता शामिल है।

टिप्पणी

डिस्कैलकुलिया के लक्षण

इसके लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. नाम एवं चेहरा पहचानने में कठिनाई होती है
2. अंकगणितीय संक्रियाओं के चिह्नों को समझने में कठिनाई होती है
3. अंकगणितीय संक्रियाओं के अशुद्ध परिणाम मिलना
4. गिनने के लिए ऊगलियों का प्रयोग
5. चेकबुक के प्रयोग में कठिनाई होती है
6. वित्तीय योजना या बजट बनाने में कठिनाई होती है
7. नकद अंतरण या भुगतान से डर लगता है
8. दिशा ज्ञान का अभाव या अल्प समझ होती है
9. समय की अनुपयुक्त समझ के कारण समय–सारणी बनाने में कठिनाई का अनुभव करना।

डिस्कैलकुलिया के कारण– इसका कारण मस्तिष्क में उपस्थित कार्टेक्स की कार्यविरूपता को माना जाता है। कभी–कभी तार्किक चिंतन क्षमता के अभाव के कारण अथवा कार्यकारी स्मृति के अभाव के कारण भी डिस्कैलकुलिया उत्पन्न होता है।

डिस्कैलकुलिया का उपचार– उचित शिक्षण–अधिगम रणनीति अपनाकर डिस्कैलकुलिया को कम किया जा सकता है। कुछ प्रमुख रणनीतियां इस प्रकार हैं–

1. जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से संबंधित उदाहरण प्रस्तुत करना
2. गणितीय तथ्यों को याद करने के लिए अतिरिक्त समय प्रदान करना
3. गणित को सरल करना और यह बताना कि यह एक कौशल है जिसे अर्जित किया जा सकता है।
4. फ्लैश कार्ड्स और कम्प्यूटर गेम्स का प्रयोग करना

डिस्फैसिया

डिस्फैसिया ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'डिस' और 'फासिया' जिनके शाब्दिक अर्थ क्रमशः अक्षमता एवं वाक् होते हैं से मिलकर बना है। डिस्फैसिया का शाब्दिक अर्थ वाक् अक्षमता से है। यह एक भाषा एवं वाक् संबंधी विकार है जिससे ग्रसित बच्चे विचार की अभिव्यक्ति अथवा व्याख्यान के समय कठिनाई महसूस करते हैं। इस अक्षमता के लिए मुख्य रूप से मस्तिष्क क्षति (ब्रेन डैमेज) को उत्तरदायी माना जाता है।

डिस्प्रैक्सिया

यह विकार मुख्य रूप से चित्रांकन संबंधी अक्षमता की ओर संकेत करता है। इस विकार से ग्रसित बच्चे लिखने और चित्र बनाने में कठिनाई महसूस करते हैं।

अधिगम अक्षमता और मानसिक मंदता

अधिगम अक्षमता और मानसिक मंदता पद एक सामान्य आदमी की भाषा में एक दूसरे के पर्याय हैं और भ्रमवश वे दोनों पदों का एक ही अर्थ में प्रयोग करते है। किंतु अधिगम

अक्षमता और मानसिक मंदता में स्पष्ट अंतर है जिन्हें आप उनकी परिभाषाओं के माध्यम से समझ पाएंगे–

टिप्पणी

अधिगम अक्षमता को लिखित या मौखिक भाषा के प्रयोग में शामिल किसी एक या एक से अधिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में कार्यविरूपता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जबकि मानसिक मंदता को मानसिक विकास की ऐसी अवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें बच्चों का बौद्धिक विकास औसत बुद्धि वाले बच्चों से कम होता है। इस अंतर को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से आप और स्पष्ट कर सकते हैं–

अधिगम अक्षमता	मानसिक मंदता
1. औसत या औसत से ज्यादा बुद्धिलब्धि प्राप्तांक	बुद्धिलब्धि प्राप्तांक 70 या उससे कम
2. मस्तिष्क की सामान्य कार्य–प्रणाली बाधित नहीं होती है या औसत होती है।	मस्तिष्क की सामान्य कार्य प्रणाली औसत से कम
3. योग्यता और उपलब्धि में स्पष्ट अंतर	दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूर्णतः अक्षम या कठिनाई का सामना
4. अधिगम अक्षम व्यक्ति मानसिक मंदता से ग्रसित हो यह आवश्यक नहीं है।	मानसिक मंद व्यक्ति आवश्यक रूप से अधिगम अक्षमता से ग्रसित होते हैं
5. यह किसी में भी हो सकता है।	यह महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में ज्यादा पाई जाती है।

अधिगम अक्षमता और स्लो लर्नर्स व पिछड़े बालक

अधिगम अक्षमता पद सामान्यतः स्लो लर्नर्स बालकों के लिए भी प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में एक बहुत बड़ी जनसंख्या इन दोनों पदों का प्रयोग एक ही अर्थ में करती है किंतु यह इन दोनों ही पदों का अनुपयुक्त प्रयोग है। दोनों ही पद एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। दोनों पदों के बीच के अंतर को इनकी परिभाषाओं के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

एक स्लो लर्नर्स औसत से कम बुद्धि का बालक होता है जिसके सोचने की क्षमता, उस आयु समूह के बालकों के लिए निश्चित किए गए मानदंड से कम होती है। ऐसे बालक विकास की सभी अवस्थाओं से गुजरते हैं जो उसके लिए हैं लेकिन उस आयु समूह के सामान्य बालकों की तुलना में सार्थक रूप से धीमी गति से, जबकि एक अधिगम अक्षम बालक औसत या ज्यादा बुद्धिवाला होता है जिसे कुछ विशेष समस्याएं होती हैं जो अधिगम को बहुत कठिन बना देती है। इस प्रकार अधिगम अक्षमता स्लो लर्निंग से भिन्न संप्रत्यय है।

'पिछड़े बालकों' पद एक सापेक्ष पद है जिसकी व्याख्या शिक्षा, आर्थिक स्थिति, मानसिक स्थिति, सामाजिक स्थिति आदि के संदर्भ में की जाती है। यहां यह शिक्षा के संदर्भ में इसकी व्याख्या की जा रही है। शिक्षा के संदर्भ में यह बालकों के एक विशिष्ट वर्ग को इंगित करता है जो किसी भी कारणवश अपनी उम्र के अन्य बालकों से कम निष्पादन करते हैं। मानसिक मंदता से ग्रसित हो सकते हैं या अधिगम अक्षमता से या

फिर कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण पिछड़े हो सकते है। ये सब पिछड़े हुए बालक कहलाएंगे।

टिप्पणी

अधिगम अक्षमता के संदर्भ में इसका अध्ययन करने पर आप पाएंगे कि अधिगम अक्षमता पद इसकी तुलना में एक संकीर्ण पद है। पिछड़े बालक पद एक अति व्यापक पद है। ये दोनों पद एक–दूसरे के पर्याय नहीं है बल्कि ये एक–दूसरे के सार्थक रूप से भिन्न है।

1.3.3 विशिष्ट और समावेशी शिक्षा की अवधारणा

दिव्यांग बालकों की शिक्षा के लिए कई प्रकार के प्रयास किये गये हैं। सामान्य बालकों के लिए नियमित विद्यालय और छात्रावास में अध्ययन की सुविधा प्रारंभ से ही रही है। लेकिन इन दिव्यांग बालकों के लिए जो शारीरिक तौर पर अक्षम होते हैं शिक्षा की और भी आवश्यकता है। ऐसे बालकों की शारीरिक और मानसिक कमियों को समुचित शिक्षा के माध्यम से उन्नत किया जा सकता है और वे अपना सामान्य जीवन जी सकते हैं। प्रारंभ में दिव्यांग बालकों को विशेष आवश्यकता वाले बालक मानकर उनके शिक्षा के लिए सामान्य विद्यालयों से अलग विशेष विद्यालयों की स्थापना की गयी थी।

इन विद्यालयों में केवल दिव्यांग बालक ही शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए आते थे। सामान्य विद्यालयों में ऐसे दिव्यांग बालकों को प्रवेश नहीं दिया जाता था। कालांतर में शिक्षा के क्षेत्र में नीति परिवर्तन हुआ और नियमित सामान्य विद्यालय में इन दिव्यांग बालकों को भी प्रवेश दिया जाने लगा। हालांकि इस दौर में इन बालकों के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी जिससे इनका अधिक विकास नहीं हुआ। आगे चलकर लोगों के साथ ही नीति–निर्माताओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और नियमित सामान्य विद्यालय में इन बालकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समावेशी शिक्षा और समावेशी विद्यालय की अवधारणा का प्रचलन हुआ। समावेशी विद्यालय में दिव्यांग बालकों को प्रवेश ही नहीं दिया गया है, बल्कि उनकी विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विशेष सुविधाएं और शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। विशेष शिक्षा, समेकित शिक्षा और समावेशी शिक्षा को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

विशिष्ट अथवा विशेष शिक्षा

विशेष शिक्षा एक जटिल व्यवस्था है जो दिव्यांग बालकों के विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निर्मित है। प्रारंभ में सभी देशों और समाजों में यह माना जाता था कि दिव्यांग बालक अपनी अक्षमता के कारण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते हैं, इसलिए सामान्य विद्यालयों में उनके प्रवेश को लगभग मना ही कर दिया जाता था। सामान्य विद्यालय में अध्ययन कर रहे बालकों तथा उनके अभिभावकों को भी लगता था कि दिव्यांग बालक सामान्य बालकों की कक्षा में पढ़ेंगे तो उनके शिक्षण का स्तर गिर जाएगा। आगे चलकर जब इन दिव्यांग बालकों के लिए विशेष विद्यालयों की स्थापना हुई और इन बालकों ने अपने कौशल विकास के साथ ही पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा किया तो इनके प्रति लागों का दृष्टिकोण बदला और विशेष शिक्षा के महत्व को समझा गया। 'विशेष शिक्षा आवश्यकता वाले बालक' की अवधारणा ब्रिटेन की देन है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका में विशेष शिक्षा आवयकताओं पर अत्यधिक अनुसंधान प्रारंभ हो गया। हालांकि उस समय बालक की दिव्यांगता जैसे– दृष्टिहीनता,

बधिरता, अस्थि विकलांगता, आदि के अनुसार अलग–अलग विशेष विद्यालयों में शिक्षा प्रदान की जाती थी।

टिप्पणी

विशेष शिक्षा का लक्ष्य

विशेष शिक्षा विशेष आवष्यता वाले बालकों की शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने लिए बनायी गयी है, इसके प्रमुख विशिष्ट उद्देष्यों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत रख सकते हैं–

- दिव्यांग बालकों में कौशल का विकास करके उन्हें सक्षम बनाना
- इन बालकों को सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रमों में सफल बनाना
- दिव्यांग बालकों की कमियों अथवा अक्षमताओं का यथासंभव उपचार करना
- लोगों में दिव्यांगता के प्रति जागृति लाना
- शारीरिक तथा मानसिक अक्षमताओं को कम करने अथवा समाप्त करने के लिए उन्नत और परिश्कृत तकनीकों का प्रयोग करना
- दिव्यांग बालकों का निष्पक्ष परीक्षण तथा मूल्यांकन करना
- विद्यालय जाने और अभिगम विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का समापन करना
- विद्यालय में बाहरी वातावरण के प्रभावों को रोक देना
- प्रतिभासंपन्न और विशेष योग्यता वाले बालकों के लिए अलग से व्यवस्था करना
- विशेष आवश्यकता वाले बालकों का विद्यालय छोड़ देने की दर में कमी लाना
- दिव्यांग बालकों की शिक्षा के साथ रोजगार के लिए नये अवसर तैयार करना
- अभिगम अक्षमता से ग्रस्त बालकों के लिए अलग से व्यवस्था करना
- दिव्यांग बालकों को सफल बनाकर अन्य सामान्य बालकों के साथ ही संपूर्ण समाज के दिव्यांगों के प्रति मनोवृति में परिवर्तन लाना।

विशेष शिक्षा की विशेषताएं

विशेष शिक्षा की विशेषताओं का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है –

(1) विद्यालय का वातावरण (Environment of School)– विशेष विद्यालय का निर्माण दिव्यांग बालकों की विशेष शिक्षा आवष्यताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है, इसलिए इसमें केवल शिक्षण और कौशल के विकास पर जोर दिया जाता है और बाहरी वातावरण जैसे– सामान्य बालकों का इनके प्रति हीन दृष्टिकोण अथवा अभिभावकों और नियमित कक्षा शिक्षकों का व्यवहार, आदि उन्हें प्रभावित नहीं करते और बालक अपना पूरा ध्यान पढ़ाई और कौशल विकास पर लगाता है।

(2) **संसाधन का उपयोग** (Use of Resources)– विशेष विद्यालय की संरचना ही इन बालकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की गयी है, इसलिए विद्यालय के भवन से लेकर प्रत्येक सामग्री इनकी सुविधा की दृष्टि से रखी जाती

है। विशेष विद्यालयों का शत–प्रतिशत हिस्सा इन दिव्यांग बालकों की शिक्षा पर खर्च कर दिया जाता है, इसलिए विशेष विद्यालय में इनका बेहतर प्रदर्शन होता है।

टिप्पणी

(3) **शिक्षक की विशेषज्ञता** (Expertness of Teachers) – विशेष शिक्षा के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की अक्षमताओं के लिए अलग–अलग विशेष विशेषज्ञ शिक्षक नियुक्त किये जाते हैं, जो बालकों की विभिन्न समस्याओं को व्यक्तिगत आधार पर समझकर समाधान करते हैं, जिससे बालक तीव्रता से सीखता है, हालांकि भारत जैसे देश में जहां अनेक विद्यालय में एक–दो नियमित शिक्षक हैं, वहां विशेष संसाधन शिक्षक की बात करना बेतुका प्रतीत होता है।

(4) **शिक्षण सहयोगी उपकरण** (Teachers Supportive Divices) – विशेष शिक्षा में दिव्यांग बालकों की अक्षताओं के अनुसार शिक्षण सहायक उपकरणों की उपलब्धता अधिक रहती है।

(5) **पाठ्यक्रम की रचना** (Composition of Curriculum) – विशेष शिक्षा में पाठ्यक्रम की रचना बालक की दिव्यांगता को ध्यान में रखकर की जाती है।

(6) **मूल्यांकन प्रणाली** (Evaluation System) – विशेष शिक्षा के अंतर्गत दिव्यांग बालक का मूल्यांकन उनकी अक्षमता को ध्यान में रखते हुए की जाती है।

(7) **विद्यालय की अवसंरचना** (Infrastructure of School) – विशेष शिक्षा वाले विद्यालयों के भवनों से लेकर कक्षा की संरचना इस प्रकार की जाती है कि दिव्यांग बालक बिना किसी बाधा के आ–जा सकें और उन्हें पढ़ने में सुविधा हो। इसके लिए कक्षा में टेबल–कुर्सी से लेकर डिस्प्ले तक ऐसा बनाया जाता है सभी बालक उसपर आराम से बैठ सकें और देख–सुन सकें।

(8) **बालक की अभिवृत्ति** (Apptitude of Child) – विशेष विद्यालय में दिव्यांग बालक अपने जैसे अन्य अक्षम छात्रों को देखता है तो उसे अपनी कमी के प्रति हीनभावना नहीं आती है और बालक आत्मविश्वास से पढ़ता है।

समेकित शिक्षा

समेकीकरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसमें दिव्यांग बालकों को नियमित विद्यालयों और कक्षाओं में शामिल करवाकर मुख्यधारा में लाया जाता है। इसमें विशेष आवश्यकता वाले बालकों को नियमित कक्षा में सामान्य बालक के साथ जोड़े में पढ़ना होता है और विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संसाधन कक्ष में शिक्षक सहयोगी सहायता देते हैं। इसमें दिव्यांग बालक अधिकांश समय नियमित कक्षा शिक्षक के साथ व्यतीत करते हैं तथा कुछ निश्चित अंतराल के बाद थोड़ा समय संसाधन शिक्षक के साथ व्यतीत करते हैं। संसाधन शिक्षक बालक की अक्षमता के बारे में कक्षा शिक्षक को संक्षेप में बता देता है। समेकित अवधारणा का प्रचलन सर्वप्रथम 1930 में अमेरिका में हुआ। भारत में यह उपागम 1960 में आया, लेकिन व्यवहार में इस अवधारणा की सफलता 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के साथ हुई। एनसीईआरटी तथा डीएसईआरटी ने इसको पर्याप्त महत्व दिया और इसके लिए शिक्षकों को भी प्रशिक्षित किया जाने लगा।

समेकीकरण का अर्थ है कि नियमित विद्यालयों में विशेष सेवाएं उपलब्ध कराई जाएगी। यह नियमित शिक्षकों और प्रषासकों को सहयोग करती है। इसके अंतर्गत

टिप्पणी

दिव्यांग बालक भी सामान्य बालकों के समान दिनचर्या का निर्वहन करते हैं। इसमें दिव्यांग तथा सामान्य बालकों के मध्य संबंधों के निर्माण के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। सामान्य बालकों की तरह ही इसमें दिव्यांग बालकों को समान पुस्तकालय, खेल के मैदान और अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती है। इसमें सभी बालकों को मानव की विभिन्नताओं के बारे में परिचित कराया जाता है। इसमें उचित मात्रा में व्यक्तिगत कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है। दिव्यांग बालकों को सामान्य सामाजिक वातावरण में शिक्षण प्रदान किया जाता है। हालांकि समेकिकरण में हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसमें अचानक से दिव्यांग बालक को सामान्य शिक्षा प्रणाली में नहीं लाना चाहिए, बल्कि संसाधन कक्ष में सतत अभ्यास के बाद बालक की उपलब्धि को देखते हुए उन्हें मुख्यधारा में शामिल करना चाहिए, अन्यथा बालक अकेला पड़ जाएगा। मुख्यधारा में दिव्यांग बालक को लाना अपने–आप में श्रमसाध्य काम है।

समेकित शिक्षा की सफलता में निम्नलिखित कारकों का महत्वपूर्ण स्थान होता है –

(1) स्थानीय सलाहकारों, विशेषज्ञों, स्वयंसेवकों के विशेष कौशल अथवा वैसे लोग जो विशेष तरीके से सहयोग करने के लिए प्रशिक्षित होना चाहते हैं, उनके कार्यों और कुशलता का पूर्ण उपयोग,

(2) शिक्षा से संबंधित सभी पाठ्य सामग्री और सहयोगी उपकरणों का समुचित प्रावधान,

(3) विशेष आवश्यकता वाले बालकों को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक विशेष सामग्री तैयार करने के लिए संसाधन शिक्षक के तौर पर विशेष शिक्षकों की सेवा, तथा

(4) नियमित कक्षा शिक्षक, विद्यालय प्रषासन, स्थानीय स्वास्थ्य प्राधिकरणों, बालकों के परिवारों, सामान्य लोगों के साथ दिव्यांग बालकों के लिए विशेष शिक्षण तकनीक और सामग्री के संबंध में परामर्ष का प्रावधान।

समेकित शिक्षा प्रदान करने के कई प्रारूप के होते हैं, जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है –

(क) संसाधन उपागम (Resource Model) – इसमें आठ दिव्यांग बालकों का समूह बनाया जाता है और सामान्य कक्षा के बाद और उससे पूर्व सामान्य शिक्षक द्वारा मार्गदर्शन किया जाता है। इस प्रकार की संसाधन कक्षाएं बालक की अक्षमता और आवश्यकता के अनुसार संचालित की जाती है।

(ख) भ्रमणशील उपागम (Itinerate Model) – इसमें विभिन्न कक्षाओं के बालकों को एक विशेष भ्रमणशील विशेषज्ञ शिक्षक की कक्षा में शिक्षा प्रदान किया जाता है। इस विशेष शिक्षा कक्षा में कक्षा शिक्षक भी उपस्थित रहते हैं। भ्रमणशील शिक्षक एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय जाते रहते हैं। अधिकांशतः एक विद्यालय में भ्रमणशील शिक्षक 150 मिनट रहते हैं।

(ग) समूह उपागम (Cluster Model) – इस उपागम में सभी प्रकार की दिव्यांगताओं से ग्रसित बालकों की शिक्षा के लिए नियमित शिक्षक को सेवा की अवधि में 42 दिनों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

टिप्पणी

(घ) द्वैध शिक्षण प्रारूप (Dual Teaching Model) – इस प्रारूप में नियमित कक्षा शिक्षक अपने नियमित कक्षा के अतिरिक्त दिव्यांग बालकों के शिक्षण में सहयोग का दायित्व लेता है। ऐसे शिक्षकों को अल्पकालीन अवधि के लिए प्रशिक्षण भी दिया जाता है और दिव्यांग बालकों के शिक्षा में सहयोग के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक भी दिया जाता है।

(च) सहयोगी प्रारूप (Cooperative Model) – इसमें दिव्यांग बालक का नामांकन विद्यालय के विशेष शिक्षक के पास विशेष कक्षाओं के लिए किया जाता है। बालक दिन के कुछ निश्चित समय के लिए सामान्य कक्षाओं में जाता है, शेष समय वह अपने विशेष कक्षा में ही व्यतीत करता है। विशेष शिक्षक नियमित शिक्षक के सहयोग से सभी बालकों के शिक्षण के लिए योजनाएं बनाता है। यह प्रारूप देर से पढ़ने वाले और बहु–अक्षमताओं वाले बालकों के लिए अधिक उपयुक्त है।

(छ) संयुक्त प्रारूप (Combined Model) – इस प्रारूप में विशेष शिक्षक आधा दिन प्राथमिक विद्यालय में बालकों को पढ़ाते हैं तथा शेष आधे समय में विशेष शिक्षक दो या तीन विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर बालकों को पढ़ाते हैं। इस प्रारूप को 'संसाधन सह भ्रमणशील प्रारूप' के नाम से भी जाना जाता है।

समेकित शिक्षा की विशेषताएं

समेकित शिक्षा की विशेषताओं को हम निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं –

- दिव्यांग बालकों के मन से दिव्यांगता अथवा अक्षमता की भावना को समाप्त किया जा सकता है।
- इसमें बालक को विशेष विद्यालयों में पढ़ने नहीं जाना पड़ता है जिससे उनको अपने माता–पिता के साथ रहने का अवसर मिलता है।
- प्रदर्शन के माध्यम से दिव्यांग बालक अपनी प्रतिभा को दिखा सकते हैं।
- दिव्यांग बालकों को सामान्य बालकों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने का अवसर मिल जाता है।
- दिव्यांग बालकों को समाज के अन्य लोगों से घुलने–मिलने का अवसर मिल जाता है जिससे समाज में समायोजन करने में ऐसे बालकों को आसानी होती है।

समेकित शिक्षा के अवगुण

भले ही समेकित शिक्षा की शुरुआत दिव्यांग बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए हुआ था, लेकिन इसमें कुछ दोष भी थे, इसके अवगुणों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत समझ सकते हैं –

- दिव्यांग बालकों का सही समय पर सहयोगी सेवाएं उपलब्ध नहीं हो पाती है।
- इसमें वर्गीकरण में समस्याएं आती है।
- सामान्य कक्षा में विभिन्न प्रकार के दिव्यांग बालकों को शिक्षा प्रदान करने में अनेक प्रकार की समस्याएं आती है।

टिप्पणी

- शिक्षक अधिकांशतः दिव्यांग बालकों के साथ उपेक्षित व्यवहार करते हैं।
- शिक्षक दिव्यांग बालकों के प्रति दया भावना रखते हुए उन्हें प्रोत्साहित करने का प्रयास करते हैं, जिससे दिव्यांग बालकों में नकारात्मकता की भावना घर कर जाती है।
- नियमित कक्षा शिक्षक सामान्य विधि से केवल सामान्य बालकों को ही पढ़ा सकते हैं, जिसका लाभ विशेष आवश्यकता वाले बालकों को नहीं मिल पाता है।

समावेशी शिक्षा

समावेशी शिक्षा से हमारा अभिप्राय वैसी शिक्षा व्यवस्था से है जिसमें सभी छात्रों को बिना किसी भेदभाव के सीखने तथा सीखाने के समान अवसर मिलते हैं। समावेशी शिक्षा की अवधारणा वास्तव में इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बालकों के विद्यालय शिक्षा में समावेशन तथा उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ इस हद तक आवश्यक है कि उन्हें क्षेत्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेष तथा विस्तृत सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं दोनों में ही संदर्भित करके समझा जा सके। जब भारतीय संविधान के समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है तो इसका अर्थ समावेशी शिक्षा संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति भी माना जा सकता है। दूसरी तरफ संविधान में ही जाति, धर्म, वर्ग, लिंग, निवास, आदि किसी भी प्रकार के विभेद का जब निषेध किया गया है, तो यह समावेशी समाज के स्थापना का ही लक्ष्य प्रस्तुत करता है।

शिक्षा का समावेशीकरण यह स्पष्ट करता है कि विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र तथा एक विशेष दिव्यांग छात्र को समान शिक्षा पाने का अवसर मिलना चाहिए। इसके अंतर्गत एक सामान्य छात्र एक दिव्यांग छात्र के साथ विद्यालय परिसर में अधिकांश समय व्यतीत करता है। हालांकि पूर्व में समावेशी शिक्षा की परिकल्पना केवल विशेष छात्र के संदर्भ में की गयी थी, लेकिन आधुनिक समय की आवश्यकता है कि प्रत्येक शिक्षक को अपनी कक्षा में इस सिद्धांत को लागू करना चाहिए, क्योंकि अब दिव्यांग बालकों को सामान्य बालकों से अलग करना मान्य नहीं है। दिव्यांग बालकों को भी सामान्य बालकों की तरह शैक्षिक गतिविधियों में संलग्न होने का पूरा अधिकार है।

समावेशी शिक्षा का अर्थ

समावेशी शिक्षा को निम्नलिखित अर्थों में समझा जा सकता है –

- समावेशी शिक्षा में शिक्षक और अभिभावक मिलकर बालक को सीखाने का प्रयास करते हैं।
- समावेशी शिक्षा का अर्थ है कि विद्यालय के स्तर को उन्नत किया जाए ताकि सभी प्रकार के छात्र उसमें सीख सकें और उनके असफल होने का प्रतिशत कम हो जाए।
- इस शिक्षा में दिव्यांग बालक सामान्य बालकों के साथ अपने पास के विद्यालय में सीखने के लिए जा सकते हैं।

टिप्पणी

- समावेशी शिक्षा का अर्थ है कि विद्यालय और शिक्षक व्यक्तिगत तौर पर प्रत्येक छात्र को स्वीकार करते हैं और उनके विशेष आवश्यकताओं के संदर्भ में नम्यता का परिचय देकर बालक को सीखाने का प्रयास करते हैं।
- इसमें शिक्षक समझते हैं कि छात्र की समस्याओं को किस प्रकार हल करके उन्हें सीखाया जा सकता है।
- समावेशी शिक्षा इस अवधारणा को स्वीकार करता है कि शिक्षा का अधिकार सभी बालकों के लिए समान है और इस हर प्रकार से लागू किया जाना चाहिए।

समावेशी शिक्षा का लक्ष्य

समावेशी शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य सभी प्रकार के बालकों के लिए शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करना है, जिसे हम चार संदर्भों में समझ सकते हैं –

(क) सामान्य शिक्षा के संदर्भ में – सामान्य शिक्षा के संदर्भ में समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को इस प्रकार समझा जा सकता है –

- इस विचार पर बल देना कि प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट और सुन्दर गुणों और विशेषताओं से युक्त है,
- विद्यालय की कक्षाओं में लघु पैमाने पर सामाजिक विविधता के अनुभव के लिए अवसर प्रदान करना,
- विविधता की क्षमता का निर्माण तथा सशक्तिकरण के अनुभव का विकास करना,
- विभिन्न गुणों वाले व्यक्तियों के प्रति आदर की भावना का विकास करना,
- दूसरे की कमियों के संदर्भ में सवेदनशीलता की भावना का विकास करना, तथा
- कक्षा के सभी साथियों की सहायता और शिक्षण की योग्यता में वृद्धि करना।

(ख) विशेष बालकों के संदर्भ में – विशेष बालकों अथवा दिव्यांग बालकों के संदर्भ में समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को इस प्रकार समझा जा सकता है –

- दिव्यांग बालकों में आत्मसम्मान की भावना में वृद्धि करना,
- इस विविधतायुक्त मानवीय समुदाय से बालक का परिचय कराना,
- ऐसे बालकों में मित्रता की भावना का विकास करना,
- समान आयु के बालकों के साथ ऐसे दिव्यांग बालकों को जोड़े में अध्ययन का अवसर देना,
- ऐसे वातावरण का निर्माण करना जिसमें दिव्यांग बालक अपना समुचित विकास और अभिगम को पूरा कर सकें, तथा
- अपने पड़ोस के बालकों के साथ मित्रता के लिए दिव्यांग बालकों को योग्य बनाना।

(ग) समाज के संदर्भ में – समाज के संदर्भ में समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को इस प्रकार समझा जा सकता है –

- समानता के सामाजिक मूल्यों का समर्थन करना,

टिप्पणी

- सामाजिक षांति को अधिकतम प्रभावी बनाना,
- सभी व्यक्तियों के लिए नागरिक अधिकारों को प्रोत्साहित करना,
- लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रारूप में छात्रों को ढ़ालना,
- पारस्परिक निर्भरता और सहयोग की भावना का विकास करना, तथा
- समाजीकरण और सहयोगात्मक कौशल का विकास करना।

(घ) शिक्षकों के संदर्भ में – शिक्षकों के संदर्भ में समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को इस प्रकार समझा जा सकता है –

- दिव्यांग बालकों के समस्याओं का समाधाना करके उनमें सृजनशीलता का विकास और वृद्धि करना,
- उतरदायित्व के कौशल को बढ़ाना,
- विविधतायुक्त मानवीय समुदाय के संदर्भ में शिक्षक की सहायता करना,
- समस्यायुक्त बालकों के साथ अंतर–अनुषासनात्मक दल का निर्माण करना,
- सभी बालकों में सदृढ़ता की पहचान करने में शिक्षक की सहायता करना,
- दल के तौर पर कार्य करने के कौशल का विकास करना, तथा
- प्रत्यक्ष अथवा सीधे व्यक्तिगत निर्देश के प्रति जागरूकता लाना।

समावेशी शिक्षा की विशेषताएं

मानवीय दृष्टि से हमारा विचार है कि सभी बालकों का सामान्य मूल्य तथा प्रस्थिति होती है। यही कारण है कि समावेशन में सभी बालकों के मूल्य और प्रस्थिति पर जोर दिया गया है। समावेशन के माध्यम से सामान्य बालकों के साथ ही विशेष आवश्यकता वाले बालक अपनी विशेष आवश्यकताओं को पाकर इसका लाभ उठाने में सफल होते हैं। समावेशन में यह क्षमता होती है कि वह शिक्षकों तथा सामान्य बालकों के अंदर दिव्यांग बालकों के प्रति समभाव उत्पन्न करे। समावेशी शिक्षा की विषेताओं को हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं –

(1) इसमें सामान्य बालक बिना किसी अक्षमता की स्थिति के सभी बालकों के योगदान का मूल्य समझने लगता है।

(2) विशेष आवश्यकता वाले बालकों के शामिल होने से सकारात्मक अभिवृतियां बनाई जा सकती है, जैसे– संयम, स्वीकृति, दया, आदि।

(3) इसके द्वारा भय को कम करके मित्रता, समझ तथा आदर का निर्माण किया जा सकता है। यह दिव्यांग बालकों के बहिष्करण से संबंधित भावना को कम अथवा समाप्त करके सहिश्णुता और सहनशीलता की भावना का विकास करता है।

(4) पूर्ण समावेशन सभी बालकों को उनके विद्यालयी शिक्षा पूरी करने के बाद मुख्य समाज में भूमिका निर्वहन के लिए तैयार करता है।

(5) यह शिक्षा मुख्यधारा के बालकों को उनकी कमजोरियों पर काबू पाकर अपने क्षमता के विकास में सहायता करता है।

टिप्पणी

समावेशी शिक्षा का क्षेत्र

समावेशीकरण का स्वरूप समय, काल, देश और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहा है। यह समावेशन विभिन्न देशों के सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में अंतर के कारण अलग–अलग स्तरों पर होता है। समावेशी शिक्षा का प्रारंभ सूक्ष्म से लेकर वृहद स्तर पर होता है, अर्थात समावेशन का क्षेत्र सूक्ष्म तौर पर पारिवारिक स्तर से प्रारंभ होकर प्रतिदिन की शिक्षण गतिविधियों, छात्रों के पारस्परिक व्यवहारों, विद्यालय तथा विद्यालय प्रबंधन, कक्षाओं, स्थानीय समुदायों, स्थानीय और राश्ट्रीय सरकारों से होते हुए अंत में पूरे समाज को अपने में समाहित किये हुए है। यह भले ही एक लघु विचार के तौर पर प्रारंभ हो सकता है, लेकिन बाद में इसका क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है। उदारणस्वरूप एक शिक्षक जब अपने कक्षा के गरीब बालकों को ध्यान में रखते हुए अपने विश्लेषण अथवा कहानी में अमीरों या कीमती वस्तुओं का उल्लेख नहीं करके सामान्य घरों में या समाज में पायी जाने वाली वस्तुओं को शामिल करता है तो यह बालकों के हितों को ध्यान में रखते हुए समावेशन का हिस्सा ही कहलायेगा।

समावेशी शिक्षा विश्व के कई देशों में अभी भी वैचारिक स्तर पर ही है, जबकि कई देशों ने इसे व्यवहार रूप में लागू कर दिया है। समावेशी शिक्षा ने तृतीय विश्व के कुछ ही देशों में गैर–सरकारी और सरकारी अभिकरणों को प्रभावित करने का कार्य किया है, जबकि अधिकांश देशों में इसे स्वीकार किया जाए अथवा नहीं, इसी वैचारिक अवधारणा के मध्य यह उलझा पड़ा है। समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में एक अन्य विवाद या अंतर भौगोलिक परिस्थितियों की है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में समावेशी शिक्षा का स्वरूप अलग–अलग हो सकता है। भारत जैसे देश में ग्रामीण क्षेत्रों में शारीरिक तौर पर असमर्थ बालकों तथा सामान्य बालिकाओं को इन विद्यालयों तक लाना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। शहरी क्षेत्रों में समावेशी शिक्षा जितना विस्तारित हो सकता है, उस तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में उनका विस्तार कम ही संभव है। दूसरी तरफ अनौपचारिक शिक्षा के उपलब्ध होने से अभिभावक अपने असमर्थ बच्चों को समावेशी विद्यालयों में नियमित भेजने की अपेक्षा अनौपचारिक शिक्षा की ओर भेजना अधिक पसंद करते हैं। दूसरी तरफ शहरों में भी गरीब परिवार के लोग अपने बच्चों को इन समावेशी विद्यालयों में भेजने की अपेक्षा काम पर भेजना पसंद करते हैं, समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में यह भी एक प्रमुख समस्या है।

भारत जैसे तृतीय विश्व के देश में भी समावेशी शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। विभिन्न गैर–सरकारी संगठनों के साथ ही सरकारी विद्यालयों में भी दिव्यांग बालकों तथा आर्थिक–सामाजिक तौर पर पिछड़े बालकों की समस्याओं को देखते हुए समावेशन पर बल दिया जाना प्रारंभ कर दिया गया है। जिस प्रकार भारत में समावेशन पर जोर दिया जा रहा है आने वाले समय में सभी मुख्यधारा के सरकारी विद्यालयों में समावेशी शिक्षा का विस्तारण संभव है। इस प्रकार आने वाले समय में समावेशी शिक्षा का क्षेत्र और अधिक व्यापक होगा, इसमें संशय नहीं है।

समावेशी शिक्षा का महत्व

समावेशी शिक्षा के महत्व के संदर्भ में कहा जा सकता है कि यह केवल दार्षनिकों का नैतिक और आदर्षवादी विचार ही नहीं है, बल्कि यह व्यवहारिक मांग है कि शिक्षा का

टिप्पणी

समावेशीकरण किया जाए अथवा समावेशी शिक्षा को अपनाया जाए। समावेशी शिक्षा समाज के सभी बालकों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने की वकालत करता है। सही मायने में यह सर्वशिक्षा जैसे षब्दों का ही यह रूपांतरित रूप है, जिसके कई लक्ष्यों में एक लक्ष्य 'विशेष आवश्यकता वाले छात्रों की शिक्षा' भी शामिल है। हालांकि यह विडंबना ही है कि समावेशी शिक्षा का अर्थ लोग केवल 'विशेष शिक्षा' से ही लगाते हैं, जबकि विशेष शिक्षा इसके अनेक लक्ष्यों में से एक है। सालामंका सम्मेलन में समावेशी शिक्षा के महत्व को निम्न प्रकार से स्पश्ट किया गया है –

प्रत्येक छात्र में विशिष्ट गुण, अभिरुचि, शिक्षण आवश्यकताएं और योग्यता विद्यमान होती है तथा उनके इन गुणों के अनुसार उनका संपूर्ण विकास समावेशी शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। यानि समावेशी शिक्षा प्रत्येक बालक के लिए उच्च तथा उचित उम्मीदों के साथ उसकी व्यक्गित शक्तियों का विकास करती है।

शिक्षा प्रत्येक बालक का मौलिक अधिकार है तथा प्रत्येक छात्र को स्वीकार्य स्तर अभिगम की प्राप्ति और उसे बनाये रखने का समान अवसर दिया जाना चाहिए, जो कि समावेशी शिक्षा में ही संभव है।

नियमित विद्यालयों में समावेशीकरण की ओर झुकाव विभेदीकरण की भावना से लड़ने तथा सभी समुदायों के सभी छात्रों का एक साथ पढ़ने से एकीकरण और समानता की भावना लाने का सबसे सषक्त माध्यम है, हालांकि ऐसे विद्यालयों में बहुसंख्यक छात्रों के आवश्यकताओं पर अधिक जोर दिया जाता है, फिर भी समावेशी शिक्षा से सभी बालकों का उन्नयन होता है। कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा सम्मान तथा अपनेपन की विद्यालयी संस्कृति के साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए अवसर प्रदान करती है।

जिन बालकों को विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है, उन्हें भी समावेशी विद्यालयों में शिक्षा का अवसर मिलता है, क्योंकि समावेशी विद्यालयों में भी ऐसे छात्रों के लिए अलग से कक्षाओं का आयोजन किया जाता है।

समावेशी शिक्षा की चुनौतियां

समावेशी शिक्षा को अनेक स्तरों पर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ये चुनौतियां पारिवारिक, सामुदायिक स्तर से लेकर शिक्षक और पाठ्यक्रम के साथ मूल्यांकन तक होती हैं। इन चुनौतियों को दो भागों में बांटा जा सकता है– सामान्य चुनौतियां तथा विशेष चुनौतियां। इनका उल्लेख निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत किया जा सकता है –

(क) **सामान्य चुनौतियां** – सामान्य चुनौतियां वैसी चुनौतियां होती हैं जिनका सामना प्रत्येक दिव्यांग बालक को करना पड़ता है। इन चुनौतियों में प्रमुख हैं–

- सामुदायिक सहभागिता की कमी – विद्यालय और समुदाय में सहभागिता अथवा अंतःसंबंध नहीं होने के कारण कुछ विशेष समुदाय के बालक विद्यालय कम संख्या में जाते हैं और वे बीच में ही विद्यालय छोड़ भी देते हैं। जिन समुदायों का शिक्षा से कम संपर्क रहा है, उनके बालकों को विद्यालय की पूरी शिक्षा में शामिल करवाना एक समस्या है।
- गरीबी – गरीबी स्वास्थ्य और अक्षमता से गंभीर रूप से जुड़ी हुई है। विभिन्न कारणों से गरीबों के बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते हैं, उसपर यदि

टिप्पणी

बालक दिव्यांग हो तो विद्यालय जाने की संभावना और भी क्षीण हो जाती है। यदि समुदाय अथवा समूह जिससे बालक संबंध रखता है, वह अमीर का हो तो मंत्रालय से लेकर राजनीतिक दलों और दबाव समूह में सक्रिय होकर अपने लिए लाभकारी नियमों का निर्माण करवाया जा सकता है, लेकिन गरीब लोगों के बच्चों के भगवान ही मालिक होते हैं।

(ख) **विशेष चुनौतियां** – विशेष चुनौतियों को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है –

- विद्यालयी स्तर पर चुनौतियां, जैसे– दिव्यांग बालकों के लिए विशेष शिक्षा के कौशल का शिक्षकों में कमी होना, शिक्षकों में प्रशिक्षण के बाद भी इन बालकों को पढ़ा सकने संबंधी आत्मविश्वास की कमी होना, बड़ी कक्षाएं, विशेषज्ञता की कमी, समान पाठ्यक्रम, सामान्य बालकों साथ दिव्यांग बालकों के पढ़ने को लेकर दिव्यांग बालकों के अभिभावक चिंतित, इसके लिए शिक्षकों अतिरिक्त पैसे नहीं, पूरी शिक्षा की गुणवता में कमी होने का डर, इसकी नीतियों का सही से लागू नहीं होना, विद्यालयों में उपकरणों की कमी, पर्याप्त वितीय मदद नहीं, आदि।
- शिक्षकों द्वारा अपनी कक्षाओं में दिव्यांग बालकों का स्वागत नहीं करने संबंधी चुनौतियां, जैसे – शिक्षकों को अपनी प्रतिश्ठा में कमी होने का डर, उनमें विशेष बालकों के शिक्षा संबंधी कौशल की कमी होना, शिक्षकों को दिव्यांगता की सही पहचान नहीं होना, शिक्षकों द्वारा बाल–उन्मुख शिक्षा के स्थान पर शिक्षक–उन्मुख अथवा विषय–उन्मुख शिक्षा पर जोर देना, शिक्षक द्वारा केवल अनुषासन लाने पर ध्यान केन्द्रित करना, आदि।
- मंत्रालय के विभिन्न विभागों और गैर–सरकारी संगठनों के बीच समन्वय संबंधी चुनौतियां, जैसे– केन्द्रीयकृत प्रणाली, समूहकार्य की कमी, कार्य षैली में भिन्नता,समन्वय और संचार में कमी, उतरदायित्व में कमी, पारस्परिक सौहार्द में कमी, आदि।
- समावेशी शिक्षा में अभिभावकों द्वारा अपने बालकों को ले जाने संबंधी चुनौतियां, जैसे– अभिभावक की गरीबी और संसाधनों की कमी, सार्वजनिक तौर पर अपने बालक को दिव्यांग मानने में हिचकिचाहट, बालकों के शिक्षा से अधिक उनके स्वास्थ्य की चिंता, आदि।
- संसाधनों की कमी – समावेशी विद्यालय में सामान्य बालकों की शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करना मुश्किल होता है, वैसे में दिव्यांग बालकों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपकरण और संसाधन मिलना और भी मुष्किल है।
- प्रारंभिक बचाव और रोकथाम संबंधी कार्यक्रमों संबंधी चुनौतियां – यदि बीमारियों अथवा अक्षमताओं की पूर्व पहचान कर ली जाए तो समय रहते चिकित्सकों द्वारा इसका इलाज किया जा सकता है और उचित समय पर प्रशिक्षण देने से अनेक कमियों को पूरा कर बालक का समुचित विकास संभव है।

टिप्पणी

- समावेशी शिक्षा संबंधी सूचना के प्रचार–प्रसार संबंधी चुनौतियां – समावेशी शिक्षा के प्रचार–प्रसाार के लिए किस माध्यम का प्रयोग किया और इस प्रचार के लिए संसाधन कहां से उपलब्ध हो, यह एक बड़ी समस्या है।
- समावेशी शिक्षा के उन्नयन संबंधी चुनौतियां – समावेशी शिक्षा के लिए उचित रणनीति की आवश्यकता है। केवल कानून बना देने से समावेशी शिक्षा को सफल नहीं माना जा सकता है। भारत जैसे देश में आज भी दिव्यांग बालकों के लिए विशेष विद्यालय की अवधारणा लोगों में प्रचलित है और नियमित विद्यालय में सामान्य बालकों की आधारभूत आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पाती है, ऐसे में समावेशी शिक्षा के उन्नयन में संसाधन की कमी और लोगों की भावना एक बाधा है।

इन चुनौतियों के बाद भी समावेशी शिक्षा के अब तक के सफर को देखकर कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा ने कई अन्य देशों में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है और वहां की पूरी शिक्षा व्यवस्था में इसे लागू कर दिया गया है। इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि आनेवाले समय में भारत में भी समावेशी शिक्षा का प्रसार और विस्तार तेजी से होगा।

समावेशी शिक्षा का लाभ

मानवीय दृष्टि से हमारा विचार है कि सभी बालकों का सामान्य मूल्य तथा प्रस्थिति होती है। यही कारण है कि समावेशन में सभी बालकों के मूल्य और प्रस्थिति पर जोर दिया गया है। समावेशन के माध्यम से सामान्य बालकों के साथ ही विशेष आवश्यकता वाले बालक अपनी विशेष आवश्यकताओं को पाकर इसका लाभ उठाने में सफल होते हैं। समावेशन में यह क्षमता होती है कि वह शिक्षकों तथा सामान्य बालकों के अंदर दिव्यांग बालकों के प्रति समभाव उत्पन्न करे। समावेशी शिक्षा के लाभों को हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं –

(1) इसमें सामान्य बालक बिना किसी अक्षमता की स्थिति के सभी बालकों के योगदान का मूल्य समझने लगता है।

(2) विशेष आवश्यकता वाले बालकों के शामिल होने से सकारात्मक अभिवृतियां बनाई जा सकती है, जैसे– संयम, स्वीकृति, दया, आदि।

(3) इसके द्वारा भय को कम करके मित्रता, समझ तथा आदर का निर्माण किया जा सकता है। यह दिव्यांग बालकों के बहिश्करण से संबंधित भावना को कम अथवा समाप्त करके सहिश्णुता और सहनशीलता की भावना का विकास करता है।

(4) पूर्ण समावेशन सभी बालकों को उनके विद्यालयी शिक्षा पूरी करने के बाद मुख्य समाज में भूमिका निर्वहन के लिए तैयार करता है।

(5) यह शिक्षा मुख्यधारा के बालकों को उनकी कमजोरियों पर काबू पाकर अपने क्षमता के विकास में सहायता करता है।

सफलतापूर्वक समावेशी के घटक

समावेशी शिक्षा में समावेशन कार्यक्रमों में आने वाले चुनौतियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि इसमें संसाधन और प्रयास की अधिक आवश्यकता है। सफलतापूर्वक

टिप्पणी

समावेशन कार्यक्रम के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारक को अमल में लाया जा सकता है –

(1) समावेशन के लिए प्रभावी योजना का निर्माण करना

(2) समावेशन में माता–पिता को सम्मिलित करना

(3) ऐसे दर्शन की स्थापना जो समावेशी शिक्षा के प्रचलन के लिए उचित समर्थन करे

(4) बाहरी सहयोग में बढ़ोतरी करना

(5) समावेशन में उच्चस्तरीय प्रषासकों को परिवर्तन अभिगमकर्ता के रूप में शामिल करना

(6) शिक्षाकर्मियों तथा छात्रों में दिव्यांगता जागरूकता का विकास करना

(7) सामान्य बालकों को भी आवश्यक सूचनाएं प्रदान करना

(8) सहयोग के लिए संरचना और समर्थन प्रदान करना

(9) स्वीकरण को संभव बनाना

(10) अतिरिक्त पाठ्यक्रम गतिविधियां तथा विद्यालय के बाहर समावेशन कार्यक्रम प्रारंभ करना।

समावेशी शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा के लिए कई प्रकार के शिक्षा के चरों का प्रयोग किया जाता है, जिसका लक्ष्य केवल एक ही होता है कि किसी भी प्रकार से ऐसे बालक अपनी शिक्षा को पूरा करें। इसमें छात्र के व्यक्तिगत आवश्यकताओं के आधार पर, जो विधि उनपर सटीक बैठती है, शिक्षा प्रदान किया जाता है। इसके लिए कई तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है, जैसे– शिक्षण का उद्देष्य, शिक्षण वातावरण, कक्षा के नियम, शिक्षा सामग्री, शिक्षण सहयोग, शिक्षण प्रारूप, शिक्षण समूह प्रबंधन, आदि।

समावेशी शिक्षा के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि क्या एक आर्थिक और सामाजिक तौर पर वंचित परिवार अथवा समूह का बालक एक ही विद्यालय में रहकर अपने सहपाठियों से हीनता का अनुभव नहीं करेगा। सैद्धांतिक तौर भले ही समावेशी शिक्षा का जितना भी समर्थन किया जाए, लेकिन व्यवहारिक तौर पर ऐसे उपेक्षित छात्र अपने को असहज पाते हैं। दूसरी तरफ नियमित विद्यालय तथा विशेष विद्यालय को अलग करने से शिक्षा का खर्च भी बहुत अधिक आएगा, इसलिए व्यवहारिक तौर पर समावेशी शिक्षा की अवधारणा को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है। आवश्यकता तो इस बात की है कि नियमित विद्यालय के शिक्षकों को भी ऐसे बालकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अलग से प्रशिक्षित किया जाए। इससे मानव संसाधन और समय दोनों की बचत संभव है।

विशेष शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा में अंतर (Difference Between Special Education and Inclusive Education)

विशेष शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा दोनों भले ही दिव्यांग बालकों को शिक्षा प्रदान करने का साधन है, लेकिन शिक्षा की दृष्टि से दोनों उपागमों में कुछ अंतर है। विशेष शिक्षा

टिप्पणी

के समर्थकों का मानना है कि विशेष शिक्षा में बालक की विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम से लेकर विद्यालय की अवसरंचना और बाहरी वातावरण पर नियंत्रण रखा जाता है, ताकि ऐसे बालक शिक्षा के क्रम में विकास की एक ही दिशा में आगे बढ़ें और उनका ध्यान विचलित नहीं हो, जबकि समावेशी शिक्षा में सामान्य विद्यालय में दिव्यांग बालकों को अनियंत्रित बाहरी वातावरण में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

समावेशी शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले छात्र की उपलब्धि विशेष शिक्षा की तुलना में कम होती है। इसके कई कारण हैं, जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है –

(1) **विद्यालय के वातावरण में अंतर** (Difference between Environment of School)– विशेष विद्यालय का निर्माण दिव्यांग बालकों की विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है, इसलिए इसमें केवल शिक्षण और कौशल के विकास पर जोर दिया जाता है और बाहरी वातावरण जैसे– सामान्य बालकों का इनके प्रति हीन दृष्टिकोण अथवा अभिभावकों और नियमित कक्षा शिक्षकों का व्यवहार, आदि उन्हें प्रभावित नहीं करते और बालक अपना पूरा ध्यान पढ़ाई और कौशल विकास पर लगाता है, जबकि समावेशी शिक्षा में विशेष तथा सामान्य बालक दोनों की शिक्षा पर जोर दिया जाता है।

(2) **संसाधन का उपयोग** (Different beween Use of Resources) – विशेष विद्यालय की संरचना ही इन बालकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की गयी है, इसलिए विद्यालय के भवन से लेकर प्रत्येक सामग्री इनकी सुविधा की दृष्टि से रखी जाती है, जबकि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत नियमित विद्यालय में अधिसंख्य बालक सामान्य प्रकृति के होते हैं, इसलिए उनकी सुविधाओं का ध्यान भी विद्यालयों को रखना होता है। ऐसे में दिव्यांग बालकों के लिए संसाधन कक्ष नामक एक विशेष स्थान तथा संसाधन शिक्षक नामक विशेष शिक्षक रख दिया जाता है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि यदि केन्द्र सरकार ने 100 रुपये सामान्य विद्यालय को प्रदान किया तो इसमें लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा तो सामान्य शिक्षा के अंतर्गत ही खर्च हो जाता है, फिर शेष 30 प्रतिशत हिस्से को विशेष शिक्षा के लिए खर्च किया जाता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के अक्षमताओं हेतु संसाधन कक्ष से लेकर उपकरणों की खरीद और शिक्षकों पर खर्च किया जाता है। दूसरी तरफ विशेष विद्यालयों का शत–प्रतिशत हिस्सा इन दिव्यांग बालकों की शिक्षा पर खर्च कर दिया जाता है, इसलिए विशेष विद्यालय में इनका बेहतर प्रदर्शन होता है।

(3) **शिक्षक की विशेषज्ञता** (Different beween Expertness of Teachers) – विशेष शिक्षा के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की अक्षमताओं के लिए अलग–अलग विशेष विशेषज्ञ शिक्षक नियुक्त किये जाते हैं, जो बालकों की विभिन्न समस्याओं को व्यक्तिगत आधार पर समझकर समाधान करते हैं, जिससे बालक तीव्रता से सीखता है, जबकि समावेशी शिक्षा में संसाधन शिक्षक नाम से एक या दो शिक्षक नियुक्त कर दिये जाते हैं। ये शिक्षक विभिन्न प्रकार की अक्षमताओं को समझकर बालकों की समस्याओं के समाधान की कोशिष तो करते हैं, लेकिन सभी प्रकार

टिप्पणी

की अक्षमता से निपटने में सफल नहीं हो पाते हैं और दूसरी तरफ बालक को कक्षा शिक्षक के भी संपर्क में रहना होता है, जो दिव्यांगता की समस्याओं को पूरी तरह से समझ भी नहीं पाते हैं तथा उन्हें सामान्य बालकों के शिक्षण का प्रमुख दायित्व निर्वहन करना होता है। भारत जैसे देश में जहां अनेक विद्यालय में एक–दो नियमित शिक्षक हैं, वहां संसाधन शिक्षक की बात करना बेतुका प्रतीत होता है। इससे दिव्यांग बालकों की उपलब्धि प्रभावित होती है।

(4) **शिक्षण सहयोगी उपकरण** (Different beween Teschers Supportive Divices)– विशेष शिक्षा में दिव्यांग बालकों की अक्षताओं के अनुसार शिक्षण सहायक उपकरणों की उपलब्धता अधिक रहती है, जबकि समावेशित विद्यालयों में सामान्य बालकों के शिक्षण सहायक सामग्रियों के साथ इन्हें भी रख दिया जाता है, लेकिन इनकी संख्या कम होती है, जिससे दिव्यांग बालकों की उपलब्धि प्रभावित होती है।

(5) **पाठ्यक्रम की रचना** (Different beween Composition of Curriculum) – विशेष शिक्षा में पाठ्यक्रम की रचना बालक की दिव्यांगता को ध्यान में रखकर की जाती है, जबकि समावेशी विद्यालयों पाठ्यक्रम की रचना मुख्यतः सामान्य बालकों को ध्यान में रखकर की जाती है। इस प्रकार के सामान्य पाठ्यक्रम के अध्ययन के कारण दिव्यांग बालक की शैक्षिक उपलब्धि कम हो जाती है।

(6) **मूल्यांकन प्रणाली में अंतर** (Different beween Evaluation System) – विशेष शिक्षा के अंतर्गत दिव्यांग बालक का मूल्यांकन उनकी अक्षमता को ध्यान में रखते हुए की जाती है, जबकि समावेशित शिक्षा के अंतर्गत सामान्य मूल्यांकन प्रणाली को प्रयोग में लाया जाता है, जिसका परिणाम होता है कि दिव्यांग बालक शैक्षिक उपलब्धि में पीछे हो जाते हैं।

(7) **विद्यालय की अवसंरचना** (Different beween School Infrastructure) – विशेष शिक्षा वाले विद्यालयों के भवनों से लेकर कक्षा की संरचना इस प्रकार की जाती है कि दिव्यांग बालक बिना किसी बाधा के आ–जा सकें और उन्हें पढ़ने में सुविधा हो। इसके लिए कक्षा में टेबल–कुर्सी से लेकर डिस्प्ले तक ऐसा बनाया जाता है सभी बालक उसपर आराम से बैठ सकें और देख–सुन सकें। दूसरी तरफ समावेशित शिक्षा में संसाधन कक्ष के अलावा अन्य स्थानों को दिव्यांग बालकों को ध्यान में नहीं रखा जाता है। भारत में अनेक विद्यालय ऐसे हैं, जिनके पास न तो भवन हैं और न ही कुर्सी–टेबल। ऐसे में विशेष प्रकार के उपस्कर और बाधारहित कक्षा में आना–जाना केवल किताबों में सिमट जाती है और दिव्यांग बालक शिक्षा में पिछड़ जाते हैं।

(8) **बालक की अभिवृति** (Different beween Attitude of Child) – विशेष विद्यालय में दिव्यांग बालक अपने जैसे अन्य अक्षम छात्रों को देखता है तो उसे अपनी कमी के प्रति हीनभावना नहीं आती है और बालक आत्मविश्वास से पढ़ता है, जबकि समावेशित विद्यालयों में अन्य सामान्य बालकों को देखकर दिव्यांग बालक में हीन भावना आने लगती है और सामान्य बालक भी इनको हीन भावना से देखते हैं, इससे दिव्यांग बालक का आत्मविश्वास कम हो जाता है और उसकी शिक्षा के प्रति अभिरुचि भी कम होने लगती है जिससे उसका शिक्षा भी

टिप्पणी

प्रभावित होता है। देखा तो यह भी जाता है कि सामान्य नियमित विद्यालयों में कक्षा शिक्षक का व्यवहार भी इन दिव्यांग बालकों के साथ अच्छा नहीं होता है। इन नकारात्मक प्रवृतियों का प्रभाव दिव्यांग बालक की शैक्षिक उपलब्धियों पर पड़ता है।

समावेशी शिक्षा के समर्थकों का मानना है कि विशेष शिक्षा में कई प्रकार की कमियां थी, जिनकों दूर करने के लिए समावेशी शिक्षा अस्तित्व में आयी। इसमें कोई संशय नहीं कि विशेष विद्यालयों में दिव्यांग बालकों की शिक्षा आवश्यकताओं को विशेष प्रकार से पूरा किया जाता है, लेकिन इसकी सबसे बड़ी कमी यह है बालक सामान्य समाज से दूर कृत्रिम दुनिया में रहता है और शिक्षा पूरी करने के बाद भी सामान्य समाज में उसे रहने में अनेक प्रकार की समस्याएं आती है। विशेष शिक्षा की निम्नलिखित कमियों को पूरा करने के लिए समावेशी शिक्षा अस्तित्व में आयी है –

(1) **धन और समय की बचत** (Saving of Time and Money) – समावेशी शिक्षा में एक ही नियमित विद्यालय में सामान्य बालकों के साथ ही दिव्यांग बालकों के विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संसाधन कक्ष तथा संसाधन शिक्षक उपलब्ध करवा दिया जाता है, जिससे धन और समय दोनों की बचत हो जाती है, जबकि विशेष शिक्षा के अंतर्गत दिव्यांग बालकों के शिक्षा के लिए अलग विद्यालय होन से समय और धन का अपव्यय होता है।

(2) **बालक को सामान्य समाज से जोड़कर रखना** (To Connect Child with Normal Society) – समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बालकों के साथ रहकर अध्ययन करने से दिव्यांग बालक स्वयं को शेष समाज से कटा हुआ नहीं पाते हैं और उनमें समाजिकरण का विकास बेहतर तरीके से होता है, शिक्षा के समापन के बाद इन दिव्यांग बालकों को पुनः समाज में रहना होता है, जबकि विशेष शिक्षा के अंतर्गत दिव्यांग बालकों के लिए पृथक विद्यालय होते हैं, जिससे सामान्य बालकों तथा सामान्य लोगों से ये बालक दूर हो जाते हैं।

(3) **अन्य बालकों में सहयोग की भावना लाना** (To Bring Cooperation Attitude in Other Child) – विशेष विद्यालय में सामान्य बालक दिव्यांग बालकों के संपर्क में नहीं आते हैं, जिससे वे दिव्यांग बालकों की समस्याओं को समझ नहीं पाते हैं, जबकि समावेशी विद्यालयों में सामान्य और विशेष बालक दोनों एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ सामान्य बालकों में सहयोग की भावना आती है और दूसरी तरफ दिव्यांग बालक भी सामान्य बालकों से प्रभावित होकर उनकी सहायता करते हैं।

(4) **अधिसंख्य दिव्यांगों को शिक्षा प्रदान करना** (To Educate Maximum Disabled Persons) – कालांतर में यह महसूस किया गया कि विशेष शिक्षा के अंतर्गत सभी दिव्यांग बालकों की विशेष शिक्षा आवश्यकता को व्यवहारिक तौर पर पूरा करना असंभव है, क्योंकि दिव्यांग बालकों की संख्या बहुत अधिक है और इसके लिए अत्यधिक धन एवं संसाधन की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विकासशील देश में दिव्यांग बालकों की संख्या को देखते हुए विशेष विद्यालयों की संख्या कम पड़ जाती है। वर्श, 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में दिव्यांग लोगों की संख्या निम्न प्रकार है –

टिप्पणी

आवास भारत, निःषक्त जन जनसंख्या : जनगणना – 2011 के अनुसार

आवास	व्यक्ति तथा प्रतिशत	पुरुष	महिला
कुल	2,68,10,557	1,49,86,202	1,18,24,355
ग्रामीण	1,86,31,921 (69.49)	1,04,08,168	82,23,753
शहरी	81,78,636 (30.5)	45,78,034	36,00,602

उपर्युक्त आंकड़े देखकर कहा जा सकता है कि भारत जैसे विकासशील देश में सामान्य शिक्षा आवश्यकताओं पर व्यय के लिए धन की कमी पर जाती है, वैसे में विशेष विद्यालय के लिए संसाधन संग्रह बहुत कठिन है, ऐसी ही परिस्थिति में समावेशी विद्यालय की अवधारणा सही हो सकती है।

(5) **शिक्षा को सर्वसुलभ और आसान बनाना** (To Make Education Easy and Universal) – विशेष शिक्षा के लिए स्थापित किये गये विद्यालय सामान्यतः महंगे और शहरों तक सीमित थे, जिससे गरीब और ग्रामीण क्षेत्र का दिव्यांग बालक शिक्षा से वंचित रह जाते थे, जबकि समावेशी शिक्षा में सामान्य विद्यालय जो सर्वत्र उपलब्ध तथा मुत है के अंतर्गत दिव्यांग बालकों को आसानी से शिक्षा प्रदान किया जा सकता है।

(6) **समावेशी समाज का निर्माण करना** (To make Inclusive Society) – विशेष शिक्षा में अलगाव की भावना है, इसमें नकारात्मकता का गुण है कि दिव्यांग बालक समान्य बालक से अलग हैं, इसलिए उनकी शिक्षा भी अलग होनी चाहिए, जबकि समावेशी शिक्षा सकारात्मकता के साथ सभी बालकों के शिक्षा का अधिकार व्यवहार में लागू करने पर बल देती है। इसमें विभिन्न प्रकार के बालकों के साथ पढ़ने से बालकों में समावेशन की भावना पायी जाती है, जिससे आगे चलकर समावेशी समाज का निर्माण होता है।

(7) **बालक का सर्वांगीन विकास करना** (To Develop Whole Aspects of Child) – विशेष विद्यालयों भले ही दिव्यांग बालकों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करके उनको शैक्षणिक तौर पर सफल दिखा जाता है, लेकिन ऐसे बालकों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है, वे अपने विद्यालय और पाठ्यक्रम में दिव्यांग बालकों के मध्य तो बेहतर करते हैं, लेकिन सामान्य जीवन में सामान्य बालकों और समाज में वे असहज हो जाते हैं, इसलिए शिक्षा समावेशी शिक्षा में इन कमियों को पूरा किया जाता है और उनके समग्र विकास के लिए सामान्य पाठ्यक्रम और वातावरण प्रदान किया जाता है, जिसमें वे भले ही शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ जाते हैं, लेकिन जीवन के सामान्य अनुभवों और समाज के लिए उपयुक्त हो जाते हैं।

समेकित शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा

समावेशी शिक्षा और समेकित शिक्षा उपागम दोनों का ही लक्ष्य विशेष आवश्यकता वाले बालकों को विशेष शिक्षा प्रदान करना है। समावेशी शिक्षा की अवधारणा यह मानकर चलता है कि सभी बालकों को चाहे वे किसी अक्षमता अथवा दुर्बलता से ग्रस्त हों

सामान्य बालकों की तरह ही नियमित विद्यालय में शिक्षा का समान अवसर मिलना चाहिए और यह उनके उपर दया नहीं है, बल्कि दिव्यांग बालकों का अधिकार है। समेकित शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा के मध्य समानताओं और असमानताओं अथवा अंतरों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है –

टिप्पणी

समेकित शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा में समानताएं

समेकित शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा दोनों का ही लक्ष्य दिव्यांग बालकों की शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करना है, इसलिए इन दोनो में अत्यधिक समानताएं हैं, जिसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है –

(1) समावेशी शिक्षा तथा समेकित शिक्षा दोनों ही विशेष शिक्षा के उपागम अथवा अंग हैं।

(2) शिक्षा के इन दोनों उपागमों का लक्ष्य दिव्यांग बालकों की विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करना है।

(3) दिव्यांग बालकों की शिक्षा के लिए नियमित विद्यालय का सहयोग दोनों उपागमों में लिया है।

(4) शिक्षा के इन दोनों प्रारूपों का अंतिम लक्ष्य दिव्यांग बालकों की समस्याओं का समाधान करके उन्हें मुख्यधारा में लाना और पुनर्वासित करना है।

(5) दोनों ही उपागमों में दिव्यांग व्यक्तियों के प्रति समाज का सकारात्मक दृष्टिकोण और जागृति लाकर दिव्यांगों को समाज का सषक्त सदस्य बनाना है।

समेकित शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा में अंतर

समेकित शिक्षा के अंतर्गत दिव्यांग बालकों को विशेष प्रकार की कक्षाएं उपलब्ध कराई जाती थी, लेकिन इसमें विद्यालय के लिए आवश्यक नहीं था कि वह अनिवार्य तौर पर दिव्यांग बालकों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करे। हालांकि उसमें कोशिष की जाती थी कि उनकी समस्याओं का समाधान हो, लेकिन इसमें प्रमुख जोर सामान्य बालकों की शिक्षा पर दी जाती थी और दिव्यांग बालकों की शिक्षा को अतिरिक्त कार्यभार समझा जाता था, जिस कारण दिव्यांग बालकों की शिक्षा को उचित महत्व नहीं मिल पाता था। इन समस्याओं को दूर करने के लिए समावेशी शिक्षा को प्रारंभ किया गया, जिसका मूलाधार था कि सभी बालकों की शिक्षा विशेषकर दिव्यांग बालकों की शिक्षा को उचित महत्व दिया जाए और उनकी विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को अनिवार्य तौर पर पूरा किया जाए। इस दृष्टिकोण से सामान्य नियमित विद्यालयों में विशेष संसाधन उपलब्ध कराना भी सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया है।

समावेशी शिक्षा और समेकित शिक्षा दोनों की विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा के लिए प्रयास करता है, हालांकि दोनों में पर्याप्त अंतर है, इन दोनों के मध्य अंतरों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है –

(1) समावेशी शिक्षा इस प्रतिबद्धता को साथ लेकर चलता है कि सभी बालकों को भले ही वे किसी भी प्रकार के और किसी भी हद तक दिव्यांग क्यों नहीं हों, शिक्षा पाने का अधिकार है और सामान्य नियमित विद्यालय उनको विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उचित समायोजन करेगा, जबकि समेकित

टिप्पणी

शिक्षा के अंतर्गत नियमित विद्यालयों में बालक की दिव्यांगता के आधार पर कुछ हद तक नामांकन हो सकता है और जब तक दिव्यांग बालक की शिक्षा यहां संभव है, दिव्यांग बालक पढ़ सकता है, लेकिन इसके लिए विद्यालय किसी प्रकार का समायोजन नहीं करता है।

(2) समावेशी शिक्षा एक नई अवधारणा है जो समेकित शिक्षा के आगे का स्तर है यानि समेकित शिक्षा की तुलना में समावेशी शिक्षा की अवधारणा नई है।

(3) सभी देशों में पहले समेकित शिक्षा को ही अपनाया गया आगे चलकर समावेशी शिक्षा का विकास हुआ।

(4) विश्व के अधिकांश देशों में समावेशी शिक्षा अब प्रचुरता के साथ अपना ली गयी है।

(5) समावेशी शिक्षा में दिव्यांग बालकों के संदर्भ में पूरे विद्यालय में परिवर्तन किया जाता है जबकि समेकित शिक्षा में केवल विषय में परिवर्तन और सुधार किया जाता है।

(6) समावेशी शिक्षा में शिक्षा पाने का अधिकार सभी बालकों को है जबकि समेकित शिक्षा में यह विशेष बालकों की आवश्यकता है कि वे इन विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करें।

(7) समावेशी शिक्षा में मुख्यधारा के शिक्षकों की विशेषज्ञता का आंतरिक सहयोग लिया जाता है जबकि समेकित शिक्षा में व्यावसायिक और विशेषज्ञों का औपचारिक सहयोग लिया जाता है।

(8) समावेशी शिक्षा से सभी बालकों को लाभ मिलता है, जबकि समेकित शिक्षा में केवल विशेष आवश्यकता वाले बालकों को ही लाभ मिलता है। समावेशी शिक्षा के अंतर्गत समान कक्षाओं में जोड़े में पढ़ने से विशेष आवश्यकता वाले बालक को तो लाभ मिलता ही है साथ ही सामान्य बालकों में भी विषय को नये तरीके से सीखने के साथ ही सहयोग, सद्भाव, विभिन्नता, आदि को समझने का गुण विकसित होता है। दूसरी तरफ समेकित शिक्षा के अंतर्गत दिव्यांग बालकों को अलग कक्षाओं में पढ़ाने से सामान्य बालकों को इन चीजों को सीखने का अवसर नहीं मिल पाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा की तुलना में समेकित शिक्षा का क्षेत्र सीमित अथवा संकुचित है, क्योंकि इसमें केवल उन्हीं दिव्यांग बालकों को शिक्षा दी जाती है, जो अपने स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने योग्य हों, लेकिन समावेशी शिक्षा में सभी प्रकार के बालकों को शिक्षा देने का लक्ष्य रखा जाता है चाहे बालक में दिव्यांगता किसी भी स्तर की हो।

समेकित शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा के मध्य अंतरों को निम्न प्रकार से बिन्दुवार समझा जा सकता है –

समेकित शिक्षा और समावेशी शिक्षा में अंतर

टिप्पणी

समेकित शिक्षा	समावेशी शिक्षा
1 'विशेष बालकों' की आवश्यकता	1 सभी बालकों का अधिकार
2 'विशेष आवश्यकता वाले' बालकों को लाभ	2 सभी बालकों को लाभ
3 विषय में परिवर्तन और सुधार	3 विद्यालय में परिवर्तन
4 व्यावसायिक, विशेषज्ञ, तथा औपचारिक सहयोग	4 आंतरिक सहयोग तथा मुख्यधारा के शिक्षकों की विशेषज्ञता

अंत में कहा जा सकता है कि समेकित और समावेशी शिक्षा में प्रमुख अंतर होते हुए भी यह दिव्यांग बालकों को शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जिन विद्यालयों में संसाधन की कमी है अथवा नये प्रकार के भवन और अन्य उपकरण उपलब्ध नहीं है, वहां समेकित शिक्षा के अंतर्गत कम–से–कम दिव्यांग बालक को अध्ययन करने का अवसर तो मिल जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि संपूर्ण समावेशन और समेकिकरण का मुद्दा छोड़कर विद्यालयों के विकास पर जोर दिया जाए ताकि सभी प्रकार के बालक इन विद्यालयों में अपनी पढ़ाई को पूरा कर सकें।

अपनी प्रगति जांचिए

3. जे.एच. फिक्टर ने सीखने की प्रक्रिया में कौन–सी उपक्रिया को शामिल नहीं किया है?

   (क) नकल (ख) सुझाव

   (ग) प्रतियोगिता (घ) अनुभव

4. अधिगम अक्षमता पद का सर्वप्रथम प्रयोग सैमुअल किर्क द्वारा किस सन् में किया गया?

   (क) सन् 1953 (ख) सन् 1963

   (ग) सन् 1973 (घ) सन् 1983

1.4 शिक्षण–अधिगम के ज्ञानात्मक आधार

शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रियाएं दोनों एक साथ होती हैं। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रक्रिया का संचालन करना है। शिक्षण का मुख्य कार्य अधिगम की समुचित परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है जिससे छात्र अनुभव द्वारा क्रियाएं करते हैं और अधिगम करते हुए नवीन ज्ञात की प्राप्ति होती है। शिक्षण की प्रभावशीलता के मूल्यांकन का मानदंड अधिगम होता है। शिक्षक जाने या अनजाने में अपने शिक्षण का अधिगम से संबंध स्थापित करता है औक्र जब यह संबंध स्थापित हो जाता है तो छात्र अधिगम के द्वारा अपने पूर्व ज्ञान में नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। प्रभावशाली शिक्षण के लिए शिक्षक को शिक्षण–अधिगम संबंध का होना आवश्यक है।

टिप्पणी

बी.ओ. स्मिथ की शिक्षण के विषय में यह अवधारणा है कि जहां शिक्षण किया जाएगा वहां अधिगम प्रक्रिया अवश्य होगी और जहां अधिगम होगा वहां नवीन ज्ञान की प्राप्ति अवश्य होगी क्योंकि शिक्षण अधिगम हेतु किया जाता है इसलिए शिक्षण–अधिगम अपने में पूर्ण है और इसके द्वारा छात्रों में नये ज्ञान का विकास किया जाता है।

थॉमस एफ. ग्रीन के विचार स्मिथ से भिन्न हैं इन्होंने अपनी पुस्तक (Activities of teaching) में शिक्षण के अर्थ का विवेचन करते हुए कहा है कि जहां शिक्षण हो वहां यह आवश्यक नहीं है कि अधिगम भी हो, अर्थात अधिगम हो भी सकता है और नहीं भी। ग्रीन के अनुसार शिक्षण का उद्देश्य अधिगम होता है परंतु यह आवश्यक नहीं कि उसे प्राप्त कर ही लें। इन्होंने इस कथन की पुष्टि हेतु कुछ तर्क भी दिये जैसे– डॉक्टर का इरादा मरीज को ठीक करना होता है परंतु यह आवश्यक नहीं है कि सभी मरीज ठीक हो जाएं। इसी प्रकार शिक्षक का उद्देश्य होता है कि सभी छात्र शिक्षण अधिगम द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सीखें और परीक्षा में सफल हों किंतु यह आवश्यक नहीं है कि सभी विद्यार्थी परीक्षा में सफल होंगे।

ग्रीन के मत में शिक्षण–अधिगम का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। यह कक्षा शिक्षण तथा शिक्षक तक ही सीमित नहीं है। जो भी अधिगम के लिए परिस्थितियां उत्पन्न करता है जिससे छात्र कुछ क्रियाएं करते हुए अपने अनुभव के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करते हैं, वह शिक्षक की भूमिका का निर्वाह करता है। इस प्रकार माता–पिता, भाई–बहन, मित्र एवं समाज के सदस्य भी बालक को सिखाते हैं।

अतः अनुभवों एवं क्रियाओं से जो व्यवहार में परिवर्तन होते हैं, उसे अधिगम कहते हैं। नवीन परिस्थितियों एवं क्रियाओं से जो अनुभव प्राप्त होते हैं, उनसे बालक के व्यवहार में परिवर्तन होता है और बालक नवीन ज्ञान को प्राप्त करता है।

ज्ञान के निर्माण का अर्थ एवं परिभाषाएं

अर्थ :

ज्ञान का निर्माण ज्ञान के ग्रहण करने से पूर्णतया भिन्न होता है। इसके अंतर्गत छात्र प्राप्त ज्ञान का अपने अनुभवों द्वारा परिवर्तन करते हुए उसका प्रयोग करता है। वह ज्ञान में कुछ नई चीजों को वाद–विवाद, खोज, खुले एवं स्वतंत्र रूप से सीखने में संबंध स्थापित करता है। यहां अधिगम से अभिप्राय वैयक्तिक ज्ञान के निर्माण से है। छात्र अन्य छात्र अथवा अधिगमकर्ता से अंतःक्रिया कर अथवा सहायता प्राप्त करके ज्ञान का निर्माण करता है। ज्ञान का निर्माण करने में निर्माणकर्ता विषय–वस्तु से संबंधित निम्नलिखित व्यवहार को सम्मिलित कर सकता है।

- सामान्यतः गतिविधि आधारित शिक्षण
- छात्र द्वारा अपने कार्यों की अन्य से तुलना
- अवधारणाओं का अपना अर्थ
- अधिगम परिणामों में विभिन्नता
- अंतःकरण अभिप्रेरण की भूमिका
- सृजनात्मक परिणाम

- विचारों में वस्तुनिष्ठता
- विनोदपूर्ण अधिगम
- विचारों में लोचशीलता एवं स्वतंत्रता

टिप्पणी

ज्ञान के अध्ययन को ज्ञान–मीमांसा कहते हैं। जब बालक अपनी अनुभूतियों को अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने लगता है और वस्तुओं को पहचानकर उनको उनके नाम से पुकारने लगता है तब हम यह कह सकते हैं कि बालक में समझ आ गई है। बालक अपने अनुभवों से ज्ञान तथा इसके अर्थों को उत्पन्न करता है। समझ के विकास का तात्पर्य विचारों, मनोवृत्तियों, कार्यों एवं सामाजिक मान्यताओं के अर्थ तथा प्रयोजन को समझना होता है। इस सिद्धांत के द्वारा यह दर्शाया जाता है कि कैसे शैक्षिक उपागमों को शिक्षण के पाठ्यक्रमों में रूपांतरित किया जा सकता है और कैसे शिक्षा–शास्त्र की प्रायोगिक रणनीतियों तथा क्रियाओं में विकसित किया जा सकता है।

प्रारंभ में बच्चे शब्दों का अर्थ तभी समझते हैं जब शब्दों का संबंध किसी वस्तु, विचार या अनुभव के साथ जोड़ा जाता है, जैसे– 'माँ' शब्द बच्चे के लिए आरंभ में ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है, लेकिन जब 'माँ' शब्द का संबंध 'माता' से जुड़ जाता है, तब बच्चा 'माँ' का अर्थ समझता है। समझ का आधार वे उपयुक्त शैक्षिक अवसर या अनुभूतियां हैं, जिनको बालक शब्दों अथवा वाक्यों के द्वारा अभिव्यक्त करता है।

परिभाषाएं

यहां पर ज्ञान के निर्माण की कुछ परिभाषाएं दी जा रही हैं–

श्रीमती आर.के. शर्मा एवं श्रीमती बरौलिया के मतानुसार, "ज्ञान के निर्माण का आशय सूचनाओं का प्रबंधन संगठन एवं पुनःप्राप्ति की प्रक्रिया से है जिसमें विज्ञान, तकनीकी, दर्शन एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से संबंधित तथ्यों को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया में शिक्षक, शिक्षालय एवं शिक्षार्थी तीनों को ही सहायता मिलती है।"

प्रो. एस.के. दुबे के मत में, "ज्ञान के निर्माण का आशय सूचनाओं के संगठनात्मक एवं उपयोगी स्वरूप से है जिसके माध्यम से छात्रों को सर्वांगीण विकास हेतु ज्ञानात्मक सामग्री की उपलब्धता सरलता से होती है तथा छात्र स्वयं बिखरी हुई सूचनाओं एवं अधिगम गतिविधियों को व्यवस्थित करके ज्ञान प्राप्त करते हैं और स्वयं के सर्वांगीण विकास को पथ प्रशस्त करते हैं।"

एगॉग एवं कौचक का ज्ञान के निर्माण के विषय में मत है कि, "ज्ञान का निर्माण अधिगम का एक दृष्टिकोण है जो अधिगमकर्ता को अपने अनुभव का प्रयोग कर सक्रिय रूप से समझ के निर्माण से है न कि पहले से संगठित ज्ञान की समझ से।"

प्रो. जोड के अनुसार, "ज्ञान हमारी उपस्थित जानकारी और अनुभवों के भण्डार में वृद्धि का नाम है।"

वेबस्टर के मत में, "ज्ञान वह है जो ज्ञात है और ज्ञात होने के बाद संचित रहता है या वह जानकारी है जो वास्तविक अनुभव द्वारा प्राप्त होती है।"

टिप्पणी

ज्ञान के निर्माण की विशेषताएं

ज्ञान के निर्माण की विशेषताओं के बारे में अनेक विद्वानों, शिक्षाशास्त्रियों ने भिन्न–भिन्न विचार प्रकट किए हैं जो निम्नलिखित हैं–

- एक संगठनात्मक संरचना बनाने की प्रक्रिया के रूप में।
- सूचनाओं का संश्लेषण एवं विश्लेषण।
- ज्ञान का निर्माण एवं बौद्धिक ज्ञान के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण विज्ञान संबंधी सूचनाओं के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण पुस्तकालय व्यवस्था के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण तकनीकी सूचनाओं की प्रक्रिया के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण एक दार्शनिक प्रक्रिया के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण एक वर्गीकरण की प्रक्रिया के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण सूचनाओं के समन्वयन की प्रक्रिया के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण सूचनाओं के निर्धारण की प्रक्रिया के रूप में।
- ज्ञान का निर्माण सूचनाओं की पुनःप्राप्ति की प्रक्रिया के रूप में।

अधिगम ज्ञान के निर्माण के रूप में

सीखने की प्रक्रिया में ज्ञान का प्रभावपूर्ण समावेश होता है। सर्वप्रथम ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया का मनुष्य के जीवन पर दो रूपों में प्रभाव पड़ता है। पहला जब व्यक्ति किसी अधिगम क्रिया को संपन्न करता है तब उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसमें नवीन तथ्यों के ज्ञान तथा सृजनात्मक योग्यता का विकास होता है। दूसरा जब शिक्षक द्वारा कक्षा में शिक्षण प्रक्रिया द्वारा ज्ञान प्रदान किया जाता है तब समस्त छात्रों में से कुछ छात्र सामान्य स्तर का सृजन करते हैं तो कुछ में सृजन स्तर नगण्य रहता है।

अधिगम के ज्ञान निर्माण के इस सिद्धांत से यह सिद्ध होता है कि शिक्षक की शिक्षण विधि के अतिरिक्त छात्रों की सृजनात्मकता प्रायः बुद्धि–लब्धि तथा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। शिक्षक को यह आवश्यक रूप से समझ लेना चाहिए कि किसी विधि के माध्यम से वह समस्त छात्रों में ज्ञान का विकास कर सकता है। शिक्षक के अथक प्रयास द्वारा छात्रों में ज्ञान सृजन की प्रक्रिया का विकास संभव हो जाता है। इसके लिए प्रमुख बिंदु इस प्रकार है–

- सर्वप्रथम शिक्षक को छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता और उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षण करना चाहिए।
- शिक्षकों को छात्रों को विभिन्न पाठ्य–सहगामी क्रियाओं, जैसे– वाद–विवाद तथा भाषण आदि के अवसर उपलब्ध कराने चाहिए जिससे उनमें चिंतन तर्क एवं सृजन शक्ति का विकास हो सके।
- शिक्षक को प्रायः छात्रों की सहभागिता से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया संपन्न करनी चाहिए।

- छात्रों को प्रायः स्वतंत्र रूप से ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

ज्ञान निर्माण के आधार

ज्ञान के निर्माण में प्रयोज्य अधिगम करते समय कुछ विभिन्न प्रत्ययों का अधिगम करता है जिनके द्वारा वह समस्याओं का समाधान करता है। इसके साथ ही वह कुछ अन्य प्रत्ययों के संबंध में सूचनाएं एकत्रित करता है जिनकी सहायता से वह वर्तमान समय से संबंधित समस्याओं का अध्ययन करता है। यह भी देखा गया है कि जब प्रयोज्य एक प्रकार की अनेक समस्याओं को हल कर लेता है तो उससे संबंधित नई समस्याएं उसके सामने प्रस्तुत की जाती है जिनका अधिगम वह अत्यंत शीघ्र ही किसी दूसरे तरीके से कर लेता है।

हार्लो ने सर्वप्रथम अधिगम प्रत्यय के क्षेत्र में विशेष अध्ययन किया था। उनका मत है कि अधिगम शीघ्रता से इसलिए होता है कि क्योंकि पूर्व अनुभवों के आधार पर प्रयोज्य में एक अधिगम प्रत्यय बन जाता है। नवीन ज्ञान के निर्माण में समझ की प्रक्रिया के द्वारा विभिन्न प्रत्ययों का निर्माण किया गया है जिनका उल्लेख इस प्रकार है–

1. अनुभवात्मक अधिगम और उसका प्रभाव
2. सामाजिक माध्यम
3. संज्ञानात्मक योग्यता
4. स्थिर अधिगम और संज्ञानात्मक प्रशिक्षण
5. बहुसंज्ञान

1. अनुभवात्मक अधिगम और उसका प्रभाव

अनुभवात्मक अधिगम से अभिप्राय ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें अनेक अनुभवों तथा अनुसंधानों के द्वारा किसी नियम या सिद्धांत की सत्यता का मापन किया जाता है। बालक अपने प्रारंभिक जीवन से ही अनुभवात्मक कार्य प्रारंभ कर देता है। जब वह यह कथन सुनता है कि सजीव वस्तुओं में वृद्धि होती है, निर्जीव वस्तुओं में नहीं वह व्यावहारिक जगत में पेड़–पौधों का परीक्षण करके उनकी वृद्धि को जान पाता है तथा निर्जीव वस्तु जैसे– मेज, कुर्सी आदि में वृद्धि नहीं देखता है। इस प्रकार उसका अधिगम स्थाई हो जाता है और ऐसी अनुभवात्मक प्रक्रिया उसके जीवन में निरंतर चलती रहती है।

अनुभवात्मक अधिगम का बालक के जीवन पर प्रभाव निम्नलिखित रूपों में परिलक्षित होता है–

- अनुभव द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान स्थाई एवं जीवन्त होता है।
- अनुभव द्वारा तर्कशक्ति एवं चिह्नशक्ति का विकास होता है।
- अनुभवात्मक अधिगम द्वारा बालक वास्तविक एवं सार्थक ज्ञान को प्राप्त करता है।
- इसमें स्व–अनुभव द्वारा छात्र स्वयं प्रमाणों को एकत्रित करके प्रयोग द्वारा अधिगम करता है।

टिप्पणी

- अनुभव द्वारा अधिगम बालकों को मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुरूप अधिगम करने का अवसर देता है।
- इसके द्वारा बालक की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाशीलता में वृद्धि होती है।
- अनुभवात्मक अधिगम द्वारा बालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है।
- अनुभव द्वारा बालकों में प्रयोगात्मक कुशलता का विकास होता है।

2. सामाजिक माध्यम

अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है। सामाजिक माध्यमों में अनेक ऐसे अवसर आते हैं, जब बालक को किसी कार्य को करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और किसी कार्य के लिए हतोत्साहित किया जाता है। किसी बालक को जब किसी कार्य के लिए प्रोत्साहित किया जाता है तो उसे आत्मसम्मान का अनुभव होता है और वह उस प्रकार के कार्य को सम्मानित कार्य समझने लगता है। ऐसे कार्यों को बालक अपने जीवन में धारण कर लेते हैं और उनको अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेते हैं। इसके विपरीत जिन कार्यों के लिए बालकों को हतोत्साहित किया जाता है उनसे उनको आत्मग्लानि का अनुभव होता है और वे उन कार्यों को करने से बचने लगते हैं। इस प्रकार समाज की धारणाओं का बालक के सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान होता है। अनेक प्रकार की सामाजिक घटनाएं एवं प्रक्रियाएं बालक की मनोदशा पर गहरा प्रभाव डालती है और सीखने की प्रक्रिया को निर्धारित करती हैं।

क्रो एवं क्रो के अनुसार, "कोई समाज व्यर्थ में किसी बात की आशा नहीं कर सकता। यदि वह चाहता है, उसके तरुण व्यक्ति अपने समुदाय को भली–भांति सेवा करें तो उसे उन सब शैक्षिक साधनों को जुटाना चाहिए, जिनकी तरुण व्यक्तियों को व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से आवश्यकता है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि बालक के अधिगम में समाज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। बालक अपने जीवन के प्रारंभिक काल में उसी व्यक्ति से सहभागिता का आदान–प्रदान करता है जिसके प्रति उसके मन में विश्वास उत्पन्न होता है। बालकों के सीखने के संदर्भ में व्यक्तियों को, अभिभावकों को एवं शिक्षकों को अपनी धारणाओं में निम्नलिखित परिवर्तन करना चाहिए–

- बालक की जिज्ञासा एवं इच्छाओं की पूर्ति करते हुए उसका विश्वास जीतने का प्रयास करना चाहिए।
- सीख्ने की प्रक्रिया में बालक के तर्कों को भी स्वीकार किया जाए।
- बालक यदि किसी खेल की विधि से अधिगम करना चाहता है तो उसे उसी विधि से सिखाएं।
- बालक के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाएं जिससे उसके मन को ठेस न पहुंचे और वह एक योग्य नागरिक बन सके।

उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन के आधार पर बालकों के विकास एवं अधिगम में समाज संबंधी धारणाओं को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है–

(i) **शिक्षा के अनौपचारिक साधन** (Informal resources of education)– बालक विभिन्न प्रकार के माध्यमों से शिक्षा प्राप्त कर सकता है। विद्यालय जाने से पूर्व उसका समस्त ज्ञान अनौपचारिक माध्यमों के द्वारा ही होता है। इन अनौपचारिक

माध्यमों के अंतर्गत टी.वी., रेडियो आदि विभिन्न प्रकार के इनडोर तथा आउटडोर गेम आते हैं। इन अनौपचारिक माध्यमों का बालक के विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान होता है।

टिप्पणी

(ii) **कक्षा का भौतिक वातावरण** (Physical environment of class)– कक्षा का भौतिक वातावरण छात्रों के अधिगम को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। भौतिक वातावरण के अंतर्गत प्रकाश, वायु, कक्षा में छात्रों के बैठने का स्थान, फर्नीचर, विद्यालय के आस–पास का वातावरण आदि आते हैं। यदि विद्यालय तथा उसके आस–पास की स्थिति ठीक नहीं रहती है तो छात्रों का मन अधिगम में ठीक से नहीं लगता है और वे थोड़ी देर में ही थकान महसूस करने लगते हैं तथा इन सब बातों से उनके सीखने में बाधा उत्पन्न होती है।

(iii) **वंशानुक्रम** (Inheritance)– वंशानुक्रम का भी बालक के अधिगम पर अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि वंशानुक्रम अच्छा है तो बालकों में भी अच्छे गुणों का विकास होता है। बालकों की 50 प्रतिशत योग्यताएं एवं क्षमताएं उनके वंशानुक्रम की ही देन हैं। बालक को अपने पूर्वजों से जहां एक ओर जैविक वंशानुक्रम की जानकारी प्राप्त होती है वहीं दूसरी ओर उसको अपने पूर्वजों के सामाजिक वंशानुक्रम का भी ज्ञान होता है। इससे बालक को अपने पूर्वजों के आदर्शों पर चलने की प्रेरणा मिलती है।

(iv) **पारिवारिक वातावरण** (Family environment)– बालक के अधिगम पर उसके परिवार के वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि परिवार का माहौल सकारात्मक है तो उससे बालक का विकास और अधिगम की प्रक्रिया बहुत तीव्र हो जाती है। इसके विपरीत यदि परिवार का वातावरण कलह, लड़ाई–झगड़े वाला होता है तो ऐसे में बालक के मस्तिष्क पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वे उदास, दुखी और नकारात्मक हो जाते हैं जिससे उनके अधिगम पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

(v) **व्यक्तित्व का विकास** (Development of personality)– सामाजिक, सांस्कृतिक, वंशानुक्रम तथा पारिवारिक वातावरण आदि के ज्ञान से बालक मानवीय मूल्यों के विकास में रुचि लेने लगता है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति बालक की आस्था उसके सामाजिक विकास में विशेष योगदान देती है। ये समस्त तत्व समग्र रूप से बालक के व्यक्तित्व के विकास में प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह करते हैं।

(vi) **सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण** (Social and cultural environment)– सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का आशय व्यक्ति द्वारा निर्मित उन रीति–रिवाजों, मान्यताओं, आदर्शों, मूल्य, विचार, नियम, विश्वासों एवं भौतिक वस्तुओं की पूर्णता से है जो जीवन को चारों ओर से घेरे रहती है। इन समस्त नियमों एवं आदर्शों का बालक के अधिगम पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि कोई भी समाज अपने आपदर्शों के आधार पर ही संस्थागत शिक्षा प्रणाली की स्थापना करता है।

टिप्पणी

3. संज्ञानात्मक योग्यता

बालकों की संज्ञानात्मक योग्यताओं के संदर्भ में विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने अपने–अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। बालक के संज्ञानात्मक निर्धारण की एक अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक अपने ज्ञान का विभिन्न रूपों में विनिमय करता है। संज्ञानात्मक योग्यता द्वारा सीखने की प्रक्रिया को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

(i) **समरूपता**– समरूपता का तात्पर्य है– वस्तुओं के रूप या आकार में परिवर्तन हो जाने पर भी वे अपने मूल रूप को बनाए रखती हैं। जल की अवस्थाओं के अंतर व समानता को बालक आसानी से समझ सकता है।

(ii) **विकेन्द्रण**– जब बालक विभिन्न वस्तुओं या पदार्थों के विभिन्न अवयवों को एक साथ समझ सके तथा उनमें एकीकरण या तारतम्यता स्थापित कर सके, तब यह अवस्था विकेन्द्रीकरण की अवस्था कहलाती है।

(iii) **क्रमागत क्षमता**– क्रमागत क्षमता से तात्पर्य किसी आंतरिक नियम के अधीन वस्तुओं को एक क्रम में रखने की क्षमता से है। इस क्षमता का सात वर्ष का बालक प्राप्त कर लेता है। पियाजे ने इसे ट्रांजिविटी कहा है।

(iv) **अविनाशिता**– अविनाशिता से यह तात्पर्य है कि किसी वस्तु या पदार्थ के बाह्य रूप, रंग तथा आकार आदि में परिवर्तन होने पर भी उसकी मुख्य विशेषताओं में परिवर्तन नहीं होता, जैसे– बर्फ का विभिन्न अवस्थाओं में रूपांतरण।

4. स्थिर अधिगम और संज्ञानात्मक प्रशिक्षण

संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर पर जहां एक ओर विविध तथ्यों एवं स्थितियों के पृथक्करण का प्रभाव पड़ता है, वहीं अनेक तथ्य ऐसी भी हैं जो कि संज्ञानात्मक विकास एवं स्थिर अधिगम की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। संज्ञानात्मक प्रशिक्षण एवं अधिगम स्थिरता पर निम्नलिखित स्थितियों का प्रभाव पड़ता है।

- छात्रों के लिए रुचिपूर्ण अधिगम गतिविधियां उपलब्ध कराने से छात्रों का संज्ञानात्मक विकास तीव्र गति से होता है। इसके विपरीत स्थिति में विकास मंद गति से होता है।
- शिक्षक के सकारात्मक व्यवहार एवं सुविधादाता की भूमिका के द्वारा संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर में गति उत्पन्न होती है।
- छात्रों के लिए उचित निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था उपलब्ध कराने पर उनका संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर तीव्र रहता है।
- यदि छात्रों को अभिप्रेरणा प्रदान की जाएं तो छात्रों का संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्थाई होता है।
- यदि शिक्षक छात्रों के व्यक्तिगत स्तर पर भी ध्यान दे तो उनका संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर उच्च होता है।
- छात्रों के लिए सृजनात्मक वातावरण उपलब्ध कराने पर उनका संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर तीव्र रहता है।

टिप्पणी

- छात्रों का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्तर उनके संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर को व्यक्तिगत रूप से प्रभावित करता है।
- छात्रों का पारिवारिक स्तर भी उनके संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर पर प्रभाव डालता है।

अतः उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम स्तर को बनाने के लिए अनेक तथ्यों एवं स्थितियों को सकारात्मक बनाना पड़ता है जिनमें विद्यालय, शिक्षक और बालक तीनों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती है।

स्थिर अधिगम और संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में प्रशिक्षण का प्रभाव व्यापक होता है। कुछ बालकों द्वारा इस विकास की प्रक्रिया को तीव्रता के साथ प्रभावी एवं उचित रूप से संपन्न किया जाता है तो कुछ बालकों द्वारा मंद गति से संपन्न किया जाता है। इसका मुख्य आधार व्यक्तिगत योग्यताओं एवं क्षमताओं का होना है। संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में प्रशिक्षण की भूमिका को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

- मानसिक विकास संबंधी प्रशिक्षण।
- समन्वय क्षमता संबंधी प्रशिक्षण।
- चिंतन शक्ति संबंधी प्रशिक्षण।
- ज्ञानेंद्रियों की शक्ति संबंधी प्रशिक्षण।
- बुद्धि संबंधी प्रशिक्षण।
- शारीरिक विकास संबंधी प्रशिक्षण।
- ध्यान संबंधी प्रशिक्षण।
- स्मृति संबंधी प्रशिक्षण।
- संश्लेषण एवं विश्लेषण योग्यता संबंधी प्रशिक्षण।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त व्यक्तिगत क्षमता तथा योग्यता छात्रों के संज्ञानात्मक विकास एवं स्थाई अधिगम को व्यापक रूप से प्रभावित करती है।

5. बहुसंज्ञान

यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें छात्र विभिन्न स्थितियों के बारे में संरचना का विकास करता है और जिसके आधार पर विविध क्षेत्रों में संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया संपन्न होती है। विविध प्रकार के संज्ञानों के आधार पर ही छात्र प्रत्येक तथ्य की व्याख्या करता है। बहुसंज्ञान की प्रक्रिया बालक के जन्म के बाद ही प्रारंभ हो जाती है जिसका पूर्ण विकास किशोरावस्था में होता है। बहुसंज्ञान को कुछ विद्वानों ने निम्न रूप में परिभाषित किया है–

प्रो. एस. के दुबे के मतानुसार, "बहुसंज्ञान का आशय संज्ञानात्मक वैज्ञानिक प्रक्रिया से है जिसमें एक छात्र विविध विचारों एवं व्यवहारों को संगठित रूप प्रदान करता है तथा किसी वस्तु, व्यक्ति, तथ्य एवं घटना के बारे में निश्चित धारणा विकसित

टिप्पणी

करता है। यह धारणा उसको सांसारिक गतिविधियों को समझने में सहायता करती है।"

श्रीमति आर.के. शर्मा के मत में, "बहुसंज्ञान का आशय संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया से है जिसमें छात्र विविध प्रकार के विचारों एवं व्यवहारों को एक निश्चित एवं संगठित रूप प्रदान करके अपना संज्ञानात्मक विकास करता है तथा उसके आधार पर अपने कार्य एवं व्यवहार को नवीन दिशा प्रदान करता है।"

उपर्युक्त तथ्यों एवं परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामान्य रूप से बहुसंज्ञान की अवधारणा एक ऐसे आकार या संरचना की ओर संकेत करती है जो बालक के मन में व्यापक संज्ञानात्मक विकास के लिए बनती है।

शिक्षण–अधिगम को प्रभावित करने वाले ज्ञानात्मक कारक

मानव व्यवहार तीन प्रकार का होता है– ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। शिक्षण की समस्त प्रक्रियाओं का लक्ष्य इन्हीं तीन पक्षों का अधिकतम विकास करना है। अधिगम के भी यही तीन रूप माने जाते हैं। शिक्षण में जिन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है वह तीन प्रकार की होती है–

- ज्ञान के लिए (Knowing) विधियां, जैसे– व्याख्यान आदि।
- करने के लिए (Doing) विधियां, जैसे– प्रयोगात्मक कार्य।
- अनुभूति के लिए (Feeling) विधियां, जैसे– नाटक, चलचित्र आदि।

इस प्रकार शिक्षण में जो क्रियाएं की जाती हैं वे तीन प्रकार की होती हैं जिनका संबंध ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्षों के विकास से होता है। ज्ञानात्मक पक्ष के अधिकतम विकास के लिए स्मृति स्तर तक के शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। शिक्षण के विभिन्न स्तरों के शिक्षण द्वारा अनेक प्रकार की अधिगम परिस्थितियां उत्पन्न की जाती हैं, जिनसे ब्लूम के ज्ञान के उद्देश्य मूल्यांकन अथवा सर्जनात्मक उद्देश्यों तक का विकास किया जाता है।

1.4.1 विषय वस्तु का ज्ञान

शिक्षक का मुख्य कार्य अध्यापन होता है इसलिए अध्यापन कार्य करते समय शिक्षक को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि उसे अपने विषय की पूरी समझ हो। शिक्षक को यदि अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होगा या वह अपने विषय का ज्ञाता होगा तो ऐसा शिक्षक कक्षा में अपने विद्यार्थियों के समक्ष पूर्ण आत्मविश्वास के साथ ज्ञान का प्रचार–प्रसार करेगा और अपने ज्ञान से वह विद्यार्थियों को पूर्णतः संतुष्ट कर सकेगा। ऐसा शिक्षक पाठ्यक्रम में नवीन सुधार करने में भी सक्षम होगा। वह अपने विषय में ज्ञाता होने से विद्यार्थियों की समस्याओं को दैनिक जीवन से संबंधित उदाहरणों के माध्यम से सरल तरीके से विद्यार्थियों को समझा सकता है। कोई भी अध्यापक अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होने पर ही अपने छात्रों को प्रभावित कर सकता है। ज्ञानविहीन शिक्षक न तो छात्रों से सम्मान व आदर प्राप्त कर सकता है और न ही उनके मस्तिष्क का विकास कर सकता है। अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता होने पर ही शिक्षक आत्म–विश्वासपूर्वक छात्रों को नवीन ज्ञान प्रदान करते हुए उनके मस्तिष्क का विकास

कर सकता है। अतः अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होने पर ही शिक्षक छात्रों के ज्ञान में वृद्धि कर सकता है।

1.4.2 तथ्यात्मक ज्ञान

टिप्पणी

वह ज्ञान जिसे आप याद कर सकते हैं, स्मृति में रख सकते हैं और व्याख्या कर सकते हैं तथ्यात्मक ज्ञान कहलाता है। जब शिक्षक परिभाषा सुनता है या कहानी सुनता है या उदाहरण सुनता है तो वह तथ्यात्मक ज्ञान की जांच करता है। गणित के सूत्र याद करना, कठिन शब्द याद करना आदि तथ्यात्मक ज्ञान के उदाहरण हैं।

कक्षा पूर्ण रूप से तथ्यात्मक ज्ञान से भरी होती है। पारंपरिक परीक्षण, लिखित या मौखिक इतिहास रिपोर्ट लेखन सब तथ्यात्मक ज्ञान के उदाहरण हैं। हम विद्यालय में कौन, क्या, कब, कहां आदि प्रश्नों के उत्तर खोजते हैं। इन सभी प्रश्नों के उत्तरों में तथ्यात्मक ज्ञान (Declarative Knowledge) होता है।

ज्ञाता जो जानता है वह कोई तथ्य है, जैसे– 'पदार्थ के तीन रूप होते हैं', यहां पदार्थ के विषय में यह तथ्य है कि पदार्थ के तीन ही रूप होते है। भाषा के माध्यम से इसका वर्णन है और यह तथ्य किसी दावे के रूप में रखा जाता है। इस प्रकार का ज्ञान हिंदी में 'विवरणात्मक ज्ञान' भी कहलाता है। अंग्रेजी में इसे "Knowledge that…" और "factual knowledge" भी कहते हैं। कहीं पर इसे "Propositional Knowledge" भी कहते है। "Proposition" का अर्थ होता है वाक्य में किया गया दावा। हम जानते हैं कि हमारे द्वारा प्रयोग किए जाने वाले सभी वाक्यों में किसी चीज के सत्य या असत्य होने का दावा नहीं होता है। उदाहरणस्वरूप जब हम कहते हैं कि 'इधर आओ' 'बात मत करो' आदि। इन वाक्यों में या तो किसी को आदेश दिया जा रहा होता है या निवेदन होता है। इनमें किसी चीज के सच या झूठ होने का दावा नहीं किया गया है।

तथ्यात्मक ज्ञान होने में हमेशा कोई न कोई दावा होता है, जो भाषा में अभिव्यक्त होता है और जो सत्य या असत्य भी हो सकता है। इन ज्ञान के दावों को एक फॉर्मूला वाक्य से अभिव्यक्त किया जा सकता है–

- प्रकाश जानता है कि पदार्थ के तीन रूप होते हैं
- मैं जानता हूं कि 3 + 4 = 7 होते हैं।
- मैं जानता हूं कि कल सोमवार है।

इसमें, जैसा कि पहले कहा गया है, एक ज्ञाता है। वह चाहे कोई भी हो, उसे हम 'ज्ञ' के सामान्य नाम से इंगित कर सकते है। यदि कोई दावा है तो सभी दावों के लिए हम केवल सामान्य शब्द 'द' लिखकर काम चला सकते है। अतः इस प्रकार से इन वाक्यों का सामान्य रूप यह बनता है–

'ज्ञ' जानता है कि 'द'।

यदि 'ज्ञ' की जगह अलग–अलग ज्ञाता और 'द' की जगह अलग–अलग दावे रखते जाएं तो नए–नए वाक्य बनते जाएंगे। वे सभी वाक्य तथ्यात्मक ज्ञान के दावों को अभिव्यक्त करेंगे।

अतः कहा जा सकता है कि तथ्यात्मक वाक्य होने के लिए किसी भी दावे का भाषा में बंधा होना आवश्यक है। ऐसे दावों को किसी के समक्ष अभिव्यक्त भी किया जा

टिप्पणी

सकता है किंतु यह जरूरी नहीं कि अभिव्यक्त ही किया जाए। तथ्यात्मक ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि उसे भाषा में संजोया या अभिव्यक्त किया जाए। जैसे– मान लीजिए, मन में यह विचार किया जाए और किसी ने न कहा जाए कि, 'सूरज निकल आया है'। यदि मन में भी इसे वाक्य के रूप में संजो लिया गया है तो इसे वाक्य में अभिव्यक्त दावा ही माना जाएगा। अतः यह तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में आ जाएगा।

1.4.3 प्रक्रियात्मक ज्ञान

आप क्या कर सकते हैं इस प्रश्न का उत्तर प्रक्रियात्मक ज्ञान (Procedural Knowledge) देता है। प्रक्रियात्मक ज्ञान किसी व्यक्ति को कार्य करने की क्षमता को दर्शाता है। गणित के सवाल हल करना, इतिहास पर आधारित खेल में भाग लेना आदि प्रक्रियात्मक ज्ञान के उदाहरण हैं। यह किसी कार्य के प्रदर्शन में प्रयोग किया जाने वाला ज्ञान है। यह ज्ञान वर्णनात्मक ज्ञान के विपरीत घोषणात्मक ज्ञान के रूप में भी जाना जाता है, जिसमें विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान शामिल होता है। उदाहरणस्वरूप, जैसे– 'मुझे पता है कि बर्फ सफेद है' प्रक्रियात्मक ज्ञान में कुछ करने की क्षमता शामिल होती है, जैसे– 'मुझे पता है कि एक सपाट टायर को कैसे बदलना है।' एक व्यक्ति को मौखिक रूप से ज्ञान के रूप में गिनने के लिए स्वयं के प्रक्रियात्मक ज्ञान को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में सक्षम होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रक्रियात्मक ज्ञान में केवल यह जानना आवश्यक है कि कौशल का उपयोग कैसे किया जाए अथवा किसी क्रिया को सही ढंग से कैसे संपन्न किया जाए। प्रक्रियात्मक ज्ञान को अनिवार्य ज्ञान भी कहते हैं अर्थात वह ज्ञान जिसे किसी कार्य के निष्पादन में प्रयोग में लाया जाता है। प्रक्रियात्मक ज्ञान अधिगम में अपेक्षित रहता है। प्रक्रियात्मक ज्ञान में कुछ क्रियाएं प्राथमिक रूप से, कुछ मानसिक क्षेत्र से तथा कुछ शारीरिक क्षेत्र से संबंधित होती हैं। प्रक्रियात्मक ज्ञान में कुछ क्रियाएं प्राथमिक रूप से, कुछ मानसिक क्षेत्र से तथा कुछ शारीरिक क्षेत्र से संबंधित होती हैं। प्रक्रियात्मक ज्ञान में अधिगम श्रेणीबद्ध सोपानों में होता है जैसे– पहले कोई कार्य, उसके बाद दूसरा, उसके बाद तीसरा, चौथा आदि। इसी कारण से प्रक्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया जटिल मानी जाती है।

1.4.4 अधिगम परिस्थितियां ज्ञान के लिए मूल आधार

रॉबर्ट गेने (1965) के मतानुसार अधिगम की व्याख्या साधारण सिद्धांतों से नहीं की जा सकती है। उनका तर्क है कि अधिगम के स्वरूप के संबंध में सामान्यीकरण उन अधिगम परिस्थितियों के निरीक्षण के आधार पर ही किया जा सकता है जिन परिस्थितियों में अधिगम होता है। गेने की धारणा है कि साधारण व्यवहार के लिए कुछ पूर्व आवश्यकताओं का निर्धारण करना आवश्यक होता है, जैसे बोध स्तर के शिक्षण के लिए स्मृति का शिक्षण पूर्व आवश्यकता होती है। गेने ने शिक्षण की परिभाषा देते हुए कहा है–

"छात्र के लिए बाह्य रूप में अधिगम परिस्थितियों की व्यवस्था करना ही शिक्षण होता है। इन अधिगम परिस्थितियों की व्याख्या में स्तरीकरण किया जाता है। प्रत्येक अधिगम परिस्थिति के लिए उनकी पूर्व परिस्थिति छात्र के लिए आवश्यक होती है, जिससे धारण शक्ति विकसित होती है।"

रॉबर्ट गेने ने आठ प्रकार की अधिगम परिस्थितियों की व्याख्या की है। इनके मौलिक रूप को अधिगम सिद्धांतों से लिया गया है। ये आठ अधिगम परिस्थितियां निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. **संकेत अधिगम**– यह परिस्थिति की अनुबद्ध–अनुक्रिया का रूप है। इसमें प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक उद्दीपन को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें एक ही अनुक्रिया का अभ्यास कराया जाता है। अप्राकृतिक उद्दीपन से अप्राकृतिक अनुक्रिया होती है। पावलव के प्रयोग में घण्टी के बजने से कुत्ते की लार गिरने लगती है जबकि घण्टी तथा खाने को उसके सामने एक साथ प्रस्तुत किया गया था। यहां घण्टी संकेत का कार्य करती है। छोटे बालकों के अक्षर ज्ञान में संकेत अधिगम परिस्थिति को उतपन्न किया जाता है। जैसे– 'क' अक्षर का ज्ञान कराने के लिए कबूतर का चित्र तथा 'ख' अक्षर का ज्ञान कराने के लिए खरगोश का चित्र प्रस्तुत करना।
2. **उद्दीपन अनुक्रिया अधिगम**– यह अधिगम परिस्थिति स्किनर की सक्रिय अनुबद्ध अनुक्रिया का रूप है। थॉर्नडाइक का त्रुटि एवं प्रयास भी इसी प्रकार का अधिगम है। इसमें अनुक्रिया पुनर्बलन का कार्य करती है। जब किसी परिस्थिति में शिक्षार्थी अनुक्रिया करता है और शुद्धता की पुष्टि की जाती है तब उससे छात्र को आगामी अनुक्रिया के लिए पुनर्बलन मिलता है। शिक्षण में ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाता है जिससे छात्र अनुक्रिया करते हैं और उसकी पुष्टि की जाती है। अभिक्रमित–अनुदेशन में इसी प्रकार की अधिगम परिस्थिति उत्पन्न की जाती है। स्मृति स्तर पर शिक्षण व्यवस्था द्वारा भी इस प्रकार की अधिगम परिस्थिति उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार के अधिगम से बच्चों को शाब्दिक दक्षताएं सिखाई जा सकती हैं।
3. **तृतीय–शृंखला अधिगम**– इस प्रकार के अधिगम के लिए उद्दीपन अनुक्रिया आवश्यक है। इस प्रकार के अधिगम की स्किनर तथा गिलफोर्ड ने व्याख्या की है। रॉबर्ट गेने ने दो प्रकार के शृंखला अधिगम का उल्लेख किया है– शाब्दिक तथा अशाब्दिक। शाब्दिक शृंखला अधिगम में शिक्षक पाठ्यवस्तु को एक क्रम में प्रस्तुत करता है जिससे स्थानांतरण में सुगमता होती है। अशाब्दिक शृंखला अधिगम में चित्रों या अन्य दृश्य साधनों को क्रमानुसार प्रस्तुत किया जाता है, जैसे– किसी के भ्रूण से वयस्क तक के विकास की अवस्थाओं को चित्रों के माध्यम से क्रम में प्रस्तुत करना।
4. **शाब्दिक साहचर्य साहचर्य अधिगम**– इस प्रकार की अधिगम परिस्थिति में शाब्दिक अनुक्रिया क्रम की व्यवस्था की जाती है। अधिक जटिल शाब्दिक शृंखला के लिए व्यवस्था क्रम एक संकेत का कार्य करती है। शाब्दिक इकाई को सीखने के लिए उसके पूर्व की इकाई सहायता प्रदान करती है। इस प्रकार के अधिगम को भाषा शिक्षण में प्रयोग किया जाता है। इसे मानव–अधिगम में ही प्रस्तुत कर सकते हैं। अण्डरवुड ने इस अधिगम परिस्थिति को अधिक महत्व दिया है।

टिप्पणी

5. **बहुभेदीय या विभेदी अधिगम**– इस अधिगम प्रक्रिया के लिए शाब्दिक तथा अशाब्दिक शृंखला अधिगम की आवश्यकता होती है। इसमें दो शृंखलाओं में विभेदीकरण की क्षमताओं का विकास किया जाता है। इस स्तर पर विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के उद्दीपनों के साथ विभिन्न अनुक्रियाएं कर सकता है जबकि दोनों उद्दीपन मौलिक रूप में समान प्रतीत होते हैं। इसके लिए बोध स्तर शिक्षण उपयुक्त होता है।

6. **प्रत्यय अधिगम**– इस अधिगम प्रक्रिया के लिए बहुभेदीय अधिगम आवश्यक होता है। केण्डलर (1964) ने प्रत्यय–अधिगम परिस्थिति पर अधिक बल दिया है। इस अधिगम में छात्रों में ऐसी क्षमताओं का विकास होता है कि वह समस्त उद्दीपनों के समूह के लिए अनुक्रिया का निर्धारण कर लेते हैं। बोध स्तर पर शिक्षण व्यवस्था द्वारा प्रत्यय अधिगम परिस्थिति उत्पन्न की जाती है।

   इस स्तर की अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी सर्वप्रथम किन्हीं पदार्थों की अनुभूति करता है, इसके पश्चात उनके गुणों का विश्लेषण करता है, उनके सामान्य गुणों को पहचानता है और इन सामान्य गुणों के आधार पर अन्य पदार्थों से उनका वर्गीकरण करता है।

7. **अधिनियम अधिगम**– अधिनियम या सिद्धांत अधिगम दो या अधिक प्रत्ययों की शृंखला से उत्पन्न होता है। इसमें व्यवहार का नियंत्रण इस प्रकार किया जाता है कि विद्यार्थी प्रत्ययों के आपसी संबंध का नियम के द्वारा शब्दों में कह सकें। इसके लिए प्रत्यय अधिगम की पूर्व आवश्यकता होती है। शिक्षण व्यवस्था चिंतन स्तर पर की जाती है।

8. **समस्या–समाधान–अधिगम**– इस अधिगम के लिए अधिनियम अधिगम की पूर्व आवश्यकता होती है। इसके अंतर्गत केवल अधिनियमों का प्रयोग ही नहीं होता है अपितु छात्र को अपनी मौलिकता या सृजनात्मकता का प्रयोग भी करना पड़ता है। नियमों का अधिगम होने पर ही वह समस्या के समाधान में समर्थ हो सकता है। इस प्रकार के अधिगम स्वरूपों के लिए चिंतन स्तर का शिक्षण ही उपयुक्त होता है।

   जब किसी विद्यार्थी के सामने विषयवस्तु को समस्यात्मक परिस्थिति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तब विद्यार्थी समस्या का अनुभव करता है, फिर उसे प्रभावित करने वाले कारकों पर विचार करता है, उसके समाधान के लिए परीक्षण करता है और अंत में निष्कर्ष पर पहुंचकर सामान्यीकरण करता है। यह समस्या–समाधान सीखने की सर्वोत्तम सीढ़ी है।

   अतः गेने ने इस अधिगम के क्रम का व्यावहारिक बनाने के लिए शिक्षण तथा अनुदेशन में मनोवैज्ञानिक शक्तियों का एक विशिष्ट क्रम प्रस्तुत किया है।

1.4.5 ज्ञान प्राप्ति के सामान्य सिद्धांत एवं शिक्षण युक्तियां

ज्ञान का मानव जीवन के लिए बहुत अधिक महत्व है। ज्ञान के द्वारा ही मानव की मानसिक, बौद्धिक, निरीक्षण, कल्पना व तर्क आदि शक्तियों का विकास होता है।

ज्ञान प्राप्ति में अधिगम को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. **बुद्धि** (Inteligence) – ज्ञान प्राप्ति में बालक के अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों में बुद्धि भी एक मुख्य कारक है। तीव्र बुद्धि वाला बालक मंदबुद्धि बालक की अपेक्षा किसी भी कार्य को शीघ्रता से सीखता है। बुद्धि एवं शैक्षिक लब्धि के मध्य उच्च स्तर का सकारात्मक संबंध पाया जाता है।

2. **वातावरण** (Environment)– ज्ञान प्राप्ति के लिए परिवार, समाज, कक्षा और पाठशाला का उचित वातावरण होना अत्यंत आवश्यक है। परिवार और स्कूल में बालक के साथ स्नेहपूर्ण तथा पक्षपातरहित व्यवहार करना चाहिए ताकि उसमें अधिगम के प्रति उत्साह बना रहे। कक्षा में प्रकाश व वायु का अभाव, अत्यधिक शोर तथा अमनोवैज्ञानिक वातावरण से बालक थकान का अनुभव करता है। फलस्वरूप उसके अधिगम में रूकावट पैदा हो जाती है। बालकों के प्रति सहयोगात्मक रवैया होना चाहिए और उन्हें रुचि प्रदर्शन के उचित अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे कि अधिगम की प्रक्रिया को बल मिल सके।

3. **शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य** (Physical and Mental Health)– शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ बालक अधिगम प्रक्रिया में अधिक रुचि लेता है। इसके विपरीत जिस बालक में शारीरिक व मानसिक विकार पाए जाते हैं वह असमर्थता के कारण अध्ययन में जल्दी थकान का अनुभव करने लग जाता है। अतः कहा जा सकता है कि प्रभावी एवं शीघ्र अधिगम के लिए स्वास्थ्य का अच्छा होना अति आवश्यक है।

4. **विषय–सामग्री और उसका स्वरूप** (Subject matter and its nature)– यदि किसी विषय की अध्ययन सामग्री सरल और रुचिकर होगी तो बालक उसे सरलता से ग्रहण करेंगे। कठिन एवं अर्थहीन विषय–सामग्री का अधिगम पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः आसानी से सीखने के लिए पाठ्यक्रम के निर्माण में सरल से कठिन की ओर सिद्धांत का पालन करना चाहिए।

5. **परिपक्वता** (Maturity)– परिपक्वता सीखने में अहम भूमिका प्रदान करती है। अधिगम शारीरिक और मानसिक परिपक्वता पर ही निर्भर रहता है। शारीरिक और मानसिक रूप से परिपक्व बालक सीखने के लिए सदैव उत्सुक एवं तत्पर रहते हैं। ऐसे बालकों का अधिगम तीव्र होता है। इसके विपरीत शारीरिक और मानसिक रूप से अपरिपक्व बालक में सीखने की क्षमता धीमी होती है। इस प्रकार के बालकों को सीखने के लिए अत्यधिक समय और शक्ति का इस्तेमाल करना पड़ता है फिर भी उपयुक्त परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। परिपक्वता एवं अधिगम दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं। अतः इनको अलग करना बहुत ही कठिन है।

6. **अभिप्रेरणा** (Motivation)– अधिगम में प्रेरणा की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। अभिप्रेरणा वह शक्ति है जो व्यक्ति को अपने उद्देश्य तक ले जाती है। अभिप्रेरणा सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाती है। यदि प्रेरणा शक्तिशाली हो तो बालक अध्ययन में रुचि लेते हैं। नवीन जानकारी को स्थायी तौर पर ग्रहण करने के लिए अध्यापक को शिक्षण प्रक्रिया में बालकों को अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

टिप्पणी

7. **सीखने की विधि** (Method of Learning)– शैक्षिक प्रक्रिया में प्रयुक्त अध्ययन विधि और अधिगम में भी सीधा संबंध होता है। सीखने की विधि अनुकूल और रुचिकर होगी तो सीखना काफी सरल होगा। शिक्षक को प्रभावी अधिगम के लिए परंपरागत विधियों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक विधियों को अपनाना चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं के लिए खेल विधि और उच्चतर कक्षाओं के लिए योजना व सामूहिक विधि अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

8. **समय एवं थकान** (Time and Fatigue)– प्रातःकाल के समय बालक में स्फूर्ति रहती है। अतः अधिगम सरल व शीघ्र होता है। जैसे–जैसे दिन बढ़ता है वह थकान का अनुभव करने लगता है। फलस्वरूप सीखने की क्रिया मंद पड़ने लगती है। थकान दूर होने से बालक पुनः स्वस्थ अनुभव करता है और कार्य करने के लिए शारीरिक व मानसिक दृष्टि से तैयार हो जाता है।

9. **अभिक्षमता** (Aptitude)– यह एक जन्मजात प्रतिभा होती है जिसे अवसरों एवं प्रशिक्षण द्वारा विकसित किया जा सकता है। सभी व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न प्रकार की अभिक्षमता होती है– कलात्मक, संगीतात्मक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि। जिस बालक में जो अभिक्षमता जितनी अधिक तीव्रता के साथ मौजूद होगी, वह उस प्रकार के अधिगम को उतनी ही तेज गति से सीख सकेगा।

10. **वंशानुक्रम** (Inheritance)– बालकों में अनेक गुण एवं क्षमताएं उनके वंशानुक्रम की देन होती है। बालक के अधिगम पर इन वंशानुक्रम की विशेषताओं का प्रभाव पड़ता है अर्थात् वंशानुक्रम की विशेषताएं भी अधिगम को प्रभावित करती हैं।

11. **अध्यापक की भूमिका** (Role of Teacher)– अधिगम तब तक प्रभावशाली ढंग से काम नहीं कर सकता जब तक अध्यापक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन नहीं करता। अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक का स्थान सर्वोपरि होता है। वह अपने अर्जित ज्ञान एवं अनुभवों से बालक को अध्ययन के लिए निरंतर क्रियाशील रख सकता है। वह बालक में ज्ञान का अधिगम कराने के लिए उचित वातावरण तैयार करता है। अध्यापक की योग्यता, व्यक्तित्व व आचरण आदि अधिगम को प्रभावित करते हैं। योग्य, गुणवान और प्रभावशाली अध्यापक की कक्षा में छात्र सदैव रुचि दिखाते हैं। इस प्रकार अध्यापक का शैक्षणिक स्तर जितना अच्छा होगा अधिगम उतना ही सरल होगा।

12. **सीखने की इच्छा** (Desire of Learning)– सीखने की इच्छा रखने अधिगम का एक अनिवार्य घटक है। यदि बालक सीखने के लिए अधिक क्रियाशील रहता है तो अधिगम अधिक प्रभावी होता है। अध्यापक को शिक्षण प्रक्रिया के दौरान बालक की इच्छा शक्ति को बढ़ाते हुए पाठ के विकास में छात्र का सहयोग लेना चाहिए ताकि वह क्रियाशील बना रहे। अपने शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अध्यापक को छात्र में रुचि एवं जिज्ञासा को जाग्रत करते रहना चाहिए।

अतः इस प्रकार से ये सभी कारक ज्ञान प्राप्ति में अधिगम को प्रभावित करते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. मानव व्यवहार में निम्न में से किसका समावेश होता है?

   (क) ज्ञानात्मक (ख) भावात्मक

   (ग) प्रक्रियात्मक (घ) उपर्युक्त सभी

6. रॉबर्ट गेने ने कितने प्रकार की अधिगम परिस्थितियों की व्याख्या की है?

   (क) चार (ख) छह

   (ग) आठ (घ) दस

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (घ)
4. (ख)
5. (घ)
6. (ग)

1.6 सारांश

अधिगम (सीखना) एक व्यापक शब्द है। यह जन्मजाति प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। व्यक्ति अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों से होकर जो क्रिया करता है उसके फलस्वरूप वह किसी नवीन परिस्थिति के सम्पर्क में आता है। जब वह पुराने अनुभवों के आधार पर इस नवीन परिस्थिति द्वारा अपनी प्रवृत्तियों को संतुष्ट नहीं कर पाता है तो वह इस परिस्थिति के साथ समायोजन करने का प्रयत्न करता है।

सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवनपर्यन्त चलती रहती है। व्यक्ति जन्म के समय से ही माता–पिता भाई–बहन तथा परिवार के अन्य सदस्यों से सीखना आरम्भ करता है और वह जीवनभर विभिन्न सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं, संगी–साथी, विद्यालय, अन्य व्यक्तियों आदि से कुछ न कुछ सीखता रहता है।

सीखना अथवा अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ–साथ सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जो न केवल विद्यालयी जीवन तक सीमित है बल्कि सामाजिक जीवन में भी चलती रहती है। यह सीखना नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अधिगम अथवा सीखने से समायोजन में सहायता मिलती है।

अधिगम व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है और इस व्यवहार परिवर्तन का प्रमुख आधार अनुभव है, अर्थात् अनुभव के आधार पर सीखी गई कोई भी चीज हमारे मस्तिष्क में स्थाई स्थान बना लेती है। इसीलिए अधिगम के आधार

टिप्पणी

के रूप में अनुभव को प्राथमिकता दी जाती है। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन है।

अभिवृत्ति का शाब्दिक अर्थ है, विशेष वृत्ति। अर्थात मन की वह विशेष वृत्तियां जो किसी व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति, संस्था या विचार के प्रति हमारे आचरण का स्वरूप निर्धारित करती हैं, जिसके कारण हम इन वस्तुओं के प्रति अपनी कोई विशेष धारणा या विचार बना लेते हैं, अभिवृत्ति कहलाती है।

शरीर तंत्र के सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध विकास के फलस्वरूप बालक में भावना के अंकुर फूटते है। साधारण तथा किसी वस्तु या क्रिया से बच्चे को बहुत समय तक संतोष प्राप्त होता रहे तो उस वस्तु अथवा किया के प्रति बच्चे के मन में एक सकारात्मक भावना उत्पन्न हो जाती है। जिसे बच्चे ने मां के स्तन से या बोतल से दूध पीने में आनन्द अनुभव किया है, वह दूसरी चीजे खाने में भी वैसा ही आनन्द अनुभव करने की आशा पहले से ही करता है।

व्यापकता का ज्ञान, किसी व्यक्ति की अभिवृत्तियों के विभिन्न प्रकारों के व्यापक सर्वेक्षण से होता है। कुछ अभिवृत्तियों के प्रभाव व्यापक तथा स्थायी होते हैं ये अभिवृत्तियों, विविध प्रकार की ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं, जो भावनाओं को उस समय तक बल प्रदान करती रहती हैं, जब तक कि वे सामान्यता का रूप न धारण कर ले।

बुद्धि और अभियोग्यता के होते हुए भी यदि छात्र में कक्षा कार्य के प्रति उत्तम अभिवृत्तियों का अभाव है, तो अधिगम की मात्रा निश्चित रूप से कम होगी। विषय के प्रति अभिवृत्ति छात्रों को सीखने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करती है। शिक्षक संगी–साथियों, विद्यालय, कक्षा क्रियाओं व पढ़ाये जाने वाले विविध विषयों के प्रति अच्छी अभिवृत्तियां शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होती है।

अधिगम की प्रक्रिया को बालक की शारीरिक एवं मानसिक परिपक्वता अधिक प्रभावी बनाती है। छोटी कक्षाओं में बालक की मांस–पेशियों को मजबूत बनाने की ओर ध्यान दिया जाता है ताकि वे कलम, किताब आदि को पकड़ना सीख जायें।

छात्र जाने–अनजाने शिक्षक के व्यवहार से बहुत–सी बातें स्वयं ही सीख लेते हैं। कहा भी गया है कि शिक्षक छात्रों के लिये श्रेष्ठ प्रेरणा का काम करता है। इस दृष्टि से एक अध्यापक को आत्मविश्वासी, दृढ़–इच्छा शक्ति वाला कर्त्तव्यनिष्ठ, निरोगी, श्रेष्ठ रुचियों एवं अभिरुचियों वाला होना चाहिए।

अधिगम संबंधी कठिनाई, श्रवण दृष्टि स्वास्थ्य, वाक् एवं संवेग आदि से संबंधित अस्थाई समस्याओं से जुड़ी होती है। समस्या का समाधान होते ही अधिगम संबंधी वह कठिनाई समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत अधिगम अक्षमता उस स्थिति को कहते हैं जहां व्यक्ति की योग्यता और उपलब्धि में एक स्पष्ट अंतर हो। यह अंतर संभवतः स्नायुजनित होता है और यह व्यक्ति विशेष में आजीवन विद्यमान रहता है।

डिस्ग्राफिया अधिगम अक्षमता का वो प्रकार है जो लेखन क्षमता को प्रभावित करता है। यह वर्तनी संबंधी कठिनाई खराब हस्तलेखन एवं अपने विचारों को लिपिबद्ध करने में कठिनाई के रूप में जाना जाता है।

टिप्पणी

विशेष शिक्षा एक जटिल व्यवस्था है जो दिव्यांग बालकों के विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निर्मित है। प्रारंभ में सभी देशों और समाजों में यह माना जाता था कि दिव्यांग बालक अपनी अक्षमता के कारण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते हैं, इसलिए सामान्य विद्यालयों में उनके प्रवेश को लगभग मना ही कर दिया जाता था।

समेकीकरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसमें दिव्यांग बालकों को नियमित विद्यालयों और कक्षाओं में शामिल करवाकर मुख्यधारा में लाया जाता है। इसमें विशेष आवश्यकता वाले बालकों को नियमित कक्षा में सामान्य बालक के साथ जोड़े में पढ़ना होता है और विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संसाधन कक्ष में शिक्षक सहयोगी सहायता देते हैं।

समावेशी शिक्षा से हमारा अभिप्राय वैसी शिक्षा व्यवस्था से है जिसमें सभी छात्रों को बिना किसी भेदभाव के सीखने तथा सीखाने के समान अवसर मिलते हैं। समावेशी शिक्षा की अवधारणा वास्तव में इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बालकों के विद्यालय शिक्षा में समावेशन तथा उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ इस हद तक आवश्यक है कि उन्हें क्षेत्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेष तथा विस्तृत सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं दोनों में ही संदर्भित करके समझा जा सके।

शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रियाएं दोनों एक साथ होती हैं। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रक्रिया का संचालन करना है। शिक्षण का मुख्य कार्य अधिगम की समुचित परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है जिससे छात्र अनुभव द्वारा क्रियाएं करते हैं और अधिगम करते हुए नवीन ज्ञात की प्राप्ति होती है।

ज्ञान के निर्माण में प्रयोज्य अधिगम करते समय कुछ विभिन्न प्रत्ययों का अधिगम करता है जिनके द्वारा वह समस्याओं का समाधान करता है। इसके साथ ही वह कुछ अन्य प्रत्ययों के संबंध में सूचनाएं एकत्रित करता है जिनकी सहायता से वह वर्तमान समय से संबंधित समस्याओं का अध्ययन करता है।

बहुसंज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें छात्र विभिन्न स्थितियों के बारे में संरचना का विकास करता है और जिसके आधार पर विविध क्षेत्रों में संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया संपन्न होती है। विविध प्रकार के संज्ञानों के आधार पर ही छात्र प्रत्येक तथ्य की व्याख्या करता है। बहुसंज्ञान की प्रक्रिया बालक के जन्म के बाद ही प्रारंभ हो जाती है जिसका पूर्ण विकास किशोरावस्था में होता है।

शिक्षक का मुख्य कार्य अध्यापन होता है इसलिए अध्यापन कार्य करते समय शिक्षक को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि उसे अपने विषय की पूरी समझ हो। शिक्षक को यदि अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होगा या वह अपने विषय का ज्ञाता होगा तो ऐसा शिक्षक कक्षा में अपने विद्यार्थियों के समक्ष पूर्ण आत्मविश्वास के साथ ज्ञान का प्रचार–प्रसार करेगा और अपने ज्ञान से वह विद्यार्थियों को पूर्णतः संतुष्ट कर सकेगा।

टिप्पणी

1.7 मुख्य शब्दावली

- **अधिगम** – अधिगम एक अनुभव है जिसके द्वारा कार्य में परिवर्तन या समायोजन होता है तथा व्यवहार की नवीन विधि प्राप्त होती है।
- **अभिवृत्ति** – अभिवृत्ति किसी विशिष्ट प्रकरण के प्रति मनुष्य की भावनाओं, पूर्वाग्रहों एवं धारणाओं, विचारों, भय एवं दृढ़ विश्वासों के समग्र रूप को प्रदर्शित करती है।
- **अभिप्रेरणा** – अभिप्रेरणा एक संक्रिया है, जो जीव को क्रिया के प्रति उत्तेजित तथा सक्रिय करती है।
- **सक्रिय विधि** – सक्रिय विधि के अंतर्गत विद्यार्थी किसी पाठ्य वस्तु को जोर–जोर से या धीमे–धीमे बोलकर कंठस्थ करने का प्रयास करता है।
- **निष्क्रिय विधि** – इस विधि के अंतर्गत विद्यार्थी पाठ्य वस्तु को मन ही मन पढ़कर कंठस्थ करने का प्रयास करता है।

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अधिगम से क्या तात्पर्य है? इसकी प्रकृति को संक्षेप में समझाइए।
2. अभिवृत्ति से आप क्या समझते हैं? यह किस दृष्टि से महत्वपूर्ण है?
3. अधिगम अक्षमता के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
4. अधिगम अक्षमता तथा मानसिक मंदता में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. विशिष्ट तथा समावेशी शिक्षा से क्या तात्पर्य है?
6. अनुभवात्मक अधिगम बालक के जीवन पर किन रूपों में परिलक्षित होती है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अधिगम को समझाते हुए इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. अधिगम को प्रभावित करने वाली अभिवृत्ति और कारकों का उल्लेख कीजिए।
3. अधिगम अक्षमता की प्रकृति एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. विशिष्ट शिक्षा तथा समावेशी के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. समावेशी शिक्षा की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
6. विशिष्ट शिक्षा की कौन–सी कमियों को पूरा करने के लिए समावेशी शिक्षा अस्तित्व में आई है?
7. ज्ञान–प्राप्ति में अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

ओर्मरॉड, जीन एलिस, *ह्यूमैन लर्निंग : थिअरीज, प्रिंसिप्ल्स एंड एजुकेशन ऐप्लिकेशंस,* न्यू यॉर्क : मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी।

सैंट्रॉक, जॉन डब्ल्यू., 2001, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* न्यू यॉर्क : मैकग्रॉ हिल्स।

अनीता ई., 1998, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* मेसाच्युसेट्स : एलिन एंड बेकन।

ड्रिस्कॉल, एम.पी., 2005, *साइकॉलॉजी ऑफ लर्निंग फॉर इन्स्ट्रक्शन,* टोरंटो : पीयर्सन।

टिप्पणी

इकाई 2 अधिगम के दृष्टिकोण

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय

2.1 उद्देश्य

2.2 अधिगम के संज्ञानात्मक और व्यवहारवादी विचार

- 2.2.1 अधिगम के संज्ञानात्मक विचार
- 2.2.2 अधिगम के व्यवहारवादी विचार
- 2.2.3 अंतर्दृष्टि का सिद्धांत और इसका महत्व

2.3 पियाजे का ज्ञान क्रिया अधिगम का रचनावादी दृष्टिकोण एवं वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद

- 2.3.1 पियाजे का ज्ञान का रचनावादी दृष्टिकोण
- 2.3.2 वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद

2.4 अधिगम के बारे में ब्रूनर और गेने के विचार

- 2.4.1 अधिगम के बारे में ब्रूनर के विचार
- 2.4.2 अधिगम के बारे में गेने के विचार

2.5 स्मृति, विस्मृति, विस्मृति के सिद्धांत, दीर्घ और अल्पकालिक स्मृति

- 2.5.1 स्मृति
- 2.5.2 विस्मृति या विस्मरण
- 2.5.3 विस्मृति या विस्मरण के सिद्धांत
- 2.5.4 अल्पकालिक और दीर्घ स्मृति

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 मुख्य शब्दावली

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

सीखना (सीखना) एक व्यापक शब्द है। यह जन्मजात प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। व्यक्ति अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जो क्रिया करता है उसके फलस्वरूप वह किसी नवीन परिस्थिति के सम्पर्क में आता है। जब वह अपने पुराने अनुभवों के आधार पर इस नवीन परिस्थिति द्वारा अपनी प्रवृत्तियों को संतुष्ट नहीं कर पाता है तो वह इस परिस्थिति के साथ समायोजन करने का प्रयास करता है।

परिणामतः वह अपने इन व्यवहारों को छोड़ देता है जो उक्त परिस्थिति के अनुकूल नहीं हैं और नवीन परिस्थिति के अनुकूल व्यवहारों को अपनाने लगता है। इस प्रकार उसके व्यवहार में अनुभव के आधार पर परिवर्तन आने लगता है। नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया ही अधिगम है। व्यवहार में किसी प्रकार के परिवर्तन के जो कि अनुभव का परिणाम है और जो व्यक्ति को आने वाली परिस्थिति का भिन्न प्रकार से मुकाबला करने के लिए तैयार करता है उसे ही सीखना (अधिगम) कहा जाता है।

अधिगम पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। शिक्षार्थी, शिक्षक, पाठ्यवस्तु, अधिगम व्यवस्था, वातावरण इत्यादि से सम्बन्धित अनेक कारक अधिगम की मात्रा, स्वरूप एवं गति के रूप में उत्तरदायी होते हैं।

टिप्पणी

मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया को जानने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने पशुओं तथा जानवरों पर अनेक उद्योग प्रयोग किये हैं और इन प्रयोगों से प्राप्त तथ्यों को आधार बनाकर कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन्हें ही अधिगम के सिद्धान्त कहा जाता है।

रचनावादी परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत शिक्षार्थी अपने साथ पूर्व के अनुभव लाता है। वह किसी परिस्थिति के सांस्कृतिक तत्व तथा पूर्व ज्ञान के आधार पर स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है। रचनावादी परिप्रेक्ष्य में शिक्षार्थियों के समालोचनात्मक चिंतन व अभिप्रेरणा को विकसित करके उन्हें स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में परिवर्तित किए जाने पर जोर दिया जाता है। रचनावादी परिप्रेक्ष्य में शिक्षण युक्तियां व गतिविधियां अधिगम प्रक्रिया पर आधारित होती हैं।

प्रस्तुत इकाई में अधिगम के दृष्टिकोणों के अंतर्गत संज्ञानात्मक एवं व्यवहारवादी विचार, पियाजे व वाईगोत्सकी के रचनावादी सिद्धांत, ब्रूनर व गेने के विचार तथा स्मृति, विस्मृति आदि सिद्धांतों का अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अधिगम के संज्ञानात्मक एवं व्यवहारवादी सिद्धांतों को समझ पाएंगे;
- पियाजे के रचनावादी दृष्टिकोण की समीक्षा कर पाएंगे;
- वाईगोत्सकी के सामाजिक रचनावाद सिद्धांत का विश्लेषण कर पाएंगे;
- अधिगम के बारे में ब्रूनर और गेने के विचारों से अवगत हो पाएंगे;
- स्मृति, विस्मृति के सिद्धांतों की व्याख्या कर पाएंगे।

2.2 अधिगम के संज्ञानात्मक और व्यवहारवादी विचार

विभिन्न अनुसंधानों के माध्यम से विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की प्रक्रिया का गहनता से अध्ययन किया है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा जो निष्कर्ष निकाले हैं और अधिगम की प्रक्रिया के विषय में जो संगठित विचार प्रस्तुत किये हैं, उन्हें ही अधिगम के सिद्धान्त कहा जाता है।

2.2.1 अधिगम के संज्ञानात्मक विचार

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे को संज्ञानात्मक विचारधारा के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है, जिनके संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत ने मनोविज्ञान एवं अधिगम के प्रति व्यवहारवादी विचारधारा को चुनौती देकर उससे भिन्न मनोविज्ञान में संज्ञानवादी विचारधारा की नींव रखी। जीन पियाजे ने व्यवहारवादी मान्यता कि 'बालक केवल वातावरण से सीखता है' की बजाय यह स्वीकार किया कि बालक के अधिगम में वातावरण के साथ–साथ उसकी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का भी योगदान होता है।

टिप्पणी

अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धांत के अन्तर्गत निम्नलिखित सिद्धान्तों को शामिल किया जा सकता है–

1. कर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त
2. ऑसुबैल के सीखने का सिद्धान्त
3. टॉलमैन का चिन्ह–गेस्टाल्ट सिद्धान्त

1. कर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त (Kurt Levin's field Theory)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कर्ट लेविन हैं। कोहलर और कोफका के साथ कार्य करने के पश्चात् लेविन जर्मनी छोड़कर अमेरिका चले गये। उनका सिद्धान्त सीखने के ज्ञानात्मक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आता है। कर्ट लेविन के क्षेत्रीय सिद्धान्त का विकास सीखने के सिद्धान्त के रूप में नहीं हुआ है बल्कि उसने अपने सिद्धान्त के माध्यम से मनोविज्ञान की एक प्रणाली प्रस्तुत की है जिसे क्षेत्रीय मनोविज्ञान, तलरूप या सदिश मनोविज्ञान कहते हैं। वस्तुतः क्षेत्र सिद्धान्तों का प्रतिपादन साहचर्य सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है।

लेविन का क्षेत्रीय सिद्धान्त पूर्णाकार (गेस्टाल्ट) सिद्धान्त के ही समान है। परन्तु यह थोड़ा–सा भिन्न है क्योंकि यह अनुभव के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्व देता है तथा मानवीय अभिप्रेरण पर भी बल देता है। कर्ट लेविन ने अपने मत का आधार वातावरण में व्यक्ति की स्थिति को बताया। लेविन ने जीवन स्थल के आधार पर व्यक्ति के अनुभवों की व्याख्या की है। उसके अनुसार जीवन स्थल वह वातावरण है जिसमें व्यक्ति रहता है और उससे प्रभावित होता है। किसी व्यक्ति का यह जीवन–स्थल मनोवैज्ञानिक शक्तियों पर निर्भर करता है। लेविन के अनुसार सीखना कोई अनोखी क्रिया नहीं है। उसने बताया कि सीखने की क्रिया को समझने के लिए हमें केवल यह समझना होता है कि जीवन–स्थल का नव संगठन किस प्रकार होता है तथा मनोवैज्ञानिक संसार की संरचना किस प्रकार होता है तथा मनोवैज्ञानिक संसार की संरचना किस प्रकार होती है। अतः सीखना हमारे अनुभवों या जीवन स्थल की संरचना में परिवर्तन लाने से होता है। लेविन ने आगे बताया कि वास्तव में, सीखना वातावरण का संगठन है।

कर्ट लेविन ने अपने मत का आधार वातावरण में व्यक्ति की स्थिति को बताया। उसके अनुसार ''व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिये व्यक्ति की स्थिति को उद्देश्यों से सम्बन्धित मानचित्र में निर्धारित करने एवं प्रयत्नों की जानकारी आवश्यक है।''

(To Understand a person's behaviour, one must recognize his position on a kind of map in relation to goals, he is trying to attain).

सिद्धान्त की व्याख्या –यह सिद्धान्त मनुष्य तथा उसके सीखने की प्रक्रिया को निरपेक्ष या यान्त्रिक नहीं मानता वरन् सापेक्षित अर्थात् एक दूसरे से सम्बन्धित मानता है। यह सिद्धान्त अनुभव के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्व देता है तथा प्रेरणाओं आदि का अधिक प्रयोग करता है। लेविन ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या करने में गणित के पारिभाषिक शब्दों, जैसे–क्षेत्रफल, जीवन विस्तार, तलरूप, शक्ति वेक्टर आदि का

टिप्पणी

प्रयोग किया है। सीखने की व्याख्या भी लेविन ने व्यक्ति, वातावरण, बाधायें, बाधाओं पर विजय तथा उद्देश्य की प्राप्ति की व्याख्या करके की है।

लेविन के मतानुसार सीखने की प्रक्रिया में कोई विचित्र बात नहीं है। अधिगम या सीखने को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि जीवन विस्तार किस प्रकार पुनः व्यवस्थित होता है और किस प्रकार मनोवैज्ञानिक संसार की संरचना होती है।

लेविन के सिद्धान्त में भर्त्सना, लक्ष्य तथा अवरोधक प्रमुख तत्व है। किसी व्यक्ति को लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अवरोधक को पार करना आवश्यक है। यह अवरोधक मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक हो सकता है। जैसा कि ऊपर संकेत दिया जा चुका है लेविन के सिद्धान्त का विकास सीखने के सिद्धान्त के रूप में नहीं हुआ है।

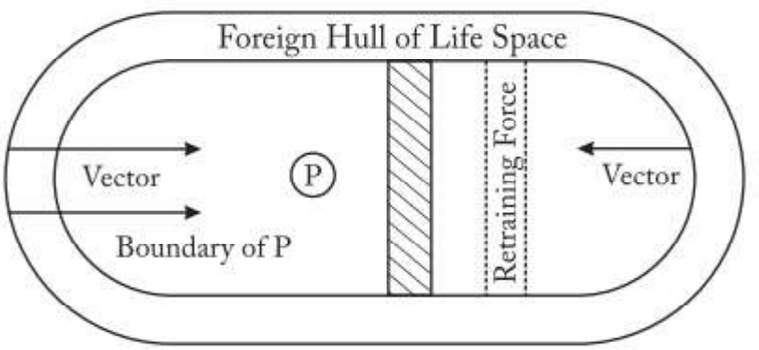

चित्र : Life Space of an Individual

इसका विकास अभिप्रेरणा और प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त के रूप में हुआ है। इसलिये लेविन सीखने की क्रिया में प्रेरणा तथा प्रत्यक्षीकरण पर बल देते हैं। प्रत्यक्षीकरण का अर्थ है कि कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति को किस प्रकार देखता है। व्यक्ति किसी लक्ष्य या उद्देश्य से प्रेरित होता है। लक्ष्य प्रायः धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियों से परिपूर्ण होते हैं।

व्यक्ति धनात्मक शक्ति से प्रेरित होकर लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है और ऋणात्मक, शक्ति उसे सीखने के लिये प्रेरित करती है। व्यक्ति को लक्ष्य तथा पहुंचने के मार्ग में अनेक अवरोधक मिलते हैं जिससे वह सरलता से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाता। इसलिये लक्ष्य तक पहुंचने के लिये इन अवरोधकों को दूर करना आवश्यक है। इस प्रकार जीवन–स्थल की संरचना या व्यवस्था बदल जाती है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार कहा जा सकता है कि सीखना जीवनस्थल का पुनर्संगठन है। जीवन–स्थल में व्यक्ति और लक्ष्य के बीच के अवरोधकों को दूर करने के लिये व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि या सूझ का विकास होता है। इस प्रकार यह सीखने का लक्ष्य सूझ सिद्धान्त भी कहा जाता है।

निम्न चित्र से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

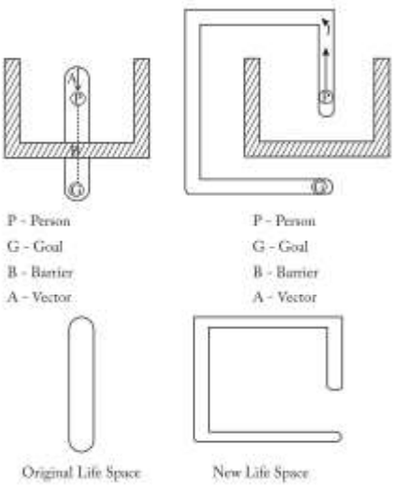

चित्र में व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है परन्तु उसके मार्ग में एक यू आकार की (U Shoped) बाधा उपस्थित है। वह इस बाधा के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ है। इसी बीच मानव की अन्तर्दृष्टि उसके जीवन–विस्तार (Life Space) में परिवर्तन लाती है तथा उसके व्यवहार में परिवर्तन करके वातावरण में एक संगठन उत्पन्न करती है तथा अब वह इस समस्या का समाधान करने के लिये यू (U) के खुले सिरे से 'चक्कर का मार्ग' बनाता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। इस प्रकार लेविन व उसके समर्थकों का कहना है कि सीखने में कोई नवीन अथवा विभिन्न समस्या नहीं है। यह तो जीवन–विस्तार की पुनःसंरचना मात्र का विषय है। यदि हम संरचना के मुख्य नियम अथवा जीवन–विस्तार के प्रबन्ध को हल कर सकते हैं तो हम मनोविज्ञान की सभी महत्वपूर्ण समस्याओं को समझ सकेंगे तथा उनके आधार पर अधिगम को भी समझ सकेंगे।

क्षेत्र सिद्धान्त के प्रमुख आधार (Basis of the Field Theory)

कर्ट लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण प्रत्यय इस प्रकार हैं–

1. **क्षेत्र** (Field)–लेविन के अनुसार क्षेत्र का तात्पर्य मानव के उस सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक जगत से है, जिसमें वह रहता है। तथा किसी समय विशेष में भ्रमण करता है। इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक संसार में व्यक्ति स्वयं, उसके विचार तथा धारणायें, कल्पनायें, विश्वास एवं आशायें सब कुछ आ जाती हैं। यह क्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग होता है, जैसे–एक नक्षत्र वेत्ता क्षेत्र का प्रयोग तारों के लिये करता है, भौतिक शास्त्री परमाणु संरचना के अध्ययन के लिये आदि।
2. **जीवन–विस्तार** (Life-Space)–जीवन–विस्तार का आशय उस वातावरण से है जिसमें मनुष्य है और उस वातावरण का प्रभाव व्यक्ति पर निरन्ता पड़ता रहता है। वातावरण से तात्पर्य प्राकृतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण है जिसमें व्यक्ति लगातार संघर्ष करता रहता है और उससे प्रभावित होता रहता है। मानव की अपनी कुछ आवश्यकतायें होती हैं कुछ योग्यतायें होती हैं, कुछ सीमायें

होती हैं और इन सबके चारों ओर उसका वातावरण होता है तथा यह वातावरण जीवन–विस्तार की सीमा से घिरा होता है। लेविन जीवन–विस्तार की संरचना के लिये इन सभी को बराबर महत्व देते हैं।

टिप्पणी

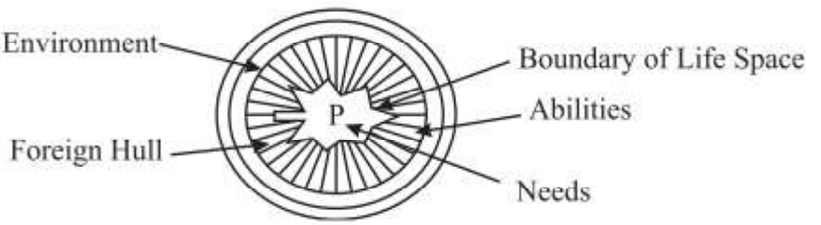

3. **व्यक्ति** (Person)–लेविन के अनुसार व्यक्ति या मानव को उसकी योग्यताओं के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। व्यक्ति का आशय मस्तिष्क या शरीर या दोनों से नहीं है। (सीमित)। यह संकेत करता है 'मैं' 'मेरा' 'मुझे' आदि। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी कुछ आवश्यकताएं होती हैं जो उसके व्यवहार की दिशा निर्धारित करती है तथा यह दिशा व्यक्ति को लक्ष्य की ओर मोड़ देती है जो व्यक्ति में तनाव भर देती है। व्यक्ति जब तक अवरोधों को पार करके लक्ष्य तक नहीं पहुंच जाता, तब तक वह बराबर प्रयत्नशील बना रहता है।

4. **विदेशी माल** (Foreign Holl)–विदेशी माल को बाह्य आवरण भी कहते हैं। यह आवरण व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक वातावरण के बाहर चारों ओर रहता है। यह प्राणी से सम्बन्धित वातावरण के उन पक्षों से निर्मित होता है जिसका प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति स्वयं नहीं कर पाता किन्तु उस व्यक्ति का अध्ययन करने वाले लोग उसका प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, समस्त अमनोवैज्ञानिक तथ्यों का वह मिश्रण जो जीवन–विस्तार के चारों ओर घिरा रहता है विदेशी माल कहलाता है। इसके अंतर्गत मनुष्य के शारीरिक तथा सामाजिक वातावरण के वे भाग आते हैं जो समय विशेष में व्यक्ति के जीवन–विस्तार के अंग नहीं होते लेकिन कभी भी अंग हो सकते हैं। यह जीवन की व्यावहारिक सम्भावनाओं को सीमित करता है।

5. **तलरूप** (Topalogy)–क्षेत्र सिद्धान्त को तलरूप सिद्धान्त भी कहते हैं। तलरूप का यह प्रत्यय रेखागणित से लिया गया है। कर्ट लेविन ने गणित के आधार पर मानव व्यवहार को समझाने का प्रयास किया है। तलरूप में दूरी, आकार व आकृति का कोई महत्व नहीं होता अर्थात् इसका लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई से कोई सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि इसमें अन्दर, बाहर तथा सीमा के प्रत्ययों की विवेचना की गयी है। तलरूप रेखागणित की दृष्टि से वृत्त, दीर्घवृत्त, सम या विषय बहुभुजों में कोई अन्तर नहीं होता है। पानी की एक बूंद तथा पृथ्वी दोनों ही तलरूप की दृष्टि से एक समान समझे जाते हैं। तलरूप उद्देश्य तथा उनकी प्राप्ति के मध्य बाधाओं के संदर्भ में व्यक्ति की स्थिति को स्पष्ट करता है।

टिप्पणी

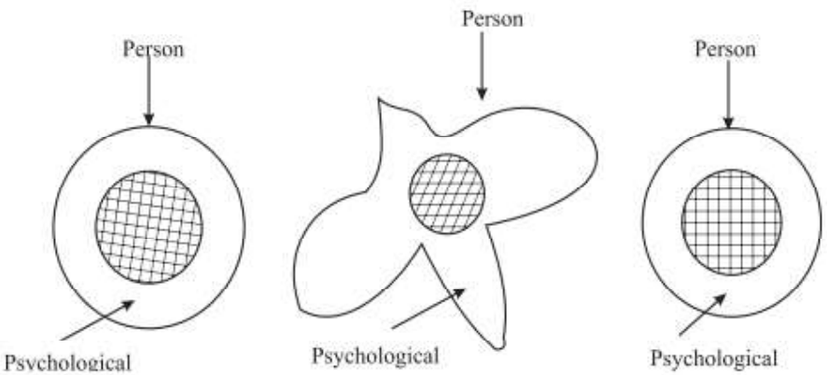

6. **सदिश** (Vector)—सदिश को वेक्टर भी कहते हैं। वस्तुतः वेक्टर का प्रत्यय भौतिक शास्त्र से लिया गया है। मनोविज्ञान में सदिश एक बल का प्रतिनिधित्व करती है जो व्यक्ति के व्यवहार को लक्ष्य की ओर अथवा लक्ष्य से दूर जाने की ओर संकेत करता है। सदिश में एक विशेष दिशा में जाने की प्रवृत्ति होती है तथा यह शक्ति एवं दिशा दोनों को अभिव्यक्त करता है। शक्ति एवं दिशा मिलाकर प्रेरक को शक्ति प्रदान करती है। इस प्रकार सदिश में तीन बातें निहित होती है—दिशा, शक्ति तथा प्रयोग बिन्दु। सदिश यह भी अभिव्यक्त करता है कि किस परिस्थिति में क्या होने वाला है अथवा क्या हो रहा है। साथ ही, यह जीवन—विस्तार के विभिन्न प्रदेशों की कर्षण शक्तियों को भी व्यक्त करता है।

7. **कर्षण शक्ति** (Valances)—कर्षण शक्ति को वेलेन्सी भी कहते हैं। जीवन—विस्तार के किसी क्षेत्र या प्रदेश में दो प्रकार की शक्तियां होती हैं जिन्हें आकर्षण तथा प्रतिकर्षण शक्तियां कहते हैं। ये शक्तियां सकारात्मक तथा नकारात्मक दो प्रकार की होती है। इस शक्तियों में दिशा तथा परिणाम दोनों होते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु के प्रति आकर्षित होते हैं तब हम कह सकते हैं कि उस वस्तु में आकर्षण शक्ति है और इसके विपरीत, जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु से दूर हटता है तब हम कहते हैं कि उस वस्तु में विकर्षण शक्ति है। कर्षण शक्ति के सम्बन्ध में यही विचार मौरिस एल बिग्गी ने व्यक्त किये हैं।

8. **अवरोध** (Barrier)—अवरोध को बेरियर भी कहते हैं। यह वातावरण का एक गत्यात्मक पहलू है जो व्यक्ति के लक्ष्य या उद्देश्य तक पहुंचने के मार्ग में खड़ा होता है तथा उसके आगे बढ़ने की गति को अवरुद्ध कर देता है। संक्षेप में, व्यक्ति को अपने लक्ष्य तक पहुंचने में अनेक समस्याओं एवं अवरोधों का सामना करना पड़ता है। यदि व्यक्ति को इन अवरोधों को दूर करने हेतु अभिप्रेरण मिलता रहे तो वह अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत स्थिति में वह या तो अपना लक्ष्य ही बदल लेता है अथवा हताश, निराश एवं कुण्ठा का शिकार हो जाता है। बार—बार की सफलता से व्यक्ति की आकांक्षा का स्तर ऊपर उठता है तथा बार—बार असफल होने पर आकांक्षा का स्तर नीचे गिरता है।

टिप्पणी

9. द्वन्द्व (Conflicts)–ऐसा समझा जाता है कि व्यक्ति के जीवन क्षेत्र में ऐसे उपक्षेत्र भी होते हैं जिनमें कि एक ही समय में विभिन्न प्रकार के कर्षण सक्रिय होते हैं। विशेषकर उस परिस्थिति में जब आकर्षण और विकर्षण उत्पन्न करने वाली दोनों शक्तियां समान हो। ऐसी स्थिति में द्वन्द्व का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। जीवन ने द्वन्द्व तीन प्रकार के बताये हैं–पहला, वह द्वन्द्व जिसमें दोनों शक्तियां सकारात्मक हों। जैसे–किसी व्यक्ति बैंक में क्लर्क नियुक्त कर लिया जाये और एल.आई.सी. में भी। दूसरा, वह द्वन्द्व जिसमें दोनों शक्तियां नकारात्मक हों। जैसे–आगे कुआं, पीछे खाई। तीसरा, वह द्वन्द्व जिसमें एक शक्ति सकारात्मक व एक नकारात्मक हो। जैसे–एक छोटी लड़की आइसक्रीम भी खाना चाहती और उसे इस बात का भी डर है की कहीं वह मोटी न हो जायें।

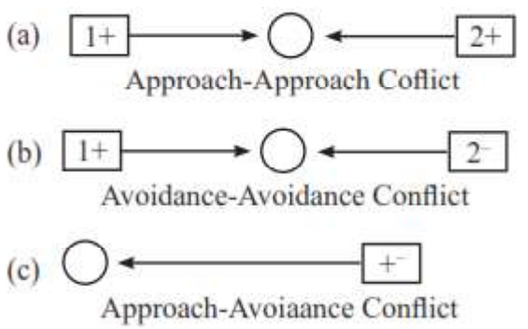

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Theory)

इस सिद्धान्त की आलोचना के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं–

1. वास्तव में यह सिद्धान्त मानवीय अभिप्रेरणा (Human Motivation) के अध्ययन से मुख्यतया सम्बन्धित है। इसी कारण यह सिद्धान्त सीखने की तरह विकसित नहीं हुआ वरन् अभिप्रेरणा एवं प्रत्यक्षीकरण (Motivation and Preception) के सिद्धान्त के रूप में सामने आया। परन्तु इतना अवश्य है कि लेकिन अपने इस सिद्धान्त का उपयोग सीखने की परिस्थितियों में भी करना चाहता है।
2. इस सिद्धान्त में व्यक्ति को अधिक महत्व दिया गया है गया है तथा वह सम्पूर्ण वातावरण के प्रभाव से अपना व्यवहार प्रदर्शित करता है परन्तु क्या वातावरण ही सबसे अधिक प्रभावशाली है? व्यक्ति की कुछ आन्तरिक इच्छायें, आवश्यकताएं भी उसे व्यवहार करने को प्रेरित करती हैं।
3. यह सिद्धान्त अनुभव के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्व देता है।
4. लेविन ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या गणित के परिभाषित शब्दों, जैसे–क्षेत्रफल (Field Force) जीवन–विस्तार (Life space) तलरूप (Topalogy) शक्ति (Valence) सन्तुलन (Equilibrium), वेक्टर (Vector) आदि के द्वारा की है। वास्तव में इन सब शब्दों को समझना बड़ा कठिन है।

टिप्पणी

सिद्धान्त का शिक्षा के क्षेत्र में महत्व (Educational Implication)

कर्ट लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त को शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। इस सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं के सन्दर्भ में आसानी से समझा जा सकता है।

1. यह सिद्धान्त शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रभावी ढंग से उपयोग में लाया जाता है। व्यक्तित्व का अध्ययन करने तथा समाज मनोविज्ञान की दृष्टि से इस सिद्धान्त का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना जीवन क्षेत्र को विभेदित बनाने की प्रक्रिया है। विभेदीकृत जीवन क्षेत्र से हमारा आशय है कि जीवन क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक छोटे–छोटे क्षेत्र एवं प्रदेश समाहित रहते हैं।
3. इस सिद्धान्त का शिक्षण में विशेष महत्व है। इस दृष्टि से शिक्षक को चाहिये कि वह सीखने के लिए उचित वातावरण प्रस्तुत करें तथा छात्रों के सम्मुख अपेक्षित व्यावहारिक उद्देश्यों का स्पष्टीकरण भली प्रकार करें ताकि उन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सके।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक को बहुत ही प्रभावकारी ढंग से विद्यार्थी, उसके वातावरण, उसीक आवश्यकताओं, रुचियों, दृष्टिकोणों, सीमाओं, क्षमताओं एवे अन्य सम्बन्धों को बखूबी समझना चाहिये। दूसरे शब्दों में शिक्षक को विद्यार्थी के जीवन–क्षेत्र को पूरी तरह से समझना चाहिये।
5. शिक्षकों को ऐसे प्रयास करने चाहिये जिससे कि छात्रों के प्रत्यक्षीकरण का क्षेत्र विस्तृत हो और जीवन क्षेत्र और अधिक लम्बा चौड़ा होता जाये। साथ ही, विद्यार्थी की सीखने से सम्बन्धित आकांक्षाओं को भी ऊंचा उठाने का प्रयास किया जायें।
6. शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में भी शिक्षक को जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। उसका यह हरसम्भव होना चाहिये कि छात्रा हताशा, कुण्ठा, निराशा, तनाव आदि से दूर रहे अन्यथा ऐसी परिस्थिति में छात्र से वांछित अधिगम की अपेक्षा करना निराधार ही साबित होगा।
7. अभिप्रेरणा, अधिगम की एक अनिवार्य शर्त है। कहा भी गया है कि जितना अच्छा अभिप्रेरणा उतना ही अच्छा सीखना। यह सिद्धान्त इसीलिये शिक्षण में अभिप्रेरण के बल पर महत्व देता है। अभिप्रेरणा ही छात्रों के सीखने की दिशा में उत्साह, ध्यान एवं रुचि का समुचित विकास करती है।
8. यह सिद्धान्त इस बात पर बहुत अधिक बल देता है कि कक्षा का वातावरण छात्रों को सीखने की प्रक्रिया की प्रक्रिया को बहुत अधिक प्रभावित करता है। अतः यह परम आवश्यक है कि कक्षा का भौतिक वातावरण, यथा–प्रकाश, वायु आदि उच्च

टिप्पणी

स्तर का बनाया जाये। साथ ही छात्रों में परस्पर, सहयोग, स्नेह, आदि भावनायें विकसित कर मनोवैज्ञानिक वातावरण का निर्माण किया जायें।

9. यह सिद्धान्त छात्रों को रटने की प्रकृति का विरोध करता है तथा इसके स्थान पर उनमें अन्तर्दृष्टि के विकास पर बल देता है। साथ ही, छात्रों के मस्तिष्क में ज्ञान को ठूंसने का प्रयास नहीं करना चाहिये बल्कि आधुनिक शिक्षण प्रविधियों का प्रयोग कर उसे सुगाह्य बनाने का प्रयास करना चाहिये।
10. यह सिद्धान्त व्यक्ति को अधिक महत्व देता है। अतः शिक्षा में छात्रों के 'स्व' को महत्व दिया जाना चाहिये। जब तक छात्र स्वयं अपनी आवश्यकताओं, क्षमताओं, कमियों, वातावरण एवं उद्देश्यों से परिचित नहीं होगा तब तक वे न तो प्रभावी व्यवहार ही कर पायेंगे और न ही अपेक्षित अधिगम प्राप्त कर सकेंगे।
11. यह सिद्धान्त अवरोधों के महत्व को स्वीकार करता है। लेविन के अनुसार व्यक्ति आकर्षण के कारण लक्ष्य तक पहुंचने के लिये सबसे छोटा तरीका अपना सकता है, जैसे कि परीक्षा में नकल करना। इसलिए जीवन क्षेत्र में अवरोध की आवश्यकता है। दण्ड की स्थिति में व्यक्ति परिस्थिति से पलायन कर सकता है। अतः व्यक्ति को उसी क्षेत्र में रखने के लिए सशक्त अवरोधों की आवश्यकता होती है।
12. किसी क्रिया की पुनरावृत्ति संज्ञानात्मक संरचना और आवश्यकता से उत्पन्न तनाव दोनों में परिवर्तन लाती है। परिणामतः लक्ष्य की आकर्षण शक्ति में परिवर्तन आ जाता है। कर्षण कई प्रकार से परिवर्तित होते हैं, जैसे–आकर्षण युक्त लक्ष्य अपना आकर्षण खो सकते हैं यदि बार–बार उसी क्रिया को दोहराया जाये तो प्राणी तृप्ति की अवस्था तक पहुंच जाता है, दूसरे, मूलतः अनाकर्षण लक्ष्य आकर्षण युक्त बन जाते हैं, जैसे–पहले सांख्यिकी बुरी लगती थी लेकिन अभ्यास से रस आने लगा तथा तीसरे लक्ष्य का चुनाव व्यक्ति की सफलता या असफलता से सम्बन्धित पूर्व अनुभवों द्वारा प्रभावित होता है।
13. कौन सी चीजें स्मृति में रहेंगी, इस सम्बन्ध में भी लेविन ने अपने विचार सुनिश्चित किये हैं, जैसे–ऐसी चीजें जिन्हें पूरा करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता वे भूल जाती है, अधूरे कार्य पूरे कर दिये गये कार्यों की अपेक्षा अधिक याद रहते हैं तथा ऐसे कार्य जो कई आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वे उन कार्यों की अपेक्षा जो केवल एक ही आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, अधिक याद रहते हैं।

2. ऑसुबेल का सीखने का सिद्धान्त (Ausbel's Theory of Learning)

ऑसुबेल का एक ऐसा ज्ञान सिद्धान्त है जो व्यवहारवादियों से तो आमतौर पर विभेद रखता ही है, किन्तु बहुत–कुछ पियाजे और ब्रूनर से भी विभिन्नता प्रदर्शित करता है। यद्यपि वह यह मानता है कि खोज द्वारा सीखना महत्वपूर्ण है, किन्तु वह यह भी स्पष्ट करता है कि कुछ दशाओं में यह अकुशल और यहां तक कि कहीं–कहीं यह नामुमकिन भी है। इसके साथ–साथ वह यह भी मानता है कि उपदेश शिक्षण–पद्धति (Didactic)

टिप्पणी

अनेक स्थितियों में सबसे सरल तथा सबसे कुशल सीखने की पद्धति है। और परिणामस्वरूप वह यह मानता है कि इसे भी सीखने के लिए चुना जा सकता है।

ऑसुबेल विभिन्न प्रकार के सीखने में विभेद करता है। वह प्रतिरूप विषयक सीखना (Representational learning), अवधारणा सीखना, (Concept learning), प्रस्थापनीय सीखना (Proposition learning), अन्वेषण सीखना (Discovery learning) तथा समस्या हल में विभिन्नता स्पष्ट करता है। प्रतिरूप विषयक से तात्पर्य है–नाम शब्दों के अर्थ इत्यादि सीखना और प्रस्थापनीय से तात्पर्य है–अवधारणाओं की श्रेणियों तथा आपसी सम्बन्धों के बारे में सीखना। वास्तव में हम उसको सारग्राही (Electic) कह सकते हैं क्योंकि वह विभिन्न स्थितियों में विभिन्न मार्ग अपनाने का प्रतिपादन करता है, किन्तु उसकी प्रसिद्धि उन अनुसन्धानों के कारण है जो कि उसने सीखने के अनुभवों की योजना बनाने की विधियों पर किये हैं ताकि सीखने में कुशलता प्राप्त हो सकें।

ऑसुबेल इस बात पर बल देता है कि तथ्य सम्बन्धी ज्ञान उस समय सबसे सरलता से सीख लिया जाता है जबकि यह संगठित होता है और तर्कपूर्ण ढंग से क्रमशील कर दिया जाता है। इससे यह विचार निहित है कि कुछ सामान्य सिद्धान्तों का प्रयोग जैसे कि वह सामग्री जो पूर्व ज्ञान पर केन्द्रित है। उस समय तक नहीं पढ़ाई जानी चाहिए जब तक कि उससे सम्बन्धित पूर्व ज्ञान पढ़ा नहीं दिया गया है। एक अन्य मूल नियम यह है कि तथ्यों का संकलन एक तर्कपूर्ण संस्थान में करना चाहिए और इसी भांति इसका शिक्षण भी देना चाहिए न कि अव्यवस्थिति और अलग–अलग ढंग से। यह सीखने वालों को तथ्यों को सीखने में तथा तथ्यों के संगठन को समझने में सहायता प्रदान करता है।

डेविड ऑसुबेल (David Asubel, 1978) ने सीखने के एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे आधुनिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Modern Cognitive theory) की श्रेणी में रखा गया है। ऑसुबेल के सिद्धान्त को संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Cognitive Theory) इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस सिद्धान्त का मूल उद्देश्य सीखते समय व्यक्ति में क्या होता है, का वर्णन करना होता है। इनके सिद्धान्त द्वारा मूल रूप से यह बताने की कोशिश की जाती है कि सीखने की प्रक्रिया में जब नए विषय या पाठ को शिक्षार्थी अपने गत ज्ञान (Post Knowledge) के साथ जोड़ते है तो उस नए विषय का पाठ का क्या होता है। शिक्षार्थी के गत ज्ञान के भंडार को 'संज्ञानात्मक संरचना' (Cognitive Struture) कहा जाता है और जब शिक्षार्थी इस संज्ञानात्मक संरचना में नए पाठ से सीखे गए अनुभूतियों को सार्थक ढंग से जोड़ता है या संबंधित करता है, तो उसे आत्मसात्करण (assimilation) की संज्ञा दी जाती है।

ऑसुबेल का सिद्धान्त कक्षा (Classroom) में किए जाने वाले शिक्षण (Learning) तथा शाब्दिक सामग्रियों (Verbal materials) के सार्थक एवं अर्थपूर्ण सीखने (Meaningful learning) से संबंधित है और इस बिन्दु पर ऑसुबेल का सिद्धान्त ब्रुनर (Bruner) के सिद्धान्त के समान है।

टिप्पणी

ऑसुबेल (Asubel) ने अपने सीखने के सिद्धान्त में सीखने के निम्नांकित चार प्रकार (Kinds) का वर्णन किया है–

1. **रटकर सीखना** (Rote Learning)–रटकर सीखना वैसे सीखने को कहा जाता है जिसमें शिक्षार्थी दिए गए विषय या पाठ के अर्थ को बिना समझे हू–ब–हू (Verbation) पुनरुत्पादन (reproduce) कर सीखते है। निरर्थक पदों (nonsense syllables) को सीखना, अक्षर–अंक युग्म (letter-number pairs) को सीखना, छोटे–छोटे शिशुओं द्वारा नर्सरी राईम (nursery rhyme) को सीखना इसके उदाहरण है।

2. **अर्थपूर्ण सीखने** (Meaningful Learning) – अर्थपूर्ण सीखना या जिसे ऑसुबेल ने अर्थपूर्ण आत्मव्याकरण (Meaningful assimiliation) भी कहा है। एक ऐसे सीखने की प्रक्रिया को कहा जाता है जिसमें शिक्षार्थी किसी विषय या पाठ को समझकर आत्मसात करते हैं तथा उसे अपने गत ज्ञान (Post knowledge) से संबंधित कर पाते हैं। ऑसुबेल (Asubel) ने इस बात पर विशेष बल डाला है कि शिक्षकों को कक्षा के शिक्षण (Classroom learning) में अर्थपूर्ण सीखने पर अधिक बल डालना चाहिए। उन्होंने अर्थपूर्ण सीखने के लिए दो चीजों का होना अनिवार्य (essential) बताया है–अर्थपूर्ण विषय (Meaningful matirial) तथा अर्थपूर्ण सीखने की मानसिक तत्परता (Meaningful Organization) एवं प्रस्तुतीकरण (Presentation) इस ढंग से करे कि शिक्षार्थी के लिए अधिक से अधिक अर्थपूर्ण (Meaningful) हो सके। इतना ही नहीं शिक्षक अपने विशेष प्रयास (Effort) एवं लगन से छात्रों में एक ऐसी मानसिक तत्परता (Mental set) उत्पन्न कर सकते हैं जिससे वह अर्थपूर्ण ढंग से सीखने के लिए अधिक प्रेरित हो सकें। अर्थपूर्ण सीखने की इन दोनों तरह की अनिवार्यताओं के नहीं होने से छात्र अक्सर किसी पाठ या विषय को रटकर सीखते हैं।

3. **अभिग्रहण सीखना** (Reception Learning)–इस तरह के सीखना में शिक्षार्थी को सीखने वाली सामग्री बोलकर या लिखकर दे दी जाती है और शिक्षार्थी उन सामग्रियों को आत्मसात (internalize) कर लेता है। दुर्भाग्यवश अधिकतर शिक्षक यही समझते हैं कि अभिग्रहण सीखना (reception learning) मात्र रटकर ही किया जा सकता है। परन्तु ऑसुबेल (Asubel) ने यह स्पष्ट कर दिया कि यह रटकर भी हो सकता है तथा समझकर भी हो सकता है। दूसरे शब्दों में, अभिग्रहण सीखना के दो प्रकार होते हैं–रटकर अभिग्रहण सीखना (Meaningful reception learning) तथा अभिग्रहण सीखना (Meaningful reception learning) (चित्र–देखे)

टिप्पणी

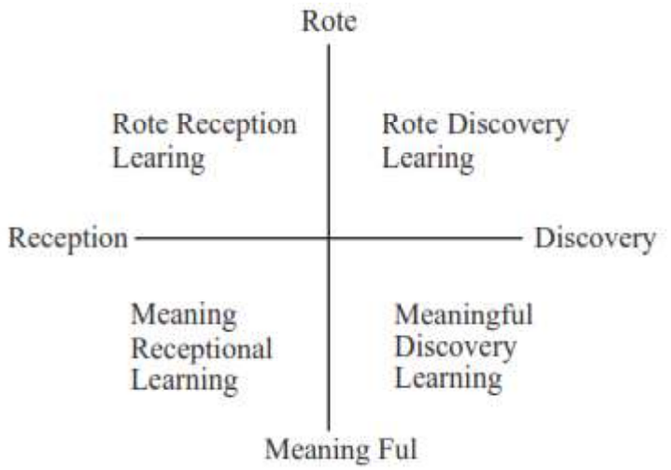

चित्र : ऑसुबेल द्वारा प्रतिपादित सीखने के प्रकार

4. **अन्वेषण सीखना** (Discovery Learning)—अन्वेषण सीखना पैसे सीखना को कहा जाता है जिसमें शिक्षार्थी को दिए गए सामग्रियों में से नया संप्रत्यय (Concept) या कोई नया नियम या विचार की खोज कर उसे सीखना होता है। दुर्भाग्यवश अधिकतर शिक्षक यही समझते हैं कि अन्वेषण सीखना हमेशा अर्थपूर्ण (Meaningful) ही होता है। दुर्भाग्यवश अधिकतर शिक्षक यहीं समझते हैं कि अन्वेषण सीखना हमेशा अर्थपूर्ण (Meaningful) ही होता है। परन्तु, ऑसुबेल ने यह स्पष्ट कर दिया कि अभिग्रहण सीखना (Reception learning) के समान यह भी दो प्रकार का होता है—रटकर अन्वेषण सीखना (Rote discovery learning) तथा अर्थपूर्ण अन्वेषण सीखना (Meaningful discovery learning) (चित्र—देखें)। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई शिक्षार्थी दिए गए उत्तरों में से खोजकर, इस अधूरे वाक्य अर्थात् ''भारत....में आजाद हुआ था।'' को पूरा करने की कोशिश करता है, तो यह एक ऐसा अन्वेषण सीखना का उदाहरण होगा जो रटकर सम्पन्न हुआ माना जाएगा। परन्तु यदि छात्र ज्ञान तथ्यों (Known facts) को पुनर्संगठित (recorganize) कर या कोई प्रयोग कर किसी नए नियम की खोज करता है तो इसे एक ऐसा अन्वेषण सीखना कहा जाएगा जो अर्थपूर्ण प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न हुआ है।

ऑसुबेल ने अपने सीखने के सिद्धान्त में अथपूर्ण सीखना चाहे वह अभिग्रहणात्मक (Receptive) हो या अन्वेषणात्मक (discovery) अधिक महत्व डाला है। उन्होंने अर्थपूर्ण सीखने की प्रक्रिया में आत्मसात्करण (assimilation) को अधिक महत्वपूर्ण बताया है और कहा है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थी समझ—बूझकर नए सीखे गए पाठ या विषय को अपनी संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structures) में आत्मसात कर लेते हैं। उन्होंने यह बताया कि आत्मसात्करण (assimilation) निम्नांकित चार प्रकार से किए जाते हैं—

टिप्पणी

1. **संयोगात्मक सीखना** (Combinational Learning)–इस तरह के सीखना में सामान्य समरूपता (general congruence) के आधार पर शिक्षार्थी पहले सीखे गए विचारों के संयोग (Combincations) को सार्थक ढंग से संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure) के महत्वपूर्ण तथ्यों के साथ संबंध जोड़ता है। कक्षा में संयोगात्मक सीखना के कई उदाहरण मिलते हैं। जैसे–छात्र जब मांग एवं मूल्य (demand and Price), ताप (Heat), एवं आयतन (Volume), व्यक्ति के भार (Weight) एवं ऊंचाई (Height), के बीच जब कोई सामान्यीकरण (Generalization) करता है, तो वह पहले सीखी गई संयोगात्मक संप्रत्यय (Combinational Concepts) का अर्थपूर्ण ढंग से वर्तमान संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure) के साथ संबंध स्थापित किए जाने का ही परिणाम होता है।

2. **अधीनस्थ सीखना** (Subordinate Learning)–इस तरह के सीखना में शिक्षार्थी किसी सामान्य नियम या विचार (Idea) के तहत एक नई चीज को सीखता है। जैसे जब छात्र यह सीखते हैं कि 'पयोधि', 'रत्नाकर' तथा 'नीरधि' तीनों का अर्थ समुद्र होता है परन्तु वे समुद्र शब्द की तुलना में कम प्रयोग किए जाते हैं, वो यह अधीनस्थ सीखना (Subordinate learning) का उच्चारण होगा।

3. **सह–संबंधात्मक सीखना** (Correlative Learning)–इसमें शिक्षार्थी नए ज्ञान (knowledge) को इस ढंग से सीखता है जो पहले सीखे गए संप्रत्ययों (concepts) एवं नियमों (Principles) का एक तरह परिमार्जन (Modification) एवं विवर्धन (elaboration) होता है। जैसे यदि कोई शिक्षार्थी पहले से यह जानता है कि 'देशप्रेम' का अर्थ क्या होता है तथा 'देशप्रेम' के व्यवहार जैसे राष्ट्रीय ध्वज का आदर करना, राष्ट्रीय पर्व में खुलकर भाग लेना आदि को जानता है और अब वह देश के विभिन्न राष्ट्रीय सम्पत्ति को भी अपनी सम्पत्ति के समान रखरखाव करना यदि प्रारंभ कर देता है तो यह सह–संबंधात्मक सीखना (Correlative learning) के उदाहरण होंगे।

4. **महाकोटि सीखना** (Superordinate Learning)–महाकोटि सीखना वैसे सीखना को कहा जाता है जिसमें शिक्षार्थी शिक्षार्थी एक ऐसा नया संप्रत्यय (Concept) या प्रतिज्ञप्ति (Proposition) सीखता है जिसमें पहले से सुस्पष्ट कई विचार सम्मिलित होते हैं। दूसरे शब्दों में, जब शिक्षार्थी कई संप्रत्ययों (Concepts) को एक साथ करके कोई नया संप्रत्यय या नियम सीख लेता है। तो इसे महाकोटि सीखना (Superordinate learning) कहा जाता है। जैसे यदि शिक्षार्थी 'बाघ', 'सिंह', 'सियार', 'कुत्ता' तथा 'शेर' शब्दों के आधार पर एक नया संप्रत्यय जैसे 'मांसाहारी पशु' सीख लेता है तो यह एक महाकोटि सीखना का उदाहरण है।

उपर्युक्त चार प्रक्रियाओं द्वारा शिक्षार्थी नई सामग्रियों (New Materials) को संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure) में आत्मसात (Assimilate) कर लेता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि ऑसुबेल के सीखने के सिद्धान्त का एक ऐसा सिद्धान्त है जिसकी शैक्षिक उपयोगिता अधिक होने के बावजूद इसमें कुछ सीमाएं या

टिप्पणी

खामियां (limiations) है। इस सिद्धान्त की सबसे प्रमुख सीमा (limitation) यह है कि इनके द्वारा सीखने के कई प्रकार बताए गए हैं जो आपस में परस्परव्यापी (Ovelapping) है जिसमें पाठक की संभ्रांति (Confusion) अधिक होती है और शिक्षक उनका सही–सही उपयोग नहीं कर पाते। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों का मत है कि शिक्षार्थी नए विषयों या पाठों को अपने संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Struture) में कई तरह से आत्मसात्करण का आधार क्यों माना है, यह कभी भी स्पष्ट नहीं किया गया है।

ऑसुबेल अपने अनुसन्धानों के आधार पर शिक्षकों को निम्न पदों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है–

1. पाठों का शिक्षण अग्रिम आयोजकों (Advance Organizers) द्वारा करना चाहिए जिनमें सामान्य नियम सम्मिलित होते हैं अथवा उन प्रश्नों के साथ करना चाहिए जो विद्यार्थियों को पाठ्य–सामग्री को यथावत् ढंग से समाकलन करना सिखा दें। ऑसुबेल के अनुसार उपदेश शिक्षण–पद्धति पर उस समय अधिक सफल होती है जबकि पाठ का शिक्षण देने से पहले अग्रिम आयोजकों को सिखा दिया जाता है। अग्रिम आयोजकों की सामान्य अवधारणाएं वे हैं जिनके अन्तर्गत जो पाठ सामग्री सीखनी है, सब आ जाती है। ऐसा करने से विद्यार्थियों को सीखने के सामान्य सादृश्य (General learning set) मिल जाते हैं जो कि उनको मूल विचारों का अर्थ समझने में तथा इन विचारों को एक–दूसरे के साथ सम्बन्धित करने में सहायता देता है।
2. विद्यार्थियों को नये अथवा मूल विचारों की ओर सचेत करना चाहिए और संक्षेप में सीखने के उद्देश्य का वर्णन करना चाहिए।
3. नये ज्ञान को ऐसे छोटे–छोटे पदों में प्रस्तुत करना जो तर्कपूर्ण ढंग से संगठित हो और सरलता से समझने वाले रूप में क्रमशीलबद्ध हो।
4. लगातार प्रत्युत्तर प्राप्त करना चाहिए ताकि विद्यार्थी सक्रिय रूप से कार्य में लगा रहे और साथ ही इस बात का आश्वासन कर लेना चाहिए कि प्रत्येक पहला पद अच्छी तरह से सीख लिया गया है इससे पहले कि विद्यार्थी दूसरे पर जायें।
5. पाठ को समाप्त एक समायोजित मुख्य मुद्दों की पुनरावृत्ति से करना चाहिए जिनमें सामान्य समायोजित अवधारणाओं पर बल दिया गया हो।
6. पाठ का अनुसरण ऐसे प्रश्नों अथवा अभ्यासों से किया जाना चाहिए जिनमें विद्यार्थियों को पाठ्य–सामग्री को स्वयं अर्थ प्रदान करना पड़े और उसका प्रयोग तथा विस्तार करना पड़े।

अन्त में, हम इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे कि ऑसुबेल सीखने की प्रक्रिया में सब बोझ शिक्षक पर ही डाल देता है। पियाजे अथवा ब्रूनर की तुलना में उसके विचार में शिक्षक की भूमिका सीखने में अधिक महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी

3. टॉलमैन का चिन्ह–गेस्टाल्ट सिद्धान्त (Tolman's sign-gestalt Theory)

एडवर्ड सी. टॉलमैन (Eduward chace Tolman) (1889–1959) द्वारा प्रतिपादित संकेत अधिगत सिद्धान्त उद्देश्यपूर्ण व्यवहारवाद (Purposive bahaviourism) प्रत्याशा सिद्धान्त (expectancy), संकेत गेस्टाल्ट सिद्धान्त (sign gestalt) आदि कई नामों से जाना जाता है। इससे स्पष्ट है कि टॉलमैन का सिद्धान्त उनके विचारों से प्रभावित सिद्धान्त है। टॉलमैन ने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में एक लम्बे समय तक अध्यापन कार्य किया। उनके सिद्धान्त का वर्णन उनकी पुस्तकों 'Purposive Behaviour in Animals and man (1932); Drives towards war (1942) तथा Calleated papers in Psychology (1951) में मिलता है। उसके अनुसार व्यवहार निर्धारित उद्देदश्य के अनुरूप नियमित होता है इसलिये उसे प्रयोजनपूर्ण व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक (Purposive Behaviourism Psychologist) कहा जाता है।

टॉलमैन का यह सिद्धान्त S-R Theory तथा Cognitive Field Theory के मध्य स्थित हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस सिद्धान्त की जड़ें व्यवहार में स्थित हैं। परन्तु यह सिद्धान्त S-R Connectionism (संयोजनवाद) के खिलाफ है। टॉलमैन S-R सिद्धान्त तथा प्रयत्न एवं भूल (Trial and Errar) सिद्धान्त दोनों की आलोचना करते हैं। वह कहते हैं कि संपूर्ण अधिगम प्रक्रिया 'हिट एण्ड मिस अफेयर'' (Hit and miss affairs) नहीं है। साथ ही, ना तो यह उद्देश्यहीन है ना ही यादृच्छिक (random) है। यह यान्त्रिक (mechanical) भी नहीं यह एक सोदेश्यपूर्ण है और न ही (Purposive) क्रिया है जो अपने उद्देश्य को प्राप्त करे हेतु प्रयासरत होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार लक्ष्य का मुख्य महत्व सीखने की क्रिया में है। एक कुत्ता सीटी सुनकर दौड़ना इसलिये सीख लेता है कि वह जानता है कि दौड़ने से उसे खाना शीघ्र मिल जायेगा और सीटी बजाना इस बात का संकेत है कि खाना तैयार है। अतएव यहां दौड़ना (मालिक की आवाज या घण्टी बजने पर) किसी ज्ञान पर आधारित है। यदि उद्दीपक में किसी प्रकार का अर्थ नहीं जुड़ा होता तो किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती। अतः कुत्ते का दौड़ना यान्त्रिक नहीं है बल्कि उनके ज्ञान पर आधारित है। यदि कुत्ता भूखा नहीं होगा तो वह सीटी की आवाज सुनकर नहीं दौड़ेगा।

टॉलमैन के सिद्धान्त को चिन्ह गेस्टाल्ट सिद्धान्त भी कहते हैं। टॉलमैन का मानना है कि अधिगम में क्रियाओं अनुक्रियाओं का अधिगम नहीं होता बल्कि चिन्हों/संकेतों (signs) का अधिगत होता है। अधिगमकर्त्ता परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण करता है। (गेस्टाल्ट दृष्टिकोण) विश्लेषण करता है तथा फिर उसकी मानसिक संरचना अथवा मानचित्र तैयार करता है। इस प्रकार व्यसवहार इन चिन्हों पर आधारित है और इसके माध्यम से सीख जाते हैं। उदाहरणार्थ–किसी भूल–भुलैया से बाहर निकलना। अथवा किसी नये शहर में किसी अनजान जगह पर पहुंचते समय उन रास्तों, गलियों, संकेतों महत्वपूर्ण स्थलों, प्रतीक चिन्हों को नोट करते चलता है। अथवा ध्यान देता चलता है या अपने मस्तिष्क में यह नक्शा तैयार करता चलता है ताकि भविष्य में दोबारा इस स्थान तक पहुंचने में उसे कोई कठिनाई न हो या भटकना न पड़े तथा वह अपने गन्तव्य तक आसानी से पहुंच सके। यह चिन्ह–गेस्टाल्ट का सर्वोत्तम सरल उदाहरण है।

टॉलमैन ने व्यवहार के प्रति आणविक (Malar) दृष्टिकोण का विकास किया जो कि लक्ष्य केन्द्रित तथा सोदेश्यपूर्ण होता है। वह इस बात का बल देते हैं कि ज्ञान प्राप्त को सामयिक समीपता (Temporal contiguly) होता है। उनका दृष्टिकोण होलिस्टिक (Holistic) है जो कि व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा उनकी संतुष्टि पर बल देता है। अतः प्रेरणा एवं आवश्यकताओं को स्पष्ट स्वीकार्यता अधिगम का आधार मानी जाती है। सामयिक समीपता का सरल उदाहरण–जूतों के फीते (shoelaces) बाधना (knot) है। इसी प्रकार भूल–भूलैया में भी हमारी एक क्रिया दूसरी क्रिया को सम्बल प्रदान करती है जो हमें लक्ष्य तक पहुंचने में हमारी मदद करती है।

टिप्पणी

विशेषताएं (Characteristics) : इस सिद्धान्त की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

1. वाटसन की तरह टॉलमैन ने भी अन्तर्दर्शन (Introspection) को नकारते हुए व्यवहारवाद पर बल दिया है।
2. यह सिद्धान्त व्यवहार के सामूहिक रूप से बल देता है।
3. यह सिद्धान्त के अनुसार प्राणी का व्यवहार बिना किसी उद्देश्य के नहीं हो सकता। (Goal Oriented)
4. किसी भी जीव का व्यवहार स्थिर व निश्चित नहीं होता, बल्कि बदलता रहता है।
5. यह सिद्धान्त व्यवहार को सीखने में अथवा अधिगम प्रक्रिया में पर्यावरणीय संकेतों पर महत्व देता है।
6. यह सिद्धान्त आणविक (Maleculor) विचारधारा पर बल नहीं देते।
7. यह सिद्धान्त गुथरी के सामयिक समीपता (Imporal contiguity) को भी अधिगम की प्रक्रिया में विशेष महत्व देता है।
8. यह सिद्धान्त मध्यवर्ती चल राशियों (Intervening Variable) को प्रमुखता प्रदान करता है। ये चल राशियां दो प्रकार की होती हैं–वातावरण जनित (environment) तथा व्यक्तिगत (Individual)।

सम्बन्धित नियम (Related principle) – टॉलमैन ने अपने सिद्धान्त के आधार पर चार प्रमुख अधिगम नियमों की व्याख्या की है।

1. अभिप्रेरणा नियम (Motivation Principle)
2. साहचर्य नियम (Associative Principle)
3. क्रिया नियम (Action Principle)
4. शक्तिवर्द्धक नियम (Strengthening Principle)

1. **अभिप्रेरणा नियम** (Motivation Principle)–टॉलमैन अधिगम प्रक्रिया में प्रेरणा के महत्व को नकारता तो नहीं है वह पुनर्बलन (Reinforcement) को आवश्यक मानता है। हां उसने इसके महत्व को सीमित अवश्य कर दिया है।
2. **साहचर्य नियम** (Associative Principle)–व्यवहारवादी उद्दीपनों (stimulus) एवं अनुक्रियाओं (Responses) के कारण learning होना मानते हैं परन्तु Tolman इसे

टिप्पणी

नहीं मानता। वह उद्दीपन और अनुक्रियाओं को केवल चिन्ह या Sign पर मानता है जैसे–चूहा ऐसी भूल–भुलैया में भोजन पाना सीखता है जब वह मार्ग के कीड़ों को चिन्ह (Sign) के रूप में मस्तिष्क में बिठा लेता है।

3. **क्रिया नियम** (Action Principle)–टॉलमैन ने अनुक्रिया को परिभाषित नहीं किया वह उसे उपयुक्त व्यवहार (Appropriate Behaviour) की संज्ञा देता है। जीव किसी क्रिया को तब तक नहीं सीखता जब एक उसकी आन्तरिक मांग (Internal demand) पूरी नहीं होती। मांग की पूर्ति से वह अनुभवों को लाभ उठाता है। इस आधार पर वह प्रत्याशा (expectations) भी करता है।

4. **शक्तिवर्द्धक नियम** (Strengthening Principle)–थार्नडाइक एवं वाटसन कहते हैं थे कि जितनी अधिक अनुक्रिया होती है उतना अधिक उद्दीपन का प्रबलन (Reintorcement) होता है। टालमैन यह बात बिल्कुल नहीं मानता। वह कहता है कि S-R सम्बन्ध learning का आधार नहीं है। Learning या सीखने का आधार तो चिन्टू की सार्थकता को समझना मात्र है। सार्थक चिन्ह प्रत्याशा की शक्ति को बढ़ा देता है। वह प्रत्याशा की शक्ति बढ़ाने के लिए तात्कालिकता, बल, पुनरावृत्ति, और अभिप्रेरणा (Motivation) जैसी शक्तियां को आवश्यक मानता है।

उपरोक्त तथ्यों का चिन्ह करने के लिए भूल भूलैया का एक अन्य प्रयोग देखिए। इस भूल भुलैया में चूहा तब तक भोजन नहीं पाता जब तक वह कई मोडों से न गुजरे। हर मोड़ पर वह चिन्हों को देखता है और उसकी प्रत्याशा (भोजन पाने की) बढ़ती जाती है। जिन चिन्हों पर मार्ग बन्द होता है वह मस्तिष्क में बैठा लेता है और उस ओर जाना सीख लेता है।

2.2.2 अधिगम के व्यवहारवादी विचार

संपूर्ण शिक्षण अधिगम पर व्यवहारवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव पड़ा। व्यवहारवादियों द्वारा किए गए अधिगम से संबंधित अनुसंधान ने शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप देने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। समय के साथ हुए परिवर्तनों और अधिगम के क्षेत्र में हुए बाद के अनुसंधानों ने यह सिद्ध किया कि व्यवहारवादी शिक्षण व्यवस्था ने आदमी की आंतरिक सोचने व समझने की प्रक्रिया की उपेक्षा करके उसे केवल वातावरण के उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया देने वाला एक जीव बना दिया है, जबकि व्यक्ति तार्किक क्षमता से युक्त प्राणी है। व्यवहारवाद की इन्हीं कमियों ने रचनावादी दृष्टिकोण को जन्म दिया।

प्रमुख व्यवहारवादी सिद्धान्तों का विवरण निम्न प्रकार है :–

1. हल का सबलीकरण सिद्धान्त (Hull's Reinforcement Theory)

क्लार्क एल.हल (Clark L. Hull) ने इस अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन 1942 में किया जिसकी क्रमबद्ध व्याख्या उसकी दो पुस्तकों Principles of Behavior' (1943) तथा Essentials of Behaviour (1951) में देखने को मिलती है। हल एक इंजीनियर था जो आगे चलकर येल (Yale) विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान का प्रोफेसर हो गया। यही उसने

टिप्पणी

अधिगम प्रक्रिया की परिभाषात्मक शब्दों में व्याख्या की। उसने S.R. सूत्र के स्थान पर S-O-R (उद्दीपक–प्राणी–अनुक्रिया) सूत्र का विकास किया जिसके अनुसार अनुक्रिया उद्दीपक का परिणाम है जो प्राणी पर निर्भर करता है। अर्थात् अनुक्रिया, प्राणी तथा उद्दीपक दोनों पर निर्भर करती है। इस सिद्धान्त में हल ने चेतना (Consciousoss) की उपेक्षा करके केवल आदत पर बल दिया है। वह जीव की केवल आदत मात्र को ही अपने सिद्धान्त का केन्द्रबिन्दु मानता है। हल ने सबलीकरण की व्याख्या आवश्यकता की पूर्ति (Need Reduction) के रूप में की है। अतः इस सिद्धान्त को (Need Reduction Theory) भी कहा जाता है। अर्थात् व्यक्ति उसी कार्य को करना चाहता है जो उसकी आवश्यकता की पूर्ति करने में सहायक हो तथा जिसकी पूर्ति के पश्चात् ह्रास हो जाता है, उसकी प्रतिक्रिया के पीछे यही कारण होता है।

हल का यह S-R सिद्धान्त है परन्तु इसमें प्रभाव के नियम (Law of Effects) तथा पुनर्बलन के संप्रत्यय को मिलाकर उन्होंने एक नयी व्यवस्था दी है जो गणितीय (Mathmetical) तथा परीक्षणीय (Testable) है। कुछ लोग इसे क्रमबद्ध व्यवहार सिद्धान्त (Systematic Behaviour Theory) भी कहते हैं।

हल के सबलीकरण सिद्धान्त का मुख्य तत्व किसी आवश्यकता को दूर करना है। आवश्यकता की पूर्ति के लिये जो कुछ भी हम उस क्षण से पहले अनुभव कर रहे होते हैं वह हमारी अनुक्रिया से सम्बद्ध हो जाता है। यह सम्बद्ध अनुक्रिया आवश्यकता प्रतीत होने पर होती है। जैसे–मान लीजिये हमें कहीं से जलने की गंध आ रही है और जहां हम बैठे हैं, वहां पास से धुंआ भी उठ रहा है तो ऐसी स्थिति में हमारा आग लगने का भय, जिसके कारण हम कांपने लगते हैं तथा गंध को अच्छी तरह से सूंघने की प्रतिक्रिया ये सब गन्ध एवं धुएं से सम्बन्धित हो जाती है। यदि यह सम्बन्ध पहले से ही बना हुआ है तो यह और भी अधिक दृढ़ हो जाता है। हल के अनुसार, जब प्राणी में कोई आवश्यकता उत्पन्न होती है। जैसे–भूख, प्यास, नींद आदि तब उस आवश्यकता की पूर्ति के लिये व्यवहार किया जाता है। आवश्यकता से उत्पन्न तनाव की स्थिति को चालक (Drive) कहते हैं। यदि पूर्व अनुभव या आदत शक्ति (Habit Strength) से समस्या का समाधान नहीं होता है तो प्राणी अन्य अनुक्रियाएं करता है। अर्थात् सही अनुक्रिया अचानक उत्पन्न होगी और पुरस्कृत होने पर भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति की संभावना भी बढ़ जायेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि आदत शक्ति या S-R सम्बन्ध दृढ़ होना पुरस्कार या प्रबलन पर निर्भर करता है।

जब प्राणी चालक का अनुभव करता है जब चालक उसे किसी क्रिया को करने के लिये प्रेरित करता है। आवश्यकता पूर्ति के लिये प्राणी प्रयास करता है जो उसकी अनुक्रिया को सबल बना देती है। जैसे–भूख लगने पर प्राणी की अनुक्रिया बलवती हो जाती है। यहां भोजन सबलीकरण काम करता है। हल का यह सिद्धान्त थार्नडाइक तथा पॉवलाव के सिद्धान्तों से मिलता–जुलता है। यह सिद्धान्त प्रेरकों पर अधिक बल देता है। प्रेरणा मिलते ही क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

टिप्पणी

जब बालक को प्रेरणा के रूप में किसी कार्य के लिये पुरस्कार मिलता है तो यह उस कार्य को पुनः करता है। इस प्रकार पुरस्कार तथा प्रेरणा से उसकी विशिष्ट अनुक्रिया सबल या पुष्ट हो जाती है। यदि इस अनुक्रिया के लिये उसे प्रेरणा नहीं मिलती है तो अनुक्रिया को दोहराने की प्रवृत्ति निबल हो जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगम की प्रक्रिया एक चयनात्मक प्रक्रिया है। बहुत सी अनुक्रियाओं में से जो अनुक्रिया पुरस्कृत या संतोष प्रदान करने वाली होती है उसका चयन कर लिया जाता है। जो हमारे चालक के आवेग को कम कर तनाव को दूर करती है तथा हमें सबलीकरण की दशा प्राप्त होती है। इसीलिये इसे सबलीकरण का सिद्धान्त कहते हैं।

हल के अनुसार, उद्दीपक या समस्या (S) प्रस्तुत होने पर मस्तिष्क में उसके स्नायुविक चिन्ह (S) बनते हैं जिसके परिणामस्वरूप प्राणी में अव्यक्त अनुक्रिया (r) की प्रवृत्ति सक्रिय होती है जो बाद में बाह्य अनुक्रिया (R) के रूप में व्यक्त होती है। अब यदि अनुक्रिया पुरस्कृत की जाती है तो उद्दीपक (S) तथा अनुक्रिया (R) में साहचर्य स्थापित हो जाता है। हल द्वारा प्रस्तुत व्यवहार सम्बन्धी व्याख्या का चित्रण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

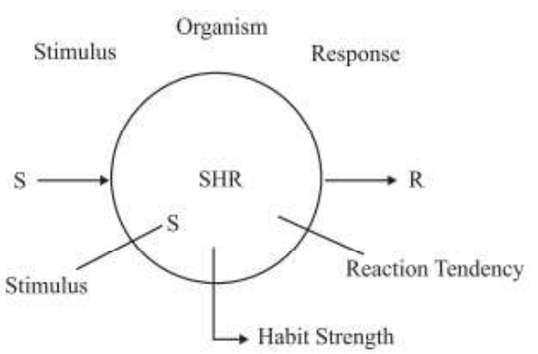

हल के अनुसार, व्यवहार के लिये चालक का होना अनिवार्य है क्योंकि यही आदत शक्ति को सक्रिय करता है (SH_R)। इस प्रकार स्पष्ट है कि चालक उद्दीपक का कार्य करता है जो प्राणी को लक्ष्य की ओर अग्रसर बनाता है तथा प्राणी आदतानुसार उसके प्राप्त करने का प्रयास करता है। अतः किसी परिस्थिति में प्रदर्शित होने वाली प्रतिक्रिया की शक्ति (Reaction Potential SE_R), आदत शक्ति (SH_R) तथा चालक (O) की अन्तःक्रिया पर निर्भर करेगी तथा इनमें से किसी एक के शून्य होने पर प्रतिक्रिया नहीं होगी (अर्थात् $SER=F(SH_R)\times(D)$ अपने सिद्धान्त की पुष्टि में हल ने एक प्रयोग किया। उसने एक दो खानों वाला पिंजरा लिया। इन दो खानों को विभाजित करने वाली दीवार के ऊपरी हिस्से में एक छेद था। अब चूहे को एक भाग में रखकर विद्युत धारा बहाई गयी। इस विद्युत धारा ने उद्दीपक का कार्य किया और चूहा इस उद्दीपक के प्रति अनेक प्रकार से प्रतिक्रियाएं करने लगा। वह पिंजरे की छड़ों को कटाने लगा और इधर–उधर उछल–कूद करने लगा। अन्त में, वह छेद में दूसरे खाने में कूदने में सफल हो गया। अब दूसरे खाने में बहुत धारा बहाई गई। ऐसा प्रयोग तब तक दोहराया गया

टिप्पणी

जब तक चूहे ने उस खाने में जिसमें विद्युत नहीं बह रही थी; तुरन्त कूदना न सीख लिया। इस प्रकार का सीखना, प्रभाव के नियम के कारण हुआ।

एक–दूसरे प्रयोग में बिजली का धक्का देने से दो सेकण्ड पहले एक घंटी बजाई गई। चूहा घण्टी की आवाज सुनकर शीघ्र कूदना सीख गया। वह विद्युत के प्रवाह से पहले ही कूदने लगा। यह सीखना अनुबन्धन के कारण हुआ। अग्रचित्र से इसे स्पष्ट किया जा सकता है–

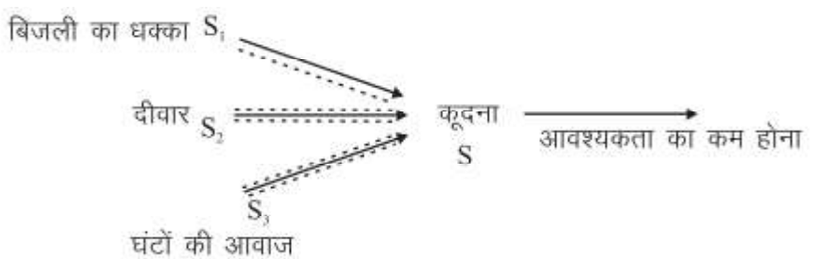

हल ने अनेक परीक्षणों के आधार पर यह भी प्रतिपादित किया कि यदि उत्तेजक और आवश्यकता के कम होने में अधिक समय लगता है तो प्रतिक्रिया की आदत कम होने लगती है। अर्थात् यदि घण्टी बजने तथा धक्के के बचने के समय में काफी अन्तर हो जाता है तो कूदने की प्रतिक्रिया जो घण्टी के प्रारम्भ में हो जाती है धीमी पड़ने लगती है। हल इस प्रकार से प्रतिक्रिया में कमी को नितार प्रबलन (Gradient reinforcement) कहता है। शिक्षा में इसका विशेष महत्व है। जब एक छोटा बालक अपनी अभ्यास की कापी दिखता है तो वह तुरन्त प्रशंसा की आशा करता है। यदि उसकी इस आवश्यकता की पूर्ति में समय लगता है तो वह कापी दिखाने में कतराने लगता है।

हल द्वितीयक प्रबलन (Secondary Reinforcement) का सिद्धान्त भी प्रतिपादित करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार S-R बन्धन किसी अन्य सामीप्य अथवा तत्कालीन S-R बन्धन को पुष्ट कर देते हैं। इस सिद्धान्त को समझाने के लिये पावलाव द्वारा कुत्ते पर किये गये प्रयोग पर ध्यान दिया जा सकता है। पावलाव ने भूखे कुत्ते के पास एक टिक–टिक सुनने के 30 सेकण्ड बाद खाना दिया गया। यह प्रयोग तब तक दोहराया गया। जब तक कुत्ता केवल आवाज से लार टपकाने लगा। इस प्रकार S-R बंध (टिक–टिक) सार टपकाना खाना देने से (आवश्यकता में कमी) पुष्ट हो गया। यह प्रारम्भिक पुष्टिकरण हुआ। इसके पश्चात् एक कालावर्ग कुत्ते के सामने 10 सेकण्ड तक रखा गया और फिर हटा लिया गया, फिर 15 सेकण्ड बाद मेट्रोनाम 30 सेकण्ड तक बनाया गया खाना नहीं दिया गया। कुछ समय बाद केवल काला वर्ण प्रस्तुत किया गया और देखा गया कि कुत्ते की लार टपकने लगी। इस प्रकार मेट्रोनाम के न केवल लार टपकाने की क्षमता बढ़ा दी वरन् एक प्रबलन की क्षमता भी प्राप्त कर ली।

रच (Ruch) 1970 महोदय ने हल के सिद्धान्त का संक्षिप्तीकरण इस प्रकार किया है–

1. यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि जो कुछ भी सीखा जाता है वह S-R के मध्य एक बन्ध है तथा सीखना आदत निर्माण (SHR) का परिणाम है।

टिप्पणी

2. S-R बंध में स्थायित्व के लिये पुनर्बलन आवश्यक शर्त है। प्राणी को दिया गया पुनर्बलन उसके चालक तथा मानसिक तनाव को कम करता है।
3. S-R बन्ध में तेजी धीरे–धीरे लायी जाती है जो आगे चलकर व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाता है।
4. प्राणी ने कितना सीखा है इसकी व्याख्या हल ने अपने 16 Postulates के माध्यम से की है। वे तत्व जो अधिगम को प्रभावित करते हैं, वे हैं चालक (D), पुनर्बलक (Reinforce K) थकान (Fatigue) तथा प्रभाव की मात्रा (Amount of effect) हल ने अन्य अधिगम सिद्धान्तों से अलग हटकर निम्न प्रत्ययों पर अलग विचार रखता है–

(1) आवश्यकता (Need)–जब किसी आवश्यकता का उदय होता है तो प्राणी उसे कम करने का प्रयास करता है। इसीलिये हम इसे Need reduction Theory कहता है।

(2) चालक (Drive)–प्रत्येक आवश्यकता से एक चालक जुड़ा होता है जैसे पानी की आवश्यकता प्यास, खाने की आवश्यकता भूख, आराम की आवश्यकता नींद आदि। इन चालकों को शान्त किये बिना कोई भी प्राणी किसी कार्य को करने के लिये प्रेरित नहीं किया जा सकता है।

(3) पुनर्बलन (Reinforcement)–हल की दृष्टि में पुनर्बलन उद्दीपक के समान है। जो अनुक्रियाओं (R) की सम्भावनाओं को बदलने की क्षमता रखता है तथा इन उददीपकों का सम्बन्ध जैविक चालकों से जुड़ा रहता है।

(4) अधिगम विहीन व्यवहार (Unlearned Behaviour)–इस प्रकार के व्यवहार उच्च स्तरों की अपेक्षा निम्न स्तरों पर बहुतायत में देखने को मिलते हैं। अधिगम एक ऐसा ढांचा है जो इस प्रकार के व्यवहारों द्वारा निर्मित होता है। हल ने इसे SUR से सम्बोधित किया है अर्थात Stimulus Unlearned Response Connection.

(5) उद्दीपन (Stimulus)–हल की मान्यता है कि अनुक्रियाएं मात्र Physical Stimuli से बन्धन में नहीं बंधती बल्कि इन उद्दीपकों के न्यूरल प्रभावों (Neural effects) से भी अनुबन्धित रहती है। इस प्रकार अधिगम इस Capital S का परिणाम है।

(6) अनुक्रिया (Response)–हल मानता है कि अनुक्रिया तथा वास्तविक अनुक्रिया में अन्तर होता है। इसलिये इसे S-R बंध का SHR के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जहां H आदत है। हल के अनुसार SHR में परिवर्तन ही अधिगम है।

(7) अधिगम एवं निष्पादन (Learning and Performance)–अधिगम तथा निष्पादन में अन्तर है। निष्पादन कई प्रकार के तत्वों से प्रभावित हो सकता है। जैसे–आवश्यकता, चालक आदि लेकिन अधिगम केवल एक ही तत्व से प्रभावित होता है और वह यह कि किसी प्रतिक्रिया विशेष को कितनी बार पुनर्बलित किया गया है अर्थात् मात्र पुनर्बलन पर।

टिप्पणी

उपरोक्त प्रत्ययों के सन्दर्भ में हल के सिद्धान्त को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

"Connection between stimulus and response is not enough for learning. Some Kind of reinforcement is a must to establish this connection. Once this Connection is established, drive is reduced."

हल ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या 16 अभिधारणाओं (Postulates) के आधार पर की है, जो निम्न है–

अभिधारणा–1 (Postulate-1) : (Afferant stimulus Interation): उद्दीपन से स्नायु प्रवाह उत्पन्न होता है जो मस्तिष्क से प्रभावक (effector) तक पहुंचता है। उद्दीपन के हट जाने के बाद भी कुछ सेकण्ड तक उसका प्रभाव कायम रहता है। इस प्रभाव को हल के शब्दों के उद्दीपन चिह्न करते हैं। इसी उद्दीपन चिह्न से गतिवाही स्नायु प्रतिक्रिया उत्पन होती है। हल ने परम्परागत S–R सूत्र की S–S–R के साथ में प्रस्तुत किया है।

अभिधारणा–2 (Postulate-2) : हल के अनुसार व्यवहार किसी एक उद्दीपक के द्वारा नहीं बल्कि अनेक उद्दीपनों का परिणाम है।

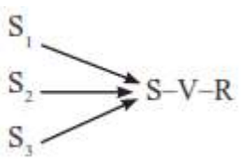

अभिधारणा–3 (Postulate 3) : (Primary Motivation or Drive) : हल के अनुसार प्रत्येक प्राणी में कुछ जन्मजात प्रतिक्रियाएं होती हैं जैसे : पलक झपकना, आंसू टपकना आदि। यदि एक क्रिया आवश्यकता को पूरा करने में असफल होता है तो दूसरी क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। दूसरी असफल हो जाने पर तीसरा प्रारम्भ होती है। जैसे–करंट प्रवाहित होने पर चूहा कभी उछलता है। कभी पिंजरा काटने की कोशिश करता है और अन्ततः सुराख में से भाग निकलता है। और इस प्रकार चालक ह्रास (Drive Reduction) हो जाता है।

अभिधारणा–4 (Postulate 4) (Law of habit Formetion)—1 : किसी प्रतिक्रिया को सीखने के लिये आदत एवं चालक ह्रास आवश्यक है। प्रतिक्रिया के बार–बार होने से आदत शक्ति (SHR) बढ़ती है।

अभिधारणा–5 (Postulate 5) : (Stimulus Generalization)–अनुकूलित उद्दीपनों से मिलती–जुलती प्रतिक्रिया जब दूसरे उद्दीपनों के प्रति भी कम होने लगती है तो इसे उद्दीपन सामान्यीकरण कहते हैं तथा आदत शक्तियां दूसरे उद्दीपनों के साथ भी उसी प्रकार जन्म लेती है।

अभिधारणा–6 (Postulate 6) : उद्दीपन क्रिया प्रणोदन की शक्ति के अनुसार बढ़ती है जैसे–प्यास से कण्ठ एवं मुख सूख जाते हैं।

टिप्पणी

अभिधारणा–7 (Postulate 7) : (Reaction Potential) : किसी समय विशेष में सीखी गई प्रतिक्रिया के होने की संभावना को प्रतिक्रिया सम्भाव्यता (Reaction Potintial-SER) कहते हैं। यदि चालक शून्य है तो प्रतिक्रिया भी शून्य होगी।

अभिधारणा–8 (Postulate 8) : कभी–कभी कार्य करते–करते प्राणी को उसे न दोहराने की प्रवृत्ति जन्म ले लेती है। इसे प्रतिक्रियात्मक अवरोध (Ip) कहते हैं।

अभिधारणा–9 (Postulate 9) : (Inhibitory Potential) : क्रिया करते समय एक विशेष अवस्था के बाद क्रिया न करना ही लाभप्रद है। यह अनुकूलित अवरोध (SI_R) कहलाता है।

अभिधारणा–10 (Postulate 10) : अवरोध समानता (SE_R) के कारण ही एक प्रतिक्रिया एक समय में उत्पन्न होता है दूसरे में नहीं।

अभिधारणा–11 (Postulate 11) : SI_R से SE_R की मात्रा को बढ़ाना चाहिये।

अभिधारणा–12 (Postulate 12) :

प्रभावी प्रतिक्रिया सम्भाव्यता = अवरोध सम्भाव्यता + प्रतिक्रिया अवसीमा

$$\overline{SE_R} = SO_R + SI_R$$

SO_R यदि SE_R से अधिक होगा तो प्रतिक्रिया नहीं होगी।

अभिधारणा–13 (Postulate 13) : हल के अनुसार प्रभावी प्रतिक्रिया सम्भाव्यता SE_R जितनी अधिक होगी अव्यक्तता उतनी ही कम होगी।

अभिधारणा–14 (Postulate 14) : विलोप तथा प्रतिरोध का निर्धारण शाब्दिक प्रभावी प्रतिक्रिया सम्भाव्यता द्वारा होता है।

अभिधारणा–15 (Postulate 15) : अनुकूलित प्रतिक्रिया की मात्रा प्रभावी प्रतिक्रिया सम्भाव्यता SE_R के साथ परिवर्तित होती है। प्राणी के मुंह से कितनी बार निकलेगी यह बात SE_R पर निर्भर करेंगी।

अभिधारणा–16 (Postulate 16) : यदि एक ही परिस्थिति में दो या दो से अधिक प्रतिक्रियाएं हो तो वह क्रिया चलेगी जिसमें SE_R अधिक होगी।

शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications)

हल के सबलीकरण सिद्धान्त का शैक्षिक महत्व इस प्रकार है–

1. यह सिद्धान्त बालकों की आवश्यकता पूर्ति पर बल देता है जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अध्ययन के लिये प्रेरित होते हैं।
2. यह सिद्धान्त पुरस्कार एवं दण्ड के महत्व पर प्रकाश डालता है। अधिगम प्रक्रिया में पुरस्कार का नियमित तरीके से प्रयोग करना चाहिये।
3. यह सिद्धान्त आदत निर्माण हेतु अत्यधिक उपयोगी है।
4. अधिगत की प्रक्रिया सार्थकता चालक को शान्त करते हैं। अगर यह शान्त हो जाता है तो बाले स्वतः ही प्रेरित होते हैं।

टिप्पणी

5. द्वितीयक पुनर्बलन (Secondary Reintorcement) भी प्रेरक का कार्य कर सकते हैं। जैसे–एक बच्चा जानता है कि वह दो रुपये में टॉफी खरीद सकता है तो वह दो रुपये प्राप्त के लिए कुछ कर सकता है।

   इस प्रकार से ये दो रुपये द्वितीयक पुनर्बलन के रूप में कार्य करते हैं।

6. हल ने अधिगम की व्याख्या अंकात्मक रूप में की है। उसने बताया है कि प्रतिक्रिया करने के बाद पुरस्कार देने में ज्यादा विलम्ब नहीं करना चाहिये।

7. कृत्रिम पुरस्कारों को भी छात्रों को कक्षा में प्रेरित करने के लिये पुनर्बलन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

8. हल अपने सिद्धान्त के आणविक रूप (Mole Culor Form) को ही स्वीकार करता है। वह टालमैन की भांति उसका समग्र रूप स्वीकार नहीं करता।

9. हल ने अपने सिद्धान्त में अभिप्रेरणा को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वह किसी उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया को अपनाने में अभिप्रेरणा का उपयोग आवश्यक समझता है।

10. हल के अनुसार उपयुक्त अनुक्रिया में ध्येय झुकाव (Goal Gradient) या पुनर्बलन झुकाव बहुत अधिक प्रभाव डालता है। ध्येय झुकाव के कारण जीव में तनाव उत्पन्न होता है जो ध्येय की पूर्ति होने तक बना रहता है।

11. हल अपने सिद्धान्त में स्थिरीकरण एवं दृढ़ीकरण के लिये अभ्यास को महत्व देता है। इस प्रकार हल और थार्नडाइक के विचारों में समानता परिलक्षित होती है।

12. छात्रों में अनुशासनहीनता की समस्या Need Reduction का आधार है। इस प्रकार शिक्षाविद् छात्रों की आवश्यकताओं को पहचानकर तथा इसको कमकर इस समस्या का हल निकाल सकते हैं।

13. कक्षा शिक्षण की दृष्टि में उद्दीपन सामान्यीकरण (Stimulus Generalization) का अपना अलग ही महत्व है।

सीमायें (Limitations)–उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त बल के सिद्धान्त की कुछ सीमायें भी हैं जो निम्न हैं–

1. कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस आधार पर इस सिद्धान्त की आलोचना की है कि प्राणी कुछ बातें कष्ट पाकर भी सीखता है फिर हल का पुनर्बलन सर्वमान्य कैसे हो सकता है?

2. हल अपने सिद्धान्त में प्रधान पुनर्बलन (Primary) की चर्चा तो स्पष्ट रूप से करता है परन्तु गौण (Secondary) पुनर्बलन की चर्चा के सम्बन्ध में वह मौन हो जाता है।

3. इस सिद्धान्त का एक मुख्य दोष यह है कि यह सीखने को सीखने को प्रयास एवं त्रुटि विधि तक ही सीमित रखता है।

टिप्पणी

4. हल सकारात्मक प्रेरणा पर बल न देकर निषेधात्मक प्रेरणा पर बल देता है। बालक विद्यालयों में इस कारण नहीं जाते कि उन्हें जाना ही है बल्कि वे वहां कुछ सीखने जाते हैं और कुछ कौतूहल एवं खेल के वशीभूत होकर जाते हैं।
5. यह सिद्धान्त बाह्य प्रेरणा पर अधिक बल देता है जिसके कारण यह उच्च अधिगम के लिये उपयुक्त नहीं है। स्व–प्रेरणा अधिगम में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है।
6. Need reduction तथा पुनर्बलन में अन्तर कर पाना आसान नहीं बल्कि भ्रामक है।
7. इसी प्रकार द्वितीयक चालक (Secondary drive) तथा द्वितीयक पुनर्बलन में विभेद कर पाना मुश्किल कार्य है।
8. इसी प्रकार उच्चस्तरीय अनुबन्धन (High order conditioning), द्वितीयक पुनर्बलन (Secondary reinforcement) तथा द्वितीयक चालक (Secondary drive) में अन्तर कर पाना सहज नहीं है।
9. इस सिद्धान्त में वैज्ञानिक भिन्नताओं के महत्व पर बल नहीं दिया गया है। इसी कारण इसका स्वरूप यांत्रिक हो गया है। संक्षेप में, हल ने इस सिद्धान्त को देकर एक ऐसा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र पैदा किया है जिसमें खोज के अनेक अवसर हैं। उसने अपने

सिद्धान्त के माध्यम से मनोवैज्ञानिक तथ्यों को अपने ही ढंग से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह उसकी अनोखी विशेषता है। इसी कारण उसके सिद्धान्त की वस्तुनिष्ठता बनी हुई है तथा यही कारण है कि हम हल के इस सिद्धान्त के महत्व की अवहेलना नहीं कर सकते।

2. गुथरी का सामीप्य (सानिध्य) सिद्धान्त (Guttide's Contiguity Theory)

ई.आर. गुथरी (ER. Guthrie) (1886–1959) जो वांशिगटन विश्वविद्यालय से सम्बन्धित थे तथा स्किनर एवं थार्नडाइक के समकालीन लेकिन विचारधारा में थोड़े भिन्न/उन्होंने वाटसन के समान इस सिद्धान्त को जन्म दिया। गुथरी ने यहां भी वाटसन के 'Law of Frequency' से असहमति व्यक्त की। वस्तुतः गुथरी ने सामान्य रूप से वाटसन के व्यवहार से सम्बन्धित विचारों की व्याख्या की लेकिन अधिगम के विषय में विशेष रूप से चर्चा की। उन्होंने बिल्लियों पर अनेकों प्रयोग किये। उन्होंने सिद्ध किया कि S-R अनुबन्ध के लिये एक प्रयास ही काफी है लेकिन अभ्यास इसमें सहायक अवश्य है।

गुथरी ने अपनी पुस्तक 'Psychology of Learning' में सीखने के लिये समीपता का होना जरूरी है और इसीलिये उनके इस सिद्धान्त को 'Contiguity Theory' कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार S-R के मध्य सामायिक समीपता (Temporal Contiguity) अधिगम की आधारभूत शर्त है।

गुथरी मानता है कि एक बालक वही सीखता है जो वह करता है। गुथरी ने प्रेरणा के सम्बन्ध में कोई अलग से विचार नहीं दिया है। उसके लिये उद्दीपन ही प्रेरक

टिप्पणी

प्रेरक है। प्रोत्साहन आन्तरिक भी हो सकता है। अतः एक अध्यापक को उस स्थिति में अपने छात्रों को नहीं पढ़ाना चाहिये जब वे अपनी दुनिया में खोये हों या जब अध्यापक छात्रों को ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सफल न हो। गुथरी इस बात पर बल देता है कि प्राणी अपनी मांसपेशियों के फैलाव तथा ग्रन्थियों के रसाव द्वारा विभिन्न प्रकार के उद्दीपनों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इन विशिष्ट प्रकार की प्रतिक्रियाओं को वह 'Movements' कहता है। गुथरी के अनुसार कोई भी कार्य इन Movements की एक शृंखला है जो समीपता के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। उदाहरण के रूप में 'टहलने की क्रिया' (Walking) को लिया जा सकता है। जिसमें विभिन्न प्रकार के Movements व Senses एक साथ कार्य करती हैं। गुथरी ने इसलिये थार्नडाइक के सिद्धान्त को नकार दिया क्योंकि वह Acts से सम्बन्ध रखता था न कि Movements से।

इस प्रकार देखा जाये तो गुथरी का सिद्धान्त यान्त्रिक ढांचे का प्रतिनिधित्व करने वाला सिद्धान्त है। गुथरी का निष्कर्ष है कि प्राणी अधिगम परिस्थिति में समस्या का समाधान करने के लिये विशिष्ट गतियां (Specific Movements) को सीखता है न कि कार्य (Act) सीखता है। जिस गति में लक्ष्य की प्राप्ति होती है प्राणी भविष्य में भी उस परिस्थिति में उसी प्रकार गति करता है। अर्थात् प्राणी के व्यवहार में रुढ़िवादिता (Stereotype) आ जाती है। गुथरी का यह भी कहना है कि उद्दीपक (लक्ष्य) एवं अनुक्रिया में समीपता बढ़ने से अधिगम की मात्रा बढ़ती है अन्यथा घटती है। समीपता से S और R के साहचर्य दृढ़ होते हैं। आगे दिये गये चित्र में रेखाओं की चौड़ाई दृढ़ होते हैं। आगे दिये गये चित्र में रेखाओं की चौड़ाई सम्बन्धों की प्रगाढ़ता दिखाई गई हैं इसके अतिरिक्त S और R के मध्य साहचर्य एक ही बार में स्थापित हो जाता है और बाद के प्रयासों में उसकी पुनरावृत्ति मात्र होती है। यदि अनुक्रिया के साथ ही साथ उद्दीपक (लक्ष्य) का भी प्रदर्शन होता है वो दोनों में पूर्ण साहचर्य स्थापित हो जायेगा।

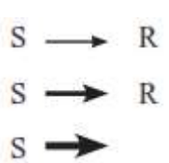

इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए गुथरी ने कहा है कि ''सीखना आवश्यक रूप से जन्मजात अथवा अर्जित प्रतिक्रियाओं को दूसरे अथवा प्रतिस्थापित उत्तेजकों की ओर विस्तारित करने की क्रिया है।''

शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications)

गुथरी के इस सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता इस प्रकार है–

1. गुथरी साहचर्य समीपता सम्बन्धी S-R सिद्धान्त के प्रतिपादकों में सबसे अग्रणी माने जाते हैं। उन्होंने वाटसर के 'आवृत्ति सिद्धान्त' को नकारते हुए 'Principle of Postermity' का सिद्धान्त दिया जिसके अनुसार श्रेणी में उद्दीपक से जुड़ी अन्तिम प्रतिक्रिया ही महत्वपूर्ण होती है।

टिप्पणी

2. गुथरी ने यह कहते हुए कि थार्नडाइक अपने सिद्धान्त में 'Acts' की बातइ करते हैं न कि 'Movements' की, उसने थार्नडाइक के सिद्धान्त को भी नकार दिया।
3. गुथरी का सिद्धान्त सबसे सहज है। उसने 'Over Stimulus' तथा 'Over responses' के महत्व को बल दिया गया है।
4. गुथरी के सिद्धान्त में 'Annoyers', Satisfiers तथा Reinforcement के लिये कोई स्थान नहीं दिया गया है।
5. गुथरी के समय में ही टॉलमैन तथा हल द्वारा विकसित सिद्धान्तों ने प्रेरणाओं पर पर्याप्त बल दिया लेकिन गुथरी ने नहीं। गुथरी के विचार से उद्दीपक ही प्रेरक है। उदाहरणार्थ–जब स्कूल, शिक्षक या अन्य चीजों के प्रति विद्यार्थी के मन में भय व्याप्त हो जाता है जो वह इन चीजों से पलायन करने के लिये बाध्य हो जाता है। दूसरी ओर, यदि शिक्षक अपने छात्रों को 'feel good' महसूस करता है तो इसका अर्थ यह है कि वह अपने विद्यार्थियों में स्कूल तथा अधिगम के प्रति रुचि उत्पन्न करने का प्रयास कर रहा है।
6. प्रारम्भ में गुथरी का यह सिद्धान्त 1935 में पावलाव व वाटसन के सिद्धान्तों पर आधारित था लेकिन उसने पुनर्बलन के महत्व को पूरी तरह से नकार दिया था।
7. गुथरी का यह सिद्धान्त व्यवहारवादियों के दृष्टिकोण से छात्रों की बुरी आदतों को दूर करने में पर्याप्त सहायक माना जाता है। गुथरी के 'extinction', Punishment' व दूसरे प्रत्ययों ने शिक्षा 'extinction', सिद्धान्तों पर सार्थक प्रभाव छोड़ा है।

सीमाएं (Limitations)

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त इस सिद्धान्त की कुछ सीमाएं भी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. यह सिद्धान्त शोधकर्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल नहीं रहा।
2. जब यह सिद्धान्त के आधार पर विशिष्ट दशाओं में परिणामों के आधार पर अधिगम की विभिन्न प्रक्रियाओं की व्याख्या सम्भव नहीं है।
3. इस सिद्धान्त के आधार पर विशिष्ट दशाओं में परिणामों के आधार पर अधिगम की विभिन्न प्रक्रियाओं की व्याख्या सम्भव नहीं है।
4. व्यवहार को रूढ़िवादी मानना उचित नहीं है क्योंकि यह गत्यात्मक (dynamic) एवं परिवर्तनशील प्रक्रिया है।
5. यह कहना कि साहचर्य एक ही बार में स्थापित हो जाता है, उचित नहीं है।
6. मात्र सानिध्य ही नहीं प्रबलन भी अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण होता है।
7. इस सिद्धान्त में वैयक्तिक भिन्नताओं को उचित महत्व नहीं दिया गया है।

संक्षेप में, उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है यद्यपि कोई भी विचारधारा अधिगम के जटिल प्रत्यय को पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर सकती और न ही

कोई विचारधारा पूर्णतः गलत या महत्वहीन होती है, फिर भी, निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि गुथरी का यह सिद्धान्त अधिगम के विभिन्न पहलुओं को समझाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

टिप्पणी

इनके अलावा स्किनर पॉवलेव का सिद्धान्त भी इसी श्रेणी में आते हैं, इनका विवरण पहले दिया जा चुका है।

2.2.3 अंतर्दृष्टि का सिद्धांत और इसका महत्व

अंतर्दृष्टि अथवा सूझ के सिद्धान्त का प्रतिपादन गेस्टाल्टवादियों ने किया था। इसलिये इस सिद्धान्त को गेस्टाल्ट सिद्धान्त भी कहते हैं। गेस्टाल्ट सिद्धान्त एक जर्मन स्कूल की देन है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बाद में अमेरिका चले गये। गेस्टाल्ट स्कूल का जन्म सन् 1920 में हुआ था। इस स्कूल से सम्बन्धित व्यक्ति मेक्स वर्दीमर, कोहलर तथा कोफका है। वर्दीमर इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। और कोफका तथा कोहलर ने इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाने का कार्य किया है।

गेस्टाल्ट किसी व्यक्ति या स्थान का नाम नहीं है। यह जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है समग्राकृति या पूर्णाकार/पूर्णाकारवाद के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का आंशिक रूप से नहीं अपितु पूर्ण रूप में देखता एवं सीखता है। इसलिये कहा भी गया है कि सम्पूर्ण अथवा समग्र उसके खण्डों के योग की तुलना में बड़ा होता है। सांख्यिकी में विश्वास नहीं करता लेकिन समाकृतिका के सिद्धान्त को मानता है। साथ गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक वातावरण पर भी बहुत अधिक बल देता है।

सिद्धान्त का अर्थ (its meaning) – इस सिद्धान्त के अनुसार प्राणी जो कुछ देखते, सुनते या अनुभव करते हैं उसकी एक पूर्ण आकृति बनती है। गेस्टाल्टवादियों के विचार में एक गेस्टाल्ट या आकृति एक समग्र है जिसकी विशेषताओं द्वारा व्यक्ति जब किसी नवीन परिस्थिति में आता है या उसके समक्ष कोई समस्या तथा वह सम्पूर्ण परिस्थिति को समझ जाता है और तभी वह उसके अनुसार प्रतिक्रिया करता है। परिस्थिति को ठीक से समझ जाना ही उसकी सूझ का परिचायक है। प्रत्येक कार्य या क्रिया को सीखने में हमें सूझ का प्रयोग करना पड़ता है। जब हम किसी समस्या का हल सरलता से नहीं निकाल पाते तब हम सूझ द्वारा ही उसे हल करने का प्रयास करते हैं। किसी ऊंचे स्थान पर रखी मिठाई को देखकर बालक उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। परन्तु वहां उसका हाथ नहीं पहुंचता। ऐसी दशा में वह मिठाई प्राप्त करने के लिये सूझ से काम लेता है। वह आसपास की मेज या कुर्सी पर चढ़कर मिठाई प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार, थोड़े से स्थान में एक इंजीनियर अपनी सूझ से एक विशाल भवन निर्मित कर देता है तथा युद्ध स्थल पर भी सूझ ही काम लिया जाता है। विद्वान कोफका का कहना है कि सूझ में व्यक्ति हाथ–पैरों की अपेक्षा चिन्तन, तर्क तथा कल्पना शक्ति से अधिक काम लेता है। सम्पूर्ण परिस्थिति को समझना और फिर व्यवहार करना, अन्तर्दृष्टि या सूझ का परिचायक है। इस प्रकार सूझ में व्यक्ति का व्यवहार ध्येय निर्देशित होता है। वह अन्धाधुंध व्यवहार नहीं करता है। वास्तव में, अन्तदृष्टि तब पैदा होती है जब सीखने वाला कार्य में छिपे हुए सम्बन्ध साहचर्य को देख लेता है। कुछ लोग

टिप्पणी

इसे 'आहा' अनुभव भी कहते हैं। इसमें आप अनुभव करते हैं कि 'अब आ गया।'' उदाहरणार्थ–एक कवि महाशय बहुत देर से अपनी कविता को पूरी करने में जुटे हैं लेकिन लाख सोचने पर भी उन्हें कोई सटीक पंक्ति याद नहीं आ पा रही है। अन्त में वे मायूस से थक–हारकर सो जाते हैं। लेकिन नींद आंखों में कहां? अचानक रात्रि के किसी प्रहर में उन्हें वह पंक्ति याद आ जाती है और वे तुरन्त उछलकर बैठ जाते हैं और पेन उठाकर अपनी कविता पूरी करने में जुट जाते हैं। यही आहा अनुभव है।

अंतर्दृष्टि से सीखना तथा प्रयत्न एवं भूल से सीखने की विधि का अन्तर समस्या के सुलझाव तक पहुंचने के ढंग पर निर्भर करता है। यदि सुलझाव बहुत देर तक तथा बराबर प्रयास करते रहने से मिलता है तो यह प्रयत्न एवं भूल की विधि है और यदि सुलझाव यकायक मिलता है तो यह अंतर्दृष्टि की विधि है। बिल्ली पर किये गये थार्नडाइक के प्रयोगों में कोलहर को यह संदेह हुआ कि बिल्ली को पिजड़े से बहुत देर तक इसलिये हाथ–पैर मारने पड़ते हैं क्योंकि पिंजड़े की पूरी परिस्थिति उनकी समझ में नहीं आती। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार जीत को परिस्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान होने पर वह अंतर्दृष्टि से उसमें से सुलझाव निकाल सकता है। परन्तु कोहलर ने कुत्तों, मुर्गियों, बन्दरों और चिम्पेजिंयो पर प्रयोग करने के लिए कुछ सरल समस्यायें बताईं।

कोलहर का प्रयोग (Kohler's Experiment)–अपने एक प्रयोग में कोलाहर के सुलतान नाम के भूखे वनमानुष को एक कमरे में बन्द कर दिया तथा कमरे की छत से केलों का गुच्छा इस तरह से लटका दिया कि वह उछल कर उन गुच्छे को प्राप्त न कर सके। इस कमरे में लकड़ी के कुछ छोटे–छोटे बड़े खाली बक्से भी रख दिये गये थे। सुल्तान के जैसे ही केले को देखा उसने उछल–कूद कर जाने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहा। घटकर वह एक कोने में बैठकर ध्यानपूर्वक कमरे का निरीक्षण करने लगा। उसकी निगाहें लकड़ी के बाक्स पर पड़ी। वह कहां से उठा और बक्से को लाकर केलों के सीध के नीचे फर्श पर रखा। अब उस बक्स पर चढ़कर उसने केले रखने का प्रयास किया किन्तु फिर असफल रहा।

सुल्तान पुनः सोच की मुद्रा में बैठ गया। यकायक उसकी आंखों में चमक उत्पन्न हुई और उसने फुर्ती के साथ तीनों बक्सों को एक के ऊपर एक रखा तथा कूदकर उनके ऊपर चढ़ गया। अबकी बार वह केला प्राप्त करने में सफल हो गया। इस प्रकार व अन्तर्दृष्टि या सूझ से केला प्राप्त करना सीख गया।

अपने इस प्रयोग में थोड़ा–सा सुधार करके कोहलर ने एक अन्य प्रयोग सुल्तान नामक चिम्पांजी पर किया। इस प्रयोग में कोलहर ने सुल्तान को (जो सभी चिम्पांजियों में सबसे अधिक बुद्धिमान था) एक पिंजडे में रखा तथा कुछ केले पिंजड़े से बाहर रख दिये जो सुल्तान की पहुंच से परे थे। दो बांस की छड़ियां भी पिंजड़े में रख दी गई थीं। छड़ियां खोखली थीं तथा इतनी छोटी थीं कि उनमें से कोई भी सीधे केलों तक नहीं पहुंच सकती थीं। हां, यह व्यवस्था अवश्य थी कि दोनों छड़ियों को आपस में किसी तरह जोड़ा जा सकता था। सुल्तान, प्रयास एवं त्रुटि में उलझा रहा तथा केलों तक पहुंचने के लिये कभी एक छड़ी को उठाता तो कभी कभी दूसरों की। काफी प्रयास कर चिम्पांजी

टिप्पणी

थक हारकर पिंजड़े के कोने में रखे बॉक्स पर निष्क्रिय सा बैठ गया। कुछ समय बाद उसने दोनों छड़ियां उठाईं और उनसे लापरवाही से खेलने लगा। खेल के दौरान उसने एक–एक छड़ी को अपने दोनों हाथों में इस प्रकार पाया कि उनसे आपस में एक लम्बी रेखा बनती प्रतीत हुई। उसने तुरंत पतली छड़ को मोटी छड़ के मुंह में धकेल दिया तथा इस प्रकार बनी लम्बी छड़ी को लेकर केलों की ओर बढ़ाया तथा उन्हें अपनी ओर खींच लिया। दूसरे प्रयास में उसे केलों तक पहुंचने में कम समय लगा। इस प्रकार, कोहलर ने सिद्ध किया कि तत्परता और सूझ से इस समस्या का हल निकाला गया न कि मात्र प्रयास एवं त्रुटि से। कोहलर ने चिम्पांजी के अतिरिक्त एक प्रयोग छोटी लड़की पर भी किया जो मात्र 25 महीने की थी। इस लड़की ने कुछ सप्ताह पूर्व ही चलना सीखा था। कोहलर ने इस लड़की से करीब दो मीटर दूरी पर एक खिलौना रख दिया।

खिलौने के दूसरी ओर एक बाधा भी उत्पन्न कर दी गई अर्थात् सन्दूक आदि रख दिया गया। खिलौने को देखकर उस लड़की ने उसे लेना चाहा लेकिन बाधा देखकर सहम गई। कुछ देर वह फर्श पर यूं ही लेटी रही। फिर धीरे से जिसकी कुछ हंसी और बाद में सन्दूक के एक ओर घूमकर उस खिलौने तक पहुंच गई। इस प्रयोग द्वारा भी सूझ–बूझ के महत्व पर प्रकाश डाला है। ऑलपोर्ट महोदय ने भी प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि वनमानुष की अपेक्षा मानव शिशुओं में सूझ–बूझ अधिक होती है। उन्होंने नर्सरी स्कूलों के 44 बच्चों पर परीक्षण किये। इन बच्चों की आयु 19 माह से लेकर 49 माह तक थी। उसने भी सुन्दर–सुन्दर खिलौनों को अलमारी के ऊपर रख दिया तथा अलमारी तक पहुंचने के सभी साधन भी उपलब्ध करा दिये। बच्चों ने इन साधनों का प्रयोग कर खिलौने प्राप्त कर लिये।

सिद्धान्त के नियम (Its Principles)

अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ पूर्णाकार के मूल में निहित होती है और इस सूझ की कसौटी है–किसी क्षेत्र की समग्र व्यवस्था के सन्दर्भ में समस्या के पूर्ण निराकरण का अभिव्यक्त होना। पूर्णाकारवाद के कुछ प्रमुख नियम इस प्रकार हैं–

1. **संरचनात्मक** (Law of Contrast)–गेस्टाल्टवाद के इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने की प्रक्रिया को उस समय पूरा माना जाता है जब अधिगम प्रक्रिया निश्चित स्वरूप अभिव्यक्त होता है। इस नियम का तात्पर्य यह है कि समग्र हमें सबसे पहले दिखाई पड़ता है। इसी कारण कभी–कभी चित्र के छोटे–मोटे दोष की ओर देखने वाले का ध्यान नहीं जाता। यदि आप प्रयास करके याद करें तो भी आपको अपने चिर परिचित चेहरों में आंख, नाक आदि की अलग–अलग विशेषतायें याद नहीं आयेगी जब तक कि आपने जानबूझकर उनकी ओर ध्यान न दिया हो। इसका कारण यह है आपने समग्र चेहरे को एक साथ देखा है, चेहरे के विशेष अंगों की ओर ध्यान नहीं दिया है।
2. **समानता** (Law of Similarity)–इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक एक–दूसरे के समान होते हैं वे आसानी से समूहबद्ध या संगठित हो जाते हैं। अर्थात्, जो वस्तुएं समान आकार की होती हैं, सूझ में उनका पूर्णाकार रूप उसी प्रकार का

टिप्पणी

होता है। यह समानता किसी भी प्रकार की हो सकती है, जैसे–आकार, रंग, चमक आदि। समान विचार आसानी से जुड़ जाते हैं और इसीलिये एक वस्तु दूसरी वस्तु का आभास आसानी से करा देती है। उदाहरणार्थ–फोटो से किसी की याद तुरन्त ताजा हो जाती है। एक व्यक्ति को देखकर तुरन्त उसके दोस्त की भी याद आ जाती है।

3. **समीपता** (Law of Proximity)–इस नियम के अनुसार उद्दीपक के वे अवयव जो एक–दूसरे के समीप होते हैं। वे उस समीपता के कारण उप–समूहों में संगठित हो जाते हैं और व्यक्ति इन्हें एक संगठित रूप में देखता है अर्थात् समान आकार वाली वस्तुएं एक समूह के रूप में आसानी से देखी जाती है। उदाहरण के तौर पर एक त्रिभुज तथा वृत्त की समीपता का उदाहरण इस नियम को समझने लिये पर्याप्त हैं।

4. **समापन** (Law of Closure)–इस नियम के अनुसार जब किसी उद्दीपक के अवयव एक–दूसरे से आच्छादित अथवा घिरे हुए होते हैं जो इस प्रकार घिरे हुए भागों का संगठन या समूहीकरण हो जाता है और हम इनका ज्ञान एक आकृति विशेष के रूप में करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस नियम के अन्तर्गत किसी एक समस्या पर ध्यान लगाना होता है। दूसरे, बन्द आकृतियां खुली आकृतियों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक स्थायी होती है। साथ ही ये समूह का आकार भी शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है।

5. **निरन्तरता** (Law of Continuity)–इस नियम के अनुसार उद्दीपक के जिन अवयवों में निरन्तरता होती है वो निरन्तरता के कारण आसानी से समूहबद्ध या संगठित हो जाते हैं और व्यक्ति इन्हें एक उद्दीपक के रूप में ही देखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि निरन्तरता के इस नियम के अनुसार स्वयं के सदृश्य वस्तुओं से प्रत्यक्षीकरण के सम्बन्ध आसानी से स्थापित होते हैं। उदाहरण के तौर पर वे अनुभव जो एक के बाद एक एकत्रित होते रहते हैं, आसानी से एक–दूसरे का समरण दिलाते रहते हैं, जैसे–एक पके हुए आम को देखकर उसके पीछे खाद एवं मनमोहक सुगन्ध का हमें सहज ही ज्ञान हो जाता है अथवा स्याही की दावत का विचार आते ही हमें पेन का समरण हो आता हैं निरन्तरता के आधार पर ही सातत्य का नियम बना है।

सूझ द्वारा सीखने की विशेषताएं (Its Characteristics) – सूझ द्वारा सीखने की निम्न विशेषताएं हैं–

1. सूझ यकायक (All of a sudden) होती है।
2. अन्तर्दृष्टि समस्यात्मक परिस्थिति पर निर्भर रहती है।
3. सूझ में बुद्धि से काम लेना पड़ता है। यही कारण है कि मनुष्यों व उच्च श्रेणी के पशुओं में ही सूझ होती है।

टिप्पणी

4. अन्तर्दृष्टि मानवीय क्षेत्र में अनुभव के साथ बढ़ती है।
5. अन्तर्दृष्टि के मूल में प्रयास एवं त्रुटि (Trial and Error) रहती है।
6. जब तक समस्या का पूर्ण रूप से प्रत्यक्षीकरण नहीं होता, अन्तर्दृष्टि सम्भव नहीं है।
7. एक बार अन्तर्दृष्टि द्वारा समस्या का समाधान हो जाने पर उसकी पुनरावृत्ति अत्यन्त सरल हो जाती है।
8. अन्तर्दृष्टि द्वारा समस्या का समाधान हो जाने पर भविष्य में नवीन परिस्थितियों में इसे लागू किया जा सकता है।
9. अन्तर्दृष्टि में पूर्व अनुभव सहायक होते हैं।
10. सूझ द्वारा सीखनान स्पष्ट तथा स्थायी होता है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Theory)

इस सिद्धान्त की आलोचना के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं–

1. इस सिद्धान्त के नियमों के अनुसार प्रत्येक प्रकार का अधिगम नहीं किया जा सकता है, जैसे–लिखना, पढ़ना, बोलना आदि।
2. इस सिद्धान्त में बनाई गई अन्तर्दृष्टि पशुओं तथा बच्चों पर लागू नहीं होती, क्योंकि उनमें चिन्तन का अभाव रहता है, कभी–कभी यह भी देखने में आता है कि बालक भी अन्तर्दृष्टि का प्रयोग करते हैं।
3. यह सिद्धान्त अपने में पूर्ण नहीं है, क्योंकि प्रसन्न तथा भूल किसी न किसी स्तर पर आवश्यक है तथा हमारे पूर्व अनुभव भी हमें समस्या के समाधान अथवा सीखने में सहायता देते हैं।
4. अन्तर्दृष्टि पर भी बहुत–सी बातें प्रभाव डालती है, जैसे–शारीरिक क्षमता, आयु, वंशानुक्रम, वैयक्तिक विभिन्नतायें तथा अधिगम की व्यवस्थित दशायें आदि।
5. शेरिंगटन आधि विद्वानों ने इस बात पर भी जोर दिया है कि अचानक समस्या का समाधान संयोग की बात है, अन्तर्दृष्टि की बात नहीं है।

सिद्धान्त का शैक्षिक महत्व (Educational Implications)

अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ के सिद्धान्त का शिला के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस सिद्धान्त की उपादेयता को बनाये रखने की दृष्टि से अध्यापक को निम्न बिन्दुओं पर विचार करना चाहिये–

1. चूंकि छोटे बच्चों का मानसिक विकास अधिक नहीं हो पाता है। इस दृष्टि से उनके लिये प्रयत्न एवं भूल द्वारा सीखना उपयुक्त हो सकता है, लेकिन बड़े बच्चे, जिनका बौद्धिक विकास हो चुका होता है, सूझ द्वारा ही सीखते हैं।

टिप्पणी

2. पाठ्यक्रम के निर्माण में सूझ–बूझ या अन्तर्दृष्टि प्रक्रिया को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम के विभिन्न अंगों को एकीकृत किया जाता है। दूसरे शब्दों में, एकीकृत पाठ्यक्रम रखी सिद्धान्त के परिणामस्वरूप बनाया जाता है।
3. माता–पिता व अध्यापकों को चाहिये कि बालक के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से देखकर व समझकर ही उसके बारे में कोई धारणा सुनिश्चित की जायें। उसके किसी एक कार्य से ही उसे व्यक्तित्व का अनुमान लगा लेना मनोवैज्ञानिक एवं तर्क संगत नहीं होगा।
4. अध्यापक को चाहिये कि वह छात्रों को समस्या का पूरा ध्यान कराये। यदि समस्या के प्रति ज्ञान अपूर्ण है तो अन्तर्दृष्टि विकसित नहीं होगी। अतः यह आवश्यक है कि सार्थक पाठ पढ़ाये जायें। इसीलिये अब अक्षर ज्ञान की अपेक्षा शब्द ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है।
5. अध्यापक नवीन ज्ञान देते समय देख ले कि छात्रों का मानसिक तथा शारीरिक स्तर इस योग्य है भी या नहीं कि वे नवीन ज्ञान को प्राप्त कर सके। यदि उनकी आकांक्षा का स्तर सामान्य है तो वे सामान्य ज्ञान को ही भली–भांति ग्रहण कर पायेंगे।
6. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने के अन्तर्गत विद्यार्थी की विभिन्न मानसिक शक्तियों का विकास सम्भव है। जैसे–तर्कशक्ति, विचार शक्ति, कल्पना शक्ति आदि।
7. यह सिद्धान्त गणित, विज्ञान, संगीत, व्याकरण आदि विषयों के सीखने के लिये अधिक उपयोगी होता है। इन विषयों के अन्तर्गत ऐसी बहुत सी समस्याएं आती हैं जिन्हें केवल सूझ–बूझ से ही सुलझाया जा सकता है।
8. अन्तर्दृष्टि से सीखने में प्रेरणा का अत्यधिक महत्व रहता है। उद्देश्यों का स्पष्ट ज्ञान न होने पर छात्रों में अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं हो सकता। अतः अध्यापक उद्देश्यों को स्पष्ट करके छात्रों को अभिप्रेरित कर सकता है।
9. विद्यार्थियों के ध्यान को समस्या पर केन्द्रित करने हेतु शिक्षक को उनकी जिज्ञासाओं को यथावत् बनाये रखना चाहिये, क्योंकि जिज्ञासा के अभाव में सूझ का विकास नहीं हो सकता।
10. यह सिद्धान्त शिक्षण के दो प्रमुख सूत्रों 'पूर्ण से अंश की ओर' तथा 'सामान्य से कठिन की ओर' पर आधारित है।
11. यह सिद्धान्त यान्त्रिक तरीकों से सीखने का खण्डन करता है, जैसे–रटना, आदत बनाकर सीखना आदि।
12. छात्रों के पूर्वानुभवों के संगठन पर भी शिक्षक को ध्यान देना चाहिये, क्योंकि अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने में अनुभव अधिक सहायक सिद्ध होते हैं।

टिप्पणी

13. यह सिद्धान्त समस्या–समाधान विधि के प्रयोग पर बल देता है। बालकों की सूझ को विकसित करने के लिये उन्हें समस्या देकर उसका समाधान उन्हें स्वयं खोजने दिया जाये। साथ ही, उन्हें कुछ सुझाव, संकेत व प्रोत्साहन भी प्रदान किया जायें।
14. यह सिद्धान्त रचनात्मक कार्यों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध होता है। अतः छात्रों को रचनात्मक कार्य करने के लिये विशेष रूप से प्रेरित किया जाना चाहिये।
15. इस सिद्धान्त का अनुसन्धान के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धांत का प्रवर्तक किसे माना जाता है?
   (क) ब्रूनर (ख) गेने
   (ग) जीन पियाजे (घ) वाईगोत्सकी
2. अंतर्दृष्टि सिद्धांत को दूसरे किस सिद्धांत के नाम से जाना जाता है?
   (क) गेस्टाल्ट सिद्धांत (ख) संज्ञानात्मक सिद्धांत
   (ग) व्यवहारवादी सिद्धांत (घ) सामाजिक रचनावाद का सिद्धांत

2.3 पियाजे का ज्ञान क्रिया अधिगम का रचनावादी दृष्टिकोण एवं वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद

जीन पियाजे रचनावाद अधिगम प्रक्रिया के केंद्र में बालक को रखता है और इसके अनुसार शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में होती है। बाद में रचनावादी मनोवैज्ञानिक लेव वाईगोत्सकी (Lev Vygotsky) ने इस मान्यता को अस्वीकार किया कि बालक केवल वातावरण व मानसिक प्रक्रियाओं से सीखता है। वाईगोत्सकी ने सामाजिक रचनावाद विचारधारा की नींव रखी जिसके अनुसार अधिगम की प्रक्रिया में अधिगमकर्ता द्वारा अन्य सहपाठियों, शिक्षकों और वातावरण के साथ अंतःक्रिया महत्वपूर्ण होती है। वाईगोत्सकी के अनुसार अधिगम अंतःक्रियाओं पर आधारित होता है और सदैव सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण होता है। किसी भी बालक के अधिगम में उसके समाज और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार से रचनावादी दृष्टिकोण दो अलग विचारधाराओं में विभाजित हो गया। पहला संज्ञान रचनावाद जिसके समर्थक प्रसिद्ध विद्वान जीन पियाजे, ब्रूनर, गेने आदि रहे और दूसरा सामाजिक संस्कृतिवाद जिसके प्रवर्तक और समर्थक वाईगोत्सकी रहे।

टिप्पणी

रचनावाद की मान्यताएं

- अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है।
- अधिगम की प्रक्रिया समयबद्ध होती है।
- अधिगमकर्ता जितना अधिक जानता है उतना अधिक सीखता है।
- अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता सूचनाओं को एकत्रित करता है, उन पर विचार करता है, उनका उपयोग करता है और उनका अभ्यास करता है।
- अधिगमकर्ता अन्य अधिगमकर्ताओं एवं शिक्षक दोनों से सीखता है।
- अधिगम में प्रेरणा एक आवश्यक तत्व है जिससे अधिगमकर्ता की संवेदी सूचनाएं सक्रिय रहती हैं।

रचनावाद की विशेषताएं

रचनावाद की निम्न विशेषताएं हैं–

- रचनावाद के फलस्वरूप अनेक प्रकार की शिक्षण विधियों जैसे– सहयोगात्मक अधिगम, परियोजना विधि, खोज विधि, सहपाठी शिक्षण आदि का विकास हुआ है जो रचनावाद के सिद्धांतों के अनुरूप हैं।
- विद्यार्थियों को अपने अधिगम के लिए प्रेरित करना।
- विद्यार्थियों को सामूहिक गतिविधियों के लिए अभिप्रेरित करना।
- विद्यार्थियों को अधिगम की तैयारी से लेकर अधिगम के मूल्यांकन तक सक्रिय रूप से सम्मिलित रखना।
- विद्यार्थियों में जिज्ञासा को उत्पन्न करना और उसकी तृप्ति हेतु प्रयास कराना।

2.3.1 पियाजे का ज्ञान का रचनावादी दृष्टिकोण

लोग जानकारी को प्राप्त करने के लिए सक्रिय रूप से प्रयासरत रहते हैं और सीखने के लिए प्रेरित रहते हैं– पियाजे ने मनुष्यों को सक्रिय रूप में सीखने में लगे रहने वाले और आसपास की घटनाओं के वर्णनकारी के रूप में वर्णित किया है (ऑर्मरॉड, 1990)। स्वाभाविक रूप से उत्सुक होने के नाते, बच्चे सक्रिय रूप से जानकारी की तलाश करते हैं और माहौल में अपनी हरकतों के प्रभाव की समीक्षा करते हैं।

- **संज्ञानात्मक विकास व्यक्तियों के भौतिक और सामाजिक वातावरण के साथ मेलजोल का परिणाम है**– व्यक्ति पर्यावरण में हेरफेर करके योजनाओं को विकसित करते हैं। उदाहरण के लिए, वे सीख सकते हैं कि अन्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए कुछ वस्तुओं का उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अन्य लोगों के साथ उनके मेलजोल को समान महत्व दिया जाता है। पियाजे ने छोटे बच्चों का वर्णन अहंकारपूर्ण या आत्म केन्द्रित होने के रूप में किया है। सामाजिक संपर्क के माध्यम से, बच्चों को एहसास होने लगता है कि वे दुनिया का एक अद्वितीय परिप्रेक्ष्य रखते हैं।

टिप्पणी

- **संज्ञानात्मक विकास में ज्ञान का एक बढ़ता हुआ एकीकरण और व्यवस्था शामिल है**– समय बीतने के साथ–साथ बच्चे इस जानकारी का संग्रह करते जाते हैं कि दुनिया कैसे संचालित होती है और इस आधार पर वे अपने एक समग्र दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं। पियाजे का दृढ़ विश्वास है कि सुसंगत प्रणाली में प्रक्रियाओं को एकीकृत करना हर जीव की प्रवृत्ति है जबकि पर्यावरण के साथ तालमेल बिठाना एक बच्चे का आंतरिक रुझान होता है। संतुलन के लिए प्रयास करते रहना या स्वयं और पर्यावरण के बीच संतुलन के लिए प्रयास करना, यह मानवीय रुझान है। अनुकूलन में दो पूरक प्रक्रियाएं शामिल हैं – आत्मसात करना और समायोजित करना।
- **वे तरीके जिनमें लोग पर्यावरण के साथ तालमेल बिठाते हैं, वे लगातार बने हुए हैं**– पियाजे का मानना है कि लोगों का पर्यावरण के साथ तालमेल बिठाना और सीखना दो अपरिवर्तनीय प्रक्रियाओं का कार्य है– आत्मसात करना और समायोजित करना।
    - o आत्मसात करना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी वस्तु या घटना के साथ इस तरह तालमेल बिठाता है एक लगातार चली आ रही योजना होती है (ऑर्मरॉड, 1990)। यह मौजूदा योजना के अतर्गत नई वस्तुओं और अनुभवों को शामिल करने की एक प्रक्रिया है। आत्मसात में बच्चों की उस क्षमता को शामिल किया जाता है जिसमें वे किसी पूर्व परिचित वस्तु में कुछ नयापन जोड़ते हैं।
    - o एक मौजूदा योजना को संशोधित करने या एक नई योजना को बनाने के द्वारा नई घटना के साथ प्रक्रिया करना ही समायोजन करना कहलाता है (वूलफोक, 1998)। सीखने वाले को जब पता चलता है कि उसकी सोच का पर्यावरण की घटनाओं से खण्डन किया जा रहा है उसकी सोच की पुरानी पद्धति में पुनर्गठित होने का रुझान आता है। यह पुनर्गठन जो उच्च स्तर की सोच में परिवर्तित होता है वह समायोजन के रूप में जाना जाता है।
    - o एक योजना में समाने के लिए आत्मसात होने में व्यक्ति को पर्यावरण को संशोधित करने की आवश्यकता होती है– समझौते के अंतर्गत एक योजना को संशोधित करके पर्यावरण के अनुकूल बनाना होता है। पियाजे के अनुसार, घटनाओं (आवास) के एक परिणाम के रूप में व्यक्तियों के उनके मौजूदा (आत्मसात किए गए) ज्ञान के संदर्भ में ये दोनों प्रक्रियाएं साथ–साथ ज्ञान के संशोधन को स्थापित करते हुए चलती हैं।

उदाहरण के लिए, इस वाक्य पर विचार कीजिए, सिंगमंड फ्रायड का मानना है कि जो लोग स्वाभाविक रूप से संवेग–प्रधान (id-dominated) होते हैं उनमें आवेगी होने का रुझान पाया जाता है और वे व्यवहार में तर्कहीन हो जाते हैं। जब तक एक व्यक्ति

टिप्पणी

सिगमंड फ्रायड को जानता नहीं है और जब तक वह आईडी और तर्कहीन व्यवहार की अवधारणा से परिचित नहीं है, वह इस वाक्य के आशय को बहुत कम ही समझ सकता है। समझौते की स्थिति को प्राप्त होने के लिए आत्मसात होना, लगभग एक आवश्यक शर्त है। व्यक्ति को अनिवार्य रूप से नए अनुभव से स्वयं को संबंधित करने में सक्षम होना चाहिए।

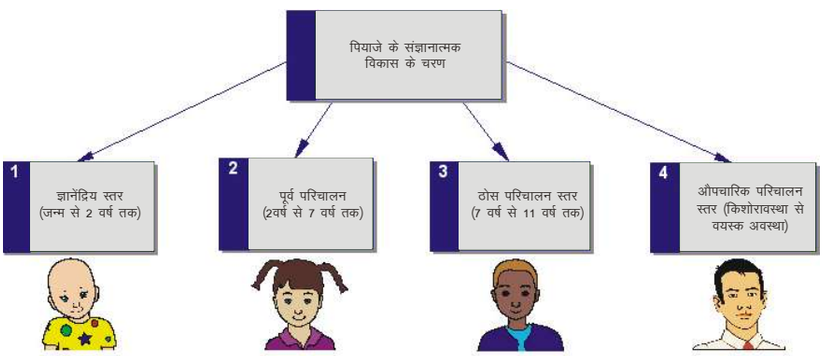

***चित्र** : पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के चरण*

तालिका : पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के चरण

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास–चरण		
स्तर	**लगभग आयु**	**विशेषताएं**
ज्ञानेंद्रिय–अनभूति	0 से 2 वर्ष	• नकल करना, याद करना और सोचने की शुरुआत। • वस्तुओं की पहचान की शुरुआत, छिपी होने पर भी उन वस्तुओं का अस्तित्व समाप्त नहीं होता। • प्रतिक्रियात्मक गतिविधि से लक्ष्य उन्मुख गतिविधि की ओर बढ़ना।
पूर्व–परिचालन	2 से 7 वर्ष	• धीरे–धीरे भाषा और प्रतीकात्मक रूप में सोचने की क्षमता का उपयोग विकसित करता है। • एक ही दिशा में तार्किक संचालनों को सोचने के लिए सक्षम। • अन्य व्यक्ति का दृष्टिकोण समझने में कठिनाइयां रहती हैं।
ठोस परिचालन	7 से 11वर्ष	• ठोस (तात्कालिक) समस्याओं को तार्किक तरीके से हल करने में सक्षम होता है। • संरक्षण के कानूनों को समझता है, उन्हें वर्गीकृत और क्रमबद्ध तरीके से जानने में सक्षम होता है। • कुछ विपरीत होने को समझता है।
औपचारिक परिचालन	11 वर्ष से वयस्क	• अमूर्त समस्याओं को तार्किक रूप से समझता है। • पहले से अधिक वैज्ञानिक चिंतन। • सामाजिक विषयों पर चिंतनशीलता का विकास व उनकी पहचान।

टिप्पणी

- **ज्ञानेन्द्रिय स्तर (जन्म से 2 वर्ष तक)**– इस चरण में, शिशु अपने पर्यावरण के साथ जुड़ते हैं और संवेदी अनुभवों या यांत्रिक कार्यों के माध्यम से सीखते हैं। जब बच्चा 9 महीने का हो जाता है तो वह अन वस्तुओं या घटनाओं को समझता है जिन्हें संभवतः बाद में सुनने या छूने का उसे अवसर न मिले अथवा उनका अस्तित्व न रहे।
- **पूर्व परिचालन चरण (2 साल से 6 या 7 साल तक)**– सरल समस्याओं के समाधान खोजने के लिए और जो चीजें मौजूद नहीं हैं, प्रतीक जैसे शब्दों या मानसिक छवियों का बच्चों द्वारा सोचने या बात करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इस चरण के दौरान, भाषा विकसित होती है और वस्तुओं और घटनाओं के बारे में सोचने की क्षमता में आंतरिक मानसिक योजना का विकास शामिल होता है। इस स्तर पर भ्रम का सामान्य बिंदु संरक्षण का सिद्धांत है। बच्चों को आसानी से यह समझ में नहीं आता है कि भले ही कुछ वस्तुओं या पदार्थ का आकार बदल जाता है, लेकिन कुल मात्रा वही रहती है। इस स्तर पर बच्चों का अहंकारपूर्ण या आत्म केन्द्रित होना भी आम है।
- **ठोस परिचालन चरण (7 से 11 वर्ष तक)**– इस स्तर पर, बच्चों के द्वारा संरक्षण की समस्याओं और अन्य स्थितियों के समाधान खोजने के लिए तार्किक चिंतन शुरू किया जाता है। हालांकि, वे ध्यान देने योग्य वस्तुओं और घटनाओं के बारे में तार्किक दृष्टि से ठोस कार्यवाही नहीं कर सकते हैं। उन्हें अमूर्त सूचनाओं और काल्पनिक विचारों के साथ तालमेल बिठाना कठिन लगता है।
- **औपचारिक परिचालन चरण (11 या 12 वर्ष से वयस्क अवस्था तक)**– इस स्तर पर, बच्चे अमूर्त तर्क की, काल्पनिक और तथ्य के विपरीत सूचना की क्षमता विकसित करते हैं। वे अनुपात की अवधारणा को भी समझना शुरू करते हैं, और अपने स्वयं की विचार प्रक्रिया के बारे में सोचने में सक्षम हो जाते हैं। वे उन विचारों की तार्किकता और गुणवत्ता का मूल्यांकन करने में भी सक्षम हो जाते हैं।

शैक्षिक निहितार्थ

- यह याद रखा जाना चाहिए कि कुछ छात्र, विशेष रूप से जो ग्यारह या बारह वर्ष से कम आयु के होते हैं, वे कुछ विचारों को, विशेष रूप से अमूर्त और काल्पनिक विचारों को समझने में सक्षम नहीं हो पाते।
- छात्रों की प्राकृतिक जिज्ञासा को बढ़ाने के लिए प्रयास करने चाहिए। उदाहरण के लिए, उन्हें नई–नई वस्तुओं के साथ प्रयोग करने देना चाहिए। पर्यावरण के अध्ययन के बारे में सीखने, विज्ञान की अवधारणाओं के अन्वेषण पर जोर दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी

- अलग–अलग बच्चों के योजना–तंत्र में उत्तेजकता के प्रति प्रतिक्रिया के आधार पर भिन्नता हो सकती है। इसलिए उन्हें वस्तुओं या घटनाओं के विषय में उचित योजना–तंत्र को विकसित करने में मदद करनी चाहिए। छात्रों की व्यक्तिगत जांच में ऑडियो विजुअल एड्स एक महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।
- छात्रों को कई अनुभवों को प्राप्त करने के अवसर दिए जाने चाहिए। उन्हें दूसरों के साथ अपनी राय, दृष्टिकोण और विश्वासों को साझा करने के अवसर भी प्रदान किए जाने चाहिए।
- यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि छात्र जिस नई अवधारणा को सीखने जा रहे हैं उसके साथ पूर्व ज्ञान को संबंधित कर सकें।
- प्राथमिक स्कूल के पाठ्यक्रम में संज्ञानात्मक क्रियाओं के विकास के लिए अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। ब्लॉक पेंटिंग को, उंगलियों से चित्रकला को , सब्जी से छपाई को, कहानी कहने की कला को और नाटकों के मंचन को गणित , पर्यावरण और भाषाओं के अध्ययन आदि की शिक्षा में शामिल किया जाना चाहिए।
- संज्ञानात्मक गतिविधि को प्रयोग करने की प्रक्रिया के माध्यम से उत्पन्न करना बहुत जरूरी है।
- कक्षाओं में सामूहिक प्रशिक्षण और अभ्यास करवाए जाने चाहिए। उदाहरण के लिए गणित के क्षेत्र में अलग–अलग नंबरों के संचालन के प्रयोग।
- विभिन्न विषयों के शिक्षण में ऐसे खेलों और गतिविधियों को भी शामिल करने की आवश्यकता होती है जो वर्गीकरण और अनुक्रमण के कौशलों के विकास के अनुभव प्रदान करें।

2.3.2 वाईगोत्सकी का सामाजिक रचनावाद

सामाजिक विकास के सिद्धांत को रूसी मनोवैज्ञानिक लेव वाईगोत्सकी (1896–1934) ने जन्म दिया था। वे रूसी क्रांति के साक्षी थे। 1962 में प्रकाशित होने से पहले वाईगोत्सकी का काम काफी हद तक पश्चिम के लिए अनजान था। वाईगोत्सकी का तर्क है कि सामाजिक संबंध का प्रभाव विकास से अधिक बलशाली होता है। चेतना और अनुभूति समाजीकरण और सामाजिक व्यवहार का अंतिम परिणाम हैं।

सामाजिक रचनावाद में इस बात पर बल दिया जाता है कि ज्ञान का निर्माण पहले एक सामाजिक वातावरण में होता है और फिर यह व्यक्तियों द्वारा अपनाया जाता है। सामाजिक रचनावादियों के अनुसार, ज्ञान बातचीत का उत्पाद है। सामाजिक संबंधों और अन्य लोगों के साथ भागीदारी ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण पहलू हैं। विशेष रूप से, दूसरों के विचारों को जानने से हमें अपने विचारों का मूल्यांकन करने और निखारने का अवसर मिलता है। इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले न केवल व्यक्तिगत ज्ञान का विकास करते हैं बल्कि समझ को भी साझा करते हैं। यदि पियाजे व्यक्तिगत अनुभूति पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो वाईगोत्सकी के अनुसार बच्चा सामाजिक और

टिप्पणी

सांस्कृतिक संदर्भ में बंधा होता है इसलिए वे मूल्यों की सहभागिता, सामाजिक संवाद और सामाजिक–सांस्कृतिक गतिविधि पर बल देते हैं। इसके अलावा वाईगोत्सकी का मानना था कि संस्कृति उसी को परिभाषित करती है जिसे समाज द्वारा आदर दिया जाता है और महत्वपूर्ण माना जाता है। इस प्रकार, भाषा, विश्वासों, और उस संस्कृति के कौशलों सहित संस्कृति दृढ़ता से शिक्षार्थियों के ज्ञान और समझ को आकार देती है (Santrock, 2011; McLeod, 2007)।

प्रमुख विषय

- **सामाजिक संवाद संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में एक निर्णायक भूमिका निभाता है** : जीन पियाजे के बाल विकास सिद्धांत (जिसमें विकास सीखने के पश्चात विकास होना जरूरी है) के विपरीत, वाईगोत्सकी का मानना है कि सामाजिक शिक्षा के पश्चात ही विकास होता है। उन्होंने कहा, 'बच्चे के सांस्कृतिक विकास में हर कार्य दो बार प्रकट होता है : पहला, सामाजिक स्तर पर, और बाद में, अलग–अलग स्तरों पर' सबसे पहले, लोगों के बीच (परस्पर–मनोवैज्ञानिक) और फिर बच्चे के अंदर (अंतर्मनोवैज्ञानिक)। (वाईगोत्सकी, 1978)।
- **तुलनात्मक रूप से अधिक जानकार (तुरूजा)** : किसी कार्य–विशेष, प्रक्रिया–विशेष या अवधारणा–विशेष के संदर्भ में, जिसके पास भी अधिक जानकारी है और जिसका योग्यता स्तर शिक्षार्थी से अधिक है वह तुरूजा हो सकता है। तुरूजा एक शिक्षक, कोच या एक बड़ी आयु का वयस्क हो सकता है। इसके अलावा, तुरूजा साथियों में से कोई, एक कम उम्र वाला व्यक्ति, यहां तक कि एक कंप्यूटर भी हो सकता है।
- **समीपस्थ विकास क्षेत्र (सविक्षे)** : समीपस्थ विकास क्षेत्र एक छात्र की वयस्क मार्गदर्शन में एक कार्य को करने की क्षमता के बीच की दूरी है, और/या यह कार्य सहकर्मी के सहयोग और छात्र की समस्या को स्वतंत्र रूप से हल करने की क्षमता के साथ होता है। वाईगोत्सकी के अनुसार, सीखना इस क्षेत्र के अंतर्गत होता है। वाईगोत्सकी (1978) समीपस्थ विकास के क्षेत्र को ऐसे क्षेत्र के रूप में देखता है जहां सर्वाधिक संवेदनशील अनुदेश या मार्गदर्शन दिए जाने चाहिए। इसके बल पर उन कौशलों का विकास करता है जिनके दम पर वह अपनी उच्च मानसिक क्रियाओं का विकास कर सकेगा। वाईगोत्सकी का यह भी मानना है कि साथियों के साथ संवाद कौशल और रणनीतियों को विकसित करने के लिए एक प्रभावी तरीका है। उनका सुझाव है कि शिक्षकों को सहकारी शिक्षण अभ्यास का उपयोग करना चाहिए क्योंकि इसमें कम सक्षमता वाले बच्चों का अधिक निपुण साथियों की मदद से समीपस्थ विकास के क्षेत्र के भीतर विकास होता है।

टिप्पणी

समीपस्थ विकास क्षेत्र (ZPD), एक व्यक्ति की सीखने की क्षमता की सीमा को दर्शाता है। जब कोई अधिक विशेषता वाला आवश्यक सुविधा प्रदान करता है तब यह सीखना यथार्थ रूप ग्रहण कर सकता है। सामाजिक बातचीत, विशेष रूप से अधिक जानकार के साथ होना, समीपस्थ विकास के क्षेत्र में क्षमताओं की वास्तविकता को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। समीपस्थ विकास क्षेत्र (ZPD) में, लोग संज्ञानात्मक विकास दर हासिल करने के लिए मनोवैज्ञानिक उपलब्ध उपकरण का उपयोग करना सीखते हैं।

- **मचान**– मचान की अवधारणा समीपस्थ विकास के क्षेत्र के साथ करीब से जुड़ी हुई है। इसका तात्पर्य एक अधिक जानकार द्वारा प्रदान की गई सहायता से है। यह शिक्षार्थी के वर्तमान कौशल स्तर के साथ समायोजित होता है। मचान व्यक्ति के परिचालन को उच्च स्तर तक ले जाने की सुविधा देता है। मचान की सुविधा जरूरतों के हिसाब से प्रदान की जाती है और जैसे–जैसे शिक्षार्थी क्षमता प्राप्त कर लेता है इसे धीरे–धीरे हटा दिया जाता है। ध्यान दें कि मचान में उपयुक्त सहायता प्रदान करना शामिल है और यह सीखने वाले के लिए कार्यों को करने के विचार पर आधारित नहीं है (जैसे, उत्तर या समाधान देना)। समर्थन संकेत देने के रूप में, अनुस्मारक के रूप में, प्रोत्साहन के रूप में, समस्या को चरणों में विभाजित करने के रूप में, निदर्शी उदाहरण देने के रूप में या कोई अन्य मदद करने के रूप में हो सकता है, ताकि छात्र स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ने में सक्षम हो सके।
- **ट्यूशन**– ट्यूशन तब होती है जब एक अधिक कुशल व्यक्ति (एक शिक्षक, एक अधिक जानकार सहकर्मी, कक्षा सहयोगी, या फिर कोई स्वयंसेवक) अपने से कम कुशल को तब अतिरिक्त सहायता प्रदान करता है जब उसे किसी कार्य को करने या पाठ को समझने में कठिनाई आ रही हो।
- **मनोवैज्ञानिक उपकरण**– मनोवैज्ञानिक उपकरण हमारे विचारों, भावनाओं, और व्यवहार के माध्यम होते हैं, जैसे कि भाषा, गिनती प्रणाली, प्रतीक प्रणाली, कला, लेखन, नक्शे, प्रौद्योगिकी आदि। इनमें से वाईगोत्सकी ने सबसे महत्वपूर्ण भाषा को माना है। इसे ड्रिस्कोल ने संक्षप में इस तरह बताया है–

  यह भाषा ही है जिससे हम वास्तविकता का निर्माण करते हैं। शब्दों से हम आकृतियों और अनुभवों को भी परिभाषित करते हैं। शब्दों के अभाव में सोचने, विचारों को संप्रेषित करने, अनुभवों को समझने आदि की दृष्टि से हमारे जीवन में बहुत अंतर आ जाएगा। शब्द हमारी चेतना का विस्तार करते हैं लेकिन हमें एक सीमा में भी बांधते हैं क्योंकि हम उन्हीं चीजों को पूरी तरह अनुभव कर सकते हैं जिनके लिए हमारे पास शब्द होते हैं। हम कैसे ग्रहण करते हैं, कैसे अनुभव करते हैं और कैसे कार्य करते हैं इसके लिए भाषा हमें एक संरचना प्रदान करती है।

टिप्पणी

संस्कृति के प्रभाव – बौद्धिक अनुकूलन के उपकरण

पियाजे की तरह, वाईगोत्सकी का दावा है कि शिशु बौद्धिक विकास के लिए बुनियादी सामग्री/क्षमताओं के साथ जन्म लेते हैं। जहां पियाजे यांत्रिक प्रतिक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं वहीं वाईगोत्सकी प्राथमिक मानसिक कार्यों का संदर्भ देते हैं–

- ध्यान,
- संवेदना,
- धारणा और
- स्मृति

अंततः, सामाजिक–सांस्कृतिक माहौल में संवाद के माध्यम से, इनका अधिक परिष्कृत और प्रभावी मानसिक प्रक्रियाओं / रणनीतियों के रूप में विकास होता है, जिन्हें उन्होंने उच्च मानसिक क्रियाओं के रूप में वर्णित किया है।

उदाहरण के लिए, छोटे बच्चों में स्मृति जैविक कारकों द्वारा सीमित होती है। हालांकि, संस्कृति इसे निर्धारित करती है कि हम किस प्रकार की स्मृति रणनीति का विकास करते हैं। वाईगोत्सकी बौद्धिक अनुकूलन के उपकरणों के संदर्भ देते हैं – ये बच्चों को अधिक अनुकूल / अधिक प्रभावी ढंग से बुनियादी मानसिक कार्यों का उपयोग करने में सहायता करते हैं, और ये उनकी संस्कृति द्वारा निर्धारित होते हैं (उदाहरण के लिए– स्मृति मनोविज्ञान, मानसिक नक्शे)।

इसलिए वाईगोत्सकी संज्ञानात्मक कार्यों को मान्यताओं, मूल्यों और संस्कृति, अनुकूलन के उन उपकरणों से प्रभावित होते देखते हैं जिनसे एक व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है, भले ही ये अकेले ही काम कर रहे हों और इसलिए ये सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से निर्धारित होते हैं। बौद्धिक अनुकूलन के ये उपकरण एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न हो सकते हैं।

वाईगोत्सकी और भाषा

वाईगोत्सकी के अनुसार (1962), भाषा संज्ञानात्मक विकास में निम्नलिखित भूमिकाओं को निभाती है–

- यह वह मुख्य साधन है जिसके द्वारा वयस्क बच्चों को जानकारी प्रेषित करते हैं।
- भाषा ही बौद्धिक अनुकूलन की एक बेहद शक्तिशाली उपकरण बन जाती है।

वाईगोत्सकी निजी बोलने को बच्चों की गतिविधियों और रणनीतियों की योजना के साधन के रूप में देखते हैं और इसीलिए यह उनके विकास में सहायक होती है। भाषा इसलिए सोचने/समझने के लिए एक गतिवर्धक तत्व है। भाषा के संबंध में ब्रूनर का मत भी मिलता–जुलता है।

टिप्पणी

वाईगोत्सकी का मानना था कि भाषा का विकास संचार उद्देश्यों के लिए सामाजिक संबंधों से होता है। बच्चे जो स्वयं से बात करते हैं जिससे उनकी सोच और कार्य भी निर्देशित होते हैं। बाद में, भाषा विचार और भीतरी भाषा बनकर आंतरिक रूप धारण कर लेती है। विचार भाषा का ही परिणाम है।

शैक्षिक निहितार्थ

- बच्चे के समीपस्थ विकास क्षेत्र (ZPD) का निर्धारण उसके आकलन का आधार होना चाहिए।
- शिक्षण बच्चे के समीपस्थ विकास क्षेत्र (ZPD)पर आधारित होना चाहिए।
- अधिक कुशल साथियों के मार्गदर्शन और समर्थन को सीखने की प्रक्रिया में उपयोग किया जाना चाहिए।
- निजी भाषण को आंतरिकीकरण और आत्म नियमन की सुविधा के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- सीखने के लिए सामग्री हमेशा एक सार्थक संदर्भ में रखी जानी चाहिए।
- कक्षा में वाईगोत्सकी के द्वारा बताए गए तात्विक उपकरण, सांस्कृतिक उपकरण और विकासशील आत्म नियमन के उपकरण शामिल किए जाने चाहिए। समीपस्थ विकास क्षेत्र (ZPD), मचान, निजी भाषण, साझा गतिविधियां, और खेलों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- सीखने के प्रारंभिक चरणों सामरिक मदद (Strategic help) दी जानी चाहिए, और जब धीरे–धीरे छात्र स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने में समर्थ होने लगें तब धीरे–धीरे इसे कम करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सामाजिक रचनावाद विचारधारा की नींव किसने रखी?

   (क) कर्ट लेविन (ख) लेव वाईगोत्सकी

   (ग) ऑसुबैल (घ) टॉलमैन

4. मनुष्यों को सक्रिय रूप में सीखने में लगे रहने वाले और आसपास की घटनाओं के रूप में वर्णित किसने किया है?

   (क) वाईगोत्सकी (ख) जीन पियाजे

   (ग) गेने (घ) इनमें से कोई नहीं

2.4 अधिगम के बारे में ब्रूनर और गेने के विचार

टिप्पणी

1950 के दशक के अंतिम भाग में जब व्यावहारिकतावाद का स्थान संज्ञानात्मक क्रांति ले रही थी उसमें जेरोम ब्रूनर की अग्रणी भूमिका थी। ब्रूनर के अनुसार, सीखना और अवधारणा बनाना सूचना प्रक्रिया की गतिविधियां हैं और वे हमारी जरूरतों को प्रतिबिंबित करती हैं। वे पर्यावरण की समझ को सरल करती हैं।

निःसन्देह अधिगम दो बल समूहों–आन्तरिक एवं बाह्य के अन्तःक्रिया का परिणाम है। आन्तरिक बल समूह में व्यक्ति की क्षमतायें आती हैं तथा बाहरी बल समूह में वातावरणीय दशायें। व्यक्ति की सीखने की सफलता इस आन्तरिक एवं बाह्य दशाओं के प्रभावी अन्तःक्रिया का ही परिणाम है। इस सम्बन्ध में अनेक अधिगम सिद्धान्त विकसित किये गये हैं जो यह बताते हैं कि इन तत्वों के पारस्परिक अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति क्या और कितना सीख पाता है। इस सिद्धान्त में गेने का अधिगम उद्दीपक स्थिति से है।

2.4.1 अधिगम के बारे में ब्रूनर के विचार

ब्रूनर ने प्रतिपादित किया कि लोग वस्तुओं और घटनाओं के बीच ज्ञात होने वाली समानता और अंतर के आधार पर दुनिया की व्याख्या करते हैं। जो वस्तुएं समान दिखाई देती हैं उन्हें उसी/आम श्रेणी में रखा जाता है। सीखने के इस सिद्धांत में प्रमुख चर वह कोडिंग प्रणाली है जिसमें शिक्षार्थी इन श्रेणियों का आयोजन करता है। वर्गीकरण के विचार पर आधारित ब्रूनर का संज्ञानात्मक सिद्धांत कहता है, 'समझना वर्गीकरण करना है, अवधारणा बनाना वर्गीकरण करना है और निर्णय करना वर्गीकरण करना है।'

वर्गीकरण की प्रक्रिया में दो चरण हैं– (क) अवधारणा गठन, जिसमें यह प्रारंभिक समझ होती है कि विभिन्न वर्ग और श्रेणियां हैं और वस्तुओं/घटनाओं के बीच गुणों का अंतर है। (ख) अवधारणा की प्राप्ति, जिसमें कोई उन विशेष गुणों को निश्चित करता है और यह भी निश्चित करता है कैसे वे किसी विशेष श्रेणी के अंतर्गत आते हैं और दूसरे उसमें नहीं आते।

ब्रूनर का विश्वास है कि सभी मानव संज्ञानात्मक गतिविधियों में श्रेणियां शामिल हैं।दुनिया से जुड़ी समझ बनाने के लिए यह निर्माण और प्रतिनिधित्वों की प्रक्रिया है। प्राप्त होने वाली जानकारी पूर्व मौजूदा श्रेणियों में आयोजित है या नई श्रेणियां ली जाती हैं। विकास के जिन चरणों का हम दुनिया का अर्थ समझने के लिए उपयोग करते हैं, ब्रूनर ने विकास के उन चरणों के अनुसार प्रतिनिधित्व के तीन प्रकारों की पहचान की है। इनमें से हर प्रकार का वस्तुओं और घटनाओं का प्रतिनिधित्व करने का अपना अनूठा तरीका है।

टिप्पणी

ब्रूनर द्वारा ज्ञात प्रतिनिधित्वों के प्रकार

प्रतिनधित्वों के प्रकार	प्रक्रिया	उदाहरण	प्रयोग
विधायी	मांसपेशियों में प्रतिनिधित्व (करना)	गाँठ लगाना	यांत्रिक कौशल
शिल्प संबंधित	वस्तुओं के लिए मानसिक छवियों का उपयोग	गांठें कैसी लगती हैं उनकी एक छवि रखना	संवेदी कौशल (वस्तुओं के मानसिक चित्र)
प्रतीकात्मक	प्रतीक प्रणाली का प्रयोग करना (सोचना, कारण खोजना)	गांठ के रूप और उसे बांधने की विधि का वर्णन करना	बौद्धिक कौशल (वस्तुओं के तत्व का ज्ञान)

पहला चरण विधायी चरण कहा जाता है, इसमें बच्चे की दुनिया का प्रतिनिधित्व उसकी तत्काल संवेदनाएं करती हैं और इसमें वह करने के माध्यम से सीखता है। इन यांत्रिक कार्यों में कुछ अनुक्रमिक गतिविधियां शामिल होती हैं जो एक निश्चित अवधारणाओं की योजना में एकीकृत होती हैं।

शिल्प रचना के चरण में मानसिक छवियों का उपयोग शामिल होता है जो कुछ वस्तुओं या घटनाओं का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व का स्वरूप सर्वाधिक जटिल प्रकार का होता है जिसमें हम सीखते हैं। इसमें ज्ञान को सांकेतिक शब्दों में बदलने के लिए कार्यों और छवियों को प्रतीकात्मक प्रणाली में बदलने की क्षमता शामिल है। शुरुआत में इनमें भाषा के प्रतीक और गणितीय संकेत रहते हैं।

खोज पर आधारित सीखना (Discovery Learning)

ब्रूनर ने स्कूलों में खोज के आधार पर सीखने के दृष्टिकोण का समर्थन भी किया है। उनका विश्वास है कि इससे छात्रों को विभिन्न श्रेणियों/वस्तुओं या अवधारणाओं के बीच संबंध को जानने में सहायता मिलेगी। यह ढांचा वर्तमान और अतीत/पिछले ज्ञान के आधार पर नए विचारों के निर्माण को एक प्रक्रिया के रूप में सीखने को बढ़ावा देता है। छात्र खुद के लिए तथ्यों और संबंधों की खोज करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं और जो उन्होंने पहले से सीखा है उसमें लगातार जोड़ते जाते हैं। स्कूल के पाठ्यक्रम में इस प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए एक सर्पिल ढंग से आयोजित किया जाता है, अर्थात वही विषय उम्र या कक्षा के बढ़ते स्तरों पर उत्तरोत्तर शिक्षण को सुदृढ़ करने के लिए पुनर्विकसित किए जाते हैं। (ब्रूनर, 1966)।

सीखे जाने वाले विषयों की संरचना को समझने के महत्व पर, सही समझ के आधार के लिए सक्रिय सीखने की जरूरत है इस पर और सीखने में प्रेरक तर्कों को महत्व दिए जाने पर, ब्रूनर की खोज आधारित सीखने की विधि ध्यान केंद्रित करती है। छात्रों को सक्रिय रूप से प्रमुख अवधारणाओं की खोज में शामिल किया जाना चाहिए, न कि शिक्षकों के स्पष्टीकरण को निष्क्रिय रूप से स्वीकार करना चाहिए। खोज विधि छात्रों को पाठ में शामिल होने के लिए प्रेरित करती है। सामान्य भाषण विधि से छात्र इसमें नहीं सीखते।

टिप्पणी

शैक्षिक निहितार्थ

- किसी विषय का पाठ्यक्रम सर्वाधिक बुनियादी समझ के द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि उपयुक्त सिद्धांतों के आधार पर उस विषय के लिए संरचना के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जा सके। पाठ्यक्रम के लिए उत्तरदायी संगठन जब तक संरचना के गठन की सुविधा नहीं देगा तब तक सीखना कठिन ही रहेगा और वह लंबे समय के लिए याद नहीं रह पाएगा।
- शिक्षा प्रदान करने का सबसे अच्छा क्रम है दृश्य–रूप में विषय को प्रस्तुत करना। ताकि बच्चा पहले उसे अनुभव कर सके, उसके बाद उसकी प्रतिक्रिया ठोस प्रस्तुति के लिए होगी, और अंत में वह प्रतीकात्मक रूप में प्रतिनिधित्व करेगा। उदाहरण के लिए जब छात्रों को भारी या हल्के वजन की अवधारणा समझानी हो तब उन्हें अवधारणा को समझने के लिए एक तराजू प्रदान की जा सकती है। उसके बाद उन्हें समझाने के लिए तराजू का चित्र दिखाया जा सकता है। इसके बाद उनसे हल्की या भारी वस्तुओं का वर्गीकरण करने के लिए कहा जा सकता है। तब वे सरलता से वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करते हुए लिख सकते हैं कि पत्थर रुई से भारी है।
- विषयों के आयोजन के लिए सर्पिल पाठ्यक्रम दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए ताकि उन्हें विभिन्न कक्षा–स्तरों के लिए विकसित और पुनर्विकसित किया जा सके। यह पाठ्यक्रम खोज विधि से सीखने के लिए आदर्श रूप से अनुकूल है।

2.4.2 अधिगम के बारे में गेने के विचार

गेने मानव अधिगम को एक क्रिया मानता है जो इन तीन तत्वों के एक साथ कार्य करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। यहां अधिगमकर्ता का पूर्व अधिगम आन्तरिक दशाओं (Internal Conditions) का कार्य करता है जो अधिगमकर्ता के पूर्व ज्ञान से अन्तःक्रिया (Stimulus) करता है। तथा इन दोनों–आन्तरिक एवं बाह्य अधिगम दशायें प्रतिक्रिया (Responses) के रूप में प्रकट करती है जो मानव व्यवहार का एक अंग होता है। उदाहरणार्थ–''सांप को देखकर भागना'' एक घटना है जिसमें दौड़ना या भागना प्रतिक्रिया है जो उद्दीपक (सांप) तथा सांप के बारे में व्यक्ति का पूर्व ज्ञान की अन्तःक्रिया का परिणाम है और यह तथ्य कि यदि सांप काट लेता है तो मनुष्य मर जाता है। गेने ने अधिगम घटना की व्याख्या करने के लिये एक सम्पूर्ण अधिगम सिद्धान्त विकसित किया है। वह यह बताना चाहता है कि अधिगम किस प्रकार होता है विशेषतः एक व्यक्ति नियमों एवं सामान्यीकरणों को किस प्रकार सीखता है। उसके इस सिद्धान्त को 'श्रेणीक्रम अधिगम' (Hierarchy of Learning) कहा गया है।

गेने ने अपने इस सिद्धान्त की व्याख्या विस्तार से अपनी पुस्तक 'The Conditions of Learning' (1970) में की है।

टिप्पणी

उसने आठ प्रकार के अधिगमों का उल्लेख किया है जो एक प्रकार से किसी जटिल व्यवहार को व्यवस्थित तरीके से सीखने के स्तर है। गेने के अनुसार अधिगम 'सरल से कठिन की ओर' ऐसे बढ़ता है जैसे हम पहली सीढ़ी से ऊपरी सीढ़ी तक पहुंचते हैं। उच्च स्तर का अधिगम तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि निम्न स्तर का अधिगम न हो गया हो। इस प्रकार उच्च स्तर का अधिगम उससे तुरन्त नीचे वाले अधिगम के ऊपर निर्भर करता है। वस्तुतः इस प्रकार का अधिगम व्यवहार के वर्ग या प्रकार से है। गेने ने इस प्रकार के अधिगम के आठ प्रकार बताए हैं जो 'सरल से कठिन' के क्रम में व्यवस्थित होते हैं। गेने ने इन आठ प्रकारों को अधिगम दशायें इसलिये कहा है क्योंकि इनमें से प्रत्येक एक–दूसरे से जुड़ी हुई है तथा एक स्तर का अधिगम करने के बाद ही दूसरे स्तर का अधिगम किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर समस्या समाधान में दक्षता प्राप्त करने की दृष्टि से कुछ नियमों पर महारथ हासिल करने के लिये सम्बन्धित प्रत्ययों का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रत्ययों के ज्ञान के लिये उसमें विभेदीकरण क्षमता होनी आवश्यक है। इसके लिये उसे चीजों के साथ शब्दों को जोड़ना आना चाहिये अर्थात् Verbal Association तथा Verbal Association निर्भर करती है Chaining या Combination पर और Chaining इस प्रकार Signal Learning देखते हैं कि अधिगम की ये आठ दशायें एक दूसरे से गहन रूप से जुड़ी हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता और न ही किसी एक की अनदेखी कर दूसरी उच्च अधिगम दशा पर पहुंचा जा सकता है। इसलिये इस सिद्धान्त को श्रेणीक्रम (Hierarchical Sequence) की संज्ञा दी गई है।

गेने द्वारा वर्णित अधिगम के आठ प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. चिन्ह अधिगम (Sign Learning)
2. उद्दीपन–अनुक्रिया अधिगम (Stimulus responses Learning)
3. शृंखला निर्माण (Chaining)
4. शाब्दिक संयोग (Verbal Association)
5. विभेद अधिगम (Discrimination learning)
6. प्रत्यय अधिगम (Concept learning)
7. समस्या–समाधान अधिगम (Rule Learning)
8. समस्या–समाधान अधिगम (Problem solving Learning)

1. **चिन्ह अधिगम** (Sign Learning)–इसे Classical Conditioning यह अधिगम का सबसे Learning प्रारम्भिक व्यवहार है। सभी प्रकारी के अधिगम का यह आधार हाता है। यह उस ईंट के समान है जो दीवार के बनाने के लिये आवश्यक है। इसका उदाहरण–पावलाव का वह प्रयोग है जिसमें घंटी की आवाज सुनकर कुत्ता लार टपकाता है। इस स्तर पर अनैच्छिक प्रतिक्रियाएं होती हैं यह सीखने का सबसे नीचे का स्तर है। चिन्ह अधिगम के अन्य उदाहरण है–आग से तुरन्त हाथ हटा लेना, सिग्नल पर लाल बत्ती देखकर तुरन्त वाहन रोक लेना, कुत्ते को देखकर बच्चे का भाग खड़े होना आदि। गेने के अनुसार इन उदाहरणों में लालबत्ती, खाना, कुत्ता आदि। उद्दीपक या Signal है तथा वाहन रोक देना, कुत्ते की लार टपकना, बच्चे का दौड़ना ये प्रतिक्रियाएं हैं।

टिप्पणी

2. **उद्दीपन–अनुक्रिया अधिगम** (Stimulus responses Learning)–यह दूसरे स्तर का सीखना है जिसके उदाहरण स्किनर के क्रिया प्रसूत अनुबन्धन (Operent Conditiong) पुष्टिकरण द्वारा पनपती है। इस प्रकार के अधिगम का प्रयोग Verbal Skills जाता है जैसे–एक बच्चा 'कुत्ता' कहना सीख जाता है जब उसे एक कुत्ते का चित्र दिखाया जाता है और उससे कहा जाता है कि चित्र देखकर वह 'कुत्ता' बोले। साथ ही, उसके सही बोलने पर उसे पुरस्कार भी दिया जाता है। प्रौढ़ों द्वारा विदेशी भाषाओं के शब्द इसी तरीके से सीखे जाते हैं। संक्षेप में, सीखने का यह स्तर 'Instrument या Operent Conditioning है।

3. **शृंखला निर्माण** (Chaining)–इसमें पहले से सीखे गये ै.त अनुबन्ध आपस में मिलकर एक नयी संरचना बनाते हैं। उदाहरणार्थ–बच्चा सबसे पहला 'कुत्ता' कहना सीखता है। फिर 'कुत्ता खाता', फिर 'कुत्ता खाता', फिर 'कुत्ते सड़क पर है' और इसी प्रकार से अन्य वाक्य सीखता है।

   Chaning दो प्रकार की होती है–Motor तथा Verbal। रिमोट से टी.वी. चालू करना या बन्द करना यह Motor Sequence का उदाहरण है तथा घर पर किसी मेहमान का स्वागत करना Verbal Sequence है। Verbal Chaining में पहले से सीखे गये दो या दो से अधिक S-R बन्ध जुड़ जाते हैं तथा उनमें से कोई एक याद आने पर दूसरा स्वतः याद आ जाता है। जैसे–मम्मी–डैडी, छोला–भठूरा आदि। Motor Chaining में बहुत सारी क्रियाओं को इस रूप में व्यवस्थित किया जाता है कि एक के काम में लेने पर स्वतः ही उसका सम्बन्ध दूसरी क्रिया से हो जायेगा। कार चलाना इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। जिसमें एक के बाद एक क्रिया स्वतः क्रम से होती रहती है।

4. **शाब्दिक संयोग** (Verbal Association)–इस प्रकार के अधिगम में किसी वस्तु को दिखाते समय हमें शाब्दिक भाषा का भी प्रयोग करना पड़ता है। उदाहरणार्थ–हम कोई चीज बालक को दिखाते हैं और कहते हैं यह एक बन्दर है। दूसरी बार जब बालक उसी चीज को या उसी के समान दूसरी चीज को देखेगा तो तुरन्त इसका नाम लेगा 'बन्दर'। इसी प्रकार पानी के लिये 'Water' तथा घंटी के लिये 'Bell' सीखना या एक ही भाषा के पर्यायवाची शब्द जैसे–कमल को कलम सीखना शाब्दिक संयोग के उदाहरण हैं। इसी प्रकार, जब बच्चा किसी वस्तु को देखकर 'कुत्ता' कहना सीख लेता है। फिर 'काला कुत्ता' कहना सीख लेता है तो हम कहते हैं कि उनमें तीन इकाइयों का शाब्दिक संयोग सीख लिया है। इस प्रकार, संक्षेप में, शाब्दिक संयोग के अन्तर्गत केवल शाब्दिक इकाइयों की शृंखला बनाना आता है।

5. **विभेद अधिगम** (Discrimination learning)–विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं के मध्य अंतर करना सीखना ही 'विभेद–अधिगम' कहलाता है।

   उदाहरणार्थ–एक बालक 'कुत्ता' (dog), पालतू कुत्ता (Pet dog) तथा सड़क का कुत्ता इनके मध्य अनतर करना सीख जाता है तो इसे विभेद–अधिगम कहेंगे। अर्थात् सदी शब्द का सही वस्तु के साथ सम्बन्ध जोड़ना ही 'विभेद अधिगम' कहलाता है। इसी प्रकार, एक नवजात शिशु सभी स्त्रियों को अपनी 'मम्मी' नहीं

टिप्पणी

कहता वह किसी एक स्त्री के प्रति ही विशिष्ट व्यापार करता है तथा दूसरी स्त्रियों को पूरी तरह से अनदेखी करता है। इसी प्रकार, बहुत सी बोतलों में से उस बोतल को वह आसानी से पहचान लेता है जिससे वह दूध पीता है। अतः ये सब उदाहरण विभेद–अधिगम का अर्थ स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार जब किसी एक उद्दीपन के प्रति विशिष्ट व्यवहार किया जाये तथा दूसरे उद्दीपनों की बिल्कुल अनदेखी की जाये या उन पर बिल्कुल भी ध्यान न दिया जाये तो इसे विभेद–अधिगम कहते हैं।

6. **प्रत्यय अधिगम** (Concept learning)–गेने के अनुसार व्यक्ति का किसी उद्दीपन की स्थूल विशेषताओं के बजाय सूक्ष्म (abstract) विशेषताओं जैसे–लम्बाई, चौड़ाई, वजन, आकार, रंग, आकृति आदि के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया व्यक्त करना प्रत्यय अधिगम कहलाता है। प्रत्यय किसी पदार्थ की उभयनिष्ठ विशेषताओं के आधार पर बनता है। उदाहरणार्थ–पेड़ कई प्रकार के होते हैं लेकिन आम के पेड़ हम उसी को कहते हैं जो कुछ विशेषता लिये होता है। इसी प्रकार, अंकों की शृंखला में सम तथा विषम संख्याओं की पहचान करना प्रत्यय अधिगम के अन्तर्गत आता है। इन संख्याओं में से सम तथा विषम संख्याओं को तभी आसानी से ढूंढ़ा जा सकता है जब हमें इन संख्याओं के प्रत्यय के बारे में स्पष्ट ज्ञान होगा।

7. **नियम–अधिगम** (Rule Learning)–इसमें किसी वास्तविक घटना या परिस्थिति की व्याख्या करने हेतु दो या दो से अधिक अवधारणाओं को मिला दिया जाता है। अवधारणाओं की शृंखला को नियम कहते हैं तथा इसका रूप इस प्रकार हो जाता है–'यदि × है तो y भी होगा, 'यदि पानी बरसा तो मैं भी जाऊंगा; यदि कुत्ता भूखा है और इसके सामने खाना लाया जाये तो यह लार टपकायेगा। आदि। यह कहा जाता है कि ज्ञान नियमों का क्रमबद्ध स्वरूप है तथा नियमों के अन्दर नियम को लेकर नियमतंत्र बनता है। यह कहा जाता है कि नियमों या सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रत्यय अधिगम के बाद ही होता है। ऐसा दो या दो से अधिक प्रत्ययों के मध्य लगातार एवं स्थायी सम्बन्ध के कारण होता हैं स्कूलों में प्राप्त होने वाला अधिगम अधिकांशतः इन नियमों, सिद्धान्तों व प्रणालियों पर ही केन्द्रित होता है।

8. **समस्या–समाधान अधिगम** (Problem Solving Learning)–समस्या समाधान अधिगम उच्च स्तर के नियमों का अधिगम है जिसमें पूरी परिस्थिति को समझने के लिए निम्न स्तर के दो या उससे अधिक नियमों को जोड़ा जाता है। इसके अन्तर्गत आन्तरिक घटनायें आती हैं जैसे–चिन्तन एवं सम्बन्धित अर्जित ज्ञान। जब कोई व्यक्ति किन्हीं नियमों तथा सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त कर लेता है। तो वह यह देखना चाहता है कि इनकी उपयोगिता क्या है। इस दृष्टि से वह इनका मूल्यांकन करता हे। यह मूल्यांकन उसकी जीवन की विविध समस्याओं को हल करने में सहायता प्रदान करता है। बिना इन नियमों या सिद्धान्तों को जान हम जीवन की समस्याओं का हल नहीं कर सकते और न हो सफलता प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ–एक छात्र जो पहली बार प्रतियोगी परीक्षा में

असफल रहने पर यह योजना बना रहा है कि परीक्षा में सफलता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है। समस्या–समाधान अधिगम का सटीक उदाहरण है।

शैक्षिक निहितार्थ

टिप्पणी

गेने के विचार से सीखने के अधिक सफल तरीके उस समय ही हो सकते हैं जब किसी व्यक्ति ने बहुत से विभिन्न प्रकार के शाब्दिक सम्बन्धों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया हो, S-R सीखने पर आधारित होते हैं। उसके अनुसार एक अवधारणा को सीखने की अनेक सम्भावनाएं उस समय होती है जब वह विभिन्न प्रकार के शाब्दिक सम्बन्धों से परिचित हो। विद्यार्थी नियमों को अधिक सरलता से उस समय समझ लेते हैं। जब उन्होंने उचित प्रत्यय अधिगम कर लिया हो। वे समस्या का हल करने में तभी अधिक सफल हो सकते हैं जब उन्होंने नियमों, सिद्धान्तों को बड़ी संख्या में ठीक से जान लिया हो तथा समझ लिया हो।

1. सीखने के कौशल – गेने पांच वर्गों में सीखने की पहचान करता है, ये हैं–
   (i) शाब्दिक सूचना दक्षता (Verbal Information Skill)
   (ii) बौद्धिक दक्षता (Intellectual Skill)
   (iii) गतिगामी दक्षता (Motor Skill)
   (iv) अभिवृत्तियां (Attitude) तथा
   (v) ज्ञानात्मक कौशल (Cognitive Strategies)

   प्रत्येक प्रकार का सीखना अलग तरीके से होता है। गेने की मान्यता है कि सीखना विद्यार्थी की आन्तरिक तथा बाह्य राशियों की अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप होता है। नीचे इन पांचों वर्गों का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है–

(i) शाब्दिक सूचना दक्षता –यह दक्षता सूचना के पुनः स्मरण से सम्बन्धित है। यह किसी भी विषय को याद रखने के लिये विकसित की जानी चाहिये।

(ii) बौद्धिक दक्षता –यह बहुत महत्वपूर्ण दक्षता है। इसमें वातावरण की धारणा, विभेद क्षमता, अवधारणाओं की समझ, विभिन्न वस्तुओं में सम्बन्ध का ज्ञान आदि सम्मिलित है। इसमें पढ़ने, लिखने, गणित आदि की योग्यतायें भी शामिल हैं।

(iii) गतिगामी दक्षता –ये दैहिक कुशलतायें हैं। इनमें दैहिक गतियों के निष्पादन को सम्मिलित किया जाता है। इसकी निम्नलिखित तीन विशेषतायें होती है–
   (a) Chain of Motor Response
   (b) Co-Ordination of eye hand movements
   (c) Organization of chains in to Complete response patterns –

   (iv) अभिवृत्तियां (Attitudes)–हमारी अभिवृत्तियां हमारी सीखने की अभिप्रेरणा पर गहरा प्रभाव डालती है।

   (v) ज्ञानात्मक कौशल (Cognitive Strategies)–इसके अंतर्गत सीखने वाले की चिन्तन, स्मरण व सीखने सम्बन्धी योग्यतायें आती हैं। कौशल को एक लम्बी अवधि में प्राप्त किया जाता है।

2. अधिगम अंतरण –अधिगम अंतरण उस स्थिति में होता जब एक परिस्थिति में सीखा गया कार्य दूसरी परिस्थिति में काम में आये। गेने (1970) ने दो प्रकार

टिप्पणी

के अंतरण की बात कही–Lateral तथा Vertical/Lateral अंतरण में किस स्तर का कार्य व्यक्ति ने सीखा है केवल उसी स्तर का वह दूसरी परिस्थिति में कर सकता है। उदाहरणार्थ, एक छात्र ने जिन शब्दों का अर्थ कक्षा में सीख लिया है। उन्हीं शब्दों को वह टी.वी. स्क्रीन पर आने पर पढ़ और समझ सकता है। यह S-R संयोग पर आधारित है। लेकिन जब छात्र अपने पूर्व ज्ञान के अंतर्गत सीखे गये ज्ञान से अधिक जटिल कार्यों को कर लेता है तो उसे टमतजपबंस अंतरण कहते हैं।

3. समस्या समाधान –गेने समस्या समाधान को कभी–कभी Rule-learning भी कहते हैं। ऐसा इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें पूर्व में सीखे गये दो या दो से अधिक नियमों को उच्चस्तरीय नियम की दृष्टि से मिलाया जाता है। गेने के अनुसार समस्या–समाधान पर्याप्त ज्ञान को सहेज कर रखने का प्रतीक है। गेने (1964) के अनुसार समस्या–समाधान दूसरे प्रकार के अधिगमों से भिन्न हैं क्योंकि समस्या–समाधान सामान्यीकरण एवं स्थानान्तरण की विशेषता से युक्त है। समस्या–समाधान में यह महत्वपूर्ण नहीं है कि किसी समस्या विशेष का हल ढूंढ़ा जाये बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि छात्र विभिन्न प्रकार की समस्याओं का हल ढूंढ़ने में प्रवीणता हासिल कर सके।
4. यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि किसी जटिल सिद्धान्त अथवा नियम को पढ़ाते समय अध्यापक को उसके विभिन्न उन–नियमों, निम्न स्तर के कौशलों तथा अवधारणाओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये और इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि छात्रों को उनमें दक्षता प्राप्त हो गई है।
5. शिक्षण देते समय हमें ध्यान रखना चाहिये कि विद्यार्थी कोई नया अन्तिम व्यवहार उस समय तक अर्जित नहीं कर सकता जब तक कि वह पूर्व अपेक्षित योग्यतायें विकसित नहीं कर लेता। शिक्षण सरल से जटिल की ओर होना चाहिये।
6. शिक्षण देने से पूर्व विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विभेद, तत्परता, योग्यताओं, क्षमताओं, रुचियों, दृष्टिकोणों, आवश्यकताओं, अभिप्रेरणा आदि के बारे में पर्याप्त सूचना प्राप्त कर लेनी चाहिये।

अपनी प्रगति जांचिए

5. गेने ने अपने सिद्धांत की व्याख्या अपनी पुस्तक 'The conditions of Learning' में कब की थी?

(क) 1940 (ख) 1950

(ग) 1970 (घ) 1990

6. गेने ने कितने प्रकार के अधिगमों का उल्लेख किया है?

(क) तीन (ख) चार

(ग) छह (घ) आठ

टिप्पणी

2.5 स्मृति, विस्मृति, विस्मृति के सिद्धांत, दीर्घ और अल्पकालिक स्मृति

स्मृति वह अभिलक्षण है जो संपूर्ण शिक्षण को रेखांकित करती है, व परावर्तन जिसका एक आवश्यक लक्षण है। एक संकुचित अर्थ में, यह प्रत्याहार एवं परिज्ञान को आच्छादित करती है।

पुनर्प्राप्ति सूत्र अवधारणा विस्मरण क्रिया के कुछ पहलुओं का बहुत ही सत्य सदृश्य कारण है। पुनर्प्राप्ति विफलता सिद्धांत के प्रस्तावकों के अनुसार, दीर्घ अवधिकाल से भी अधिक की सूचना के विस्मरण की व्याख्या हेतु क्षीणता अनुरेख के विचार का उपयोग करना अनावश्यक है। पुनर्प्राप्ति सूत्रों में परिवर्तन से विस्मरण क्रिया भंग हो सकती है, और, जैसे–जैसे समय व्यतीत होने के साथ सूत्रों में बदलाव होता है, स्मृतियां धीरे–धीरे और अधिक अप्राप्य हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, हमारे बचपन के वर्षों से संबंधित भौतिक सूत्र लुप्त हो जाते हैं, जैसे कि घर, और संपूर्ण पड़ोस भी हटा दिए जाते हैं।

किसी वृत्तांत के घटित हो जाने के कई वर्षों उपरांत भी किसी व्यक्ति के पास उस वृत्तांत की कोई स्मृति नहीं हो और मुख्यतया ऐसा तब घटित हो जबकि इस वृत्तांत का वर्णन किसी अधिकारिक व्यक्ति द्वारा किया गया हो, तो उस व्यक्ति को उस वृत्तांत के घटित होने की सत्यता के प्रति संदेह हो सकता है। ''स्मरण रखना'' (यानी कि, असत्य स्मृति का निर्माण करना) सामाजिक रूप से सम्मानजनक हो सकता है, मुख्यतया अकेले, अवनत, या उद्विग्न लोगों के लिए जो प्रायः ऐसे समूहों का निर्माण करते हैं।

2.5.1 स्मृति

व्यक्ति के जीवन में यादों का बहुत महत्व होता है। हर व्यक्ति कुछ बातों को हमेशा याद रखना चाहता है और कुछ बातों को हमेशा भूल जाना चाहता है। कई बार यह प्रक्रिया विपरीत हो जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में स्मृति का साथ एक सहचरी की तरह होता है। यहां स्मृति की महत्ता एवं विशेषताओं का अध्ययन किया जा रहा है।

स्मृति की महत्ता, अर्थ एवं परिभाषा

स्मृति हमारी कार्यक्षमता में अभिवृद्धि करती है। स्मृति हमें महत्वपूर्ण तथ्यों, विचारों, नामों, आदि, एवं अन्य सूचना के मदों को स्मरण रखने के योग्य बनाती है। वास्तव में, स्मृति एक व्यक्ति की सबसे उत्तम मित्र, मार्गदर्शक एवं दार्शनिक है। स्मृति के बिना, एक व्यक्ति अशुद्ध व अक्षम बन जाता है। स्मृति मस्तिष्क का वह प्रकार्य है जिसके आधार पर एक व्यक्ति अपनी गतिविधियों द्वारा अर्जित विचारों को अभिलेखित, प्रतिधारित एवं उत्पन्न करता है।

विद्यालय के निर्देशों का एक महत्वपूर्ण ध्येय विद्यार्थियों को विद्यालय काल एवं विद्यालय उपरांत दोनों की वर्तमान सहित भविष्य की समस्याओं का सामना करने के

टिप्पणी

लिए भविष्य में उपयोग हेतु विद्यालय में प्रदत्त ज्ञान को अर्जित एवं प्रतिधारित करने के लिए प्रेरित करने का है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यार्थीगण सहजता से, एक समयान्तर के पश्चात भी, अर्जित की गई सूचना को प्रतिधारित एवं प्रत्याहारित कर सकें इसलिए उचित कदम उठाये जाएं।

नीचे दी गई कुछ परिभाषाएं स्मृति में समाहित विभिन्न तत्वों की व्याख्या करती हैं–

1. जे.ए. एड्म्स (1967) के अनुसार, स्मृति प्रतिक्रिया हेतु सीखने की क्षमता है और समय गुजरने के साथ इसके बने रहने की दृढ़ता का प्रतिधारण परीक्षा द्वारा मापन किया जाता है। स्मृति ''किसी व्यक्ति की वह अवस्था है जो एक मानक प्रतिक्रिया के विशुद्ध रूप से घटित होने के लिए अभिक्षमता प्रदान करती है। एक प्रारंभिक अभिग्रहण सत्र होता है जिसमें व्यक्ति किसी उद्दीपन के प्रति एक विवेकपूर्ण प्रतिक्रिया करता है, तत्पश्चात जब तक मानक प्रतिक्रिया घटित नहीं होती है उस अवधि का समय प्रतिधारिता अंतराल कहलाता है।"
2. रायबर्न ने इस प्रकार व्याख्या की है कि, ''वह शक्ति जिसके द्वारा हम अपने अनुभवों को संचित करते हैं और अनुभवों के घटित होने के कुछ समय बाद उन्हें चैतन्यता के क्षेत्र में लाते हैं।
3. स्पीयरमेन का यह मत था कि, ''संज्ञानात्मक वृत्तांत घटित होकर रुचि को संस्थापित करते हैं जिसके कारण उनका पुनर्घटित होना सुगम हो जाता है।"
4. स्टाउट ने स्मृति को इस प्रकार परिभाषित किया है, ''वह मानसिक पुनः प्रवर्तन जिसमें अपने वास्तविक रूप से घटित होने के क्रम एवं तरीके में जहां तक संभव हो भूतकालिक अनुभव से संबंधित विषयों का पुनर्स्थापन किया गया हो।''
5. वुडवर्थ एवं मारकिस का कथन है कि, ''स्मृति एक मानसिक शक्ति है जिसमें पूर्ववर्ती शिक्षण को सीखना, प्रतिधारित करना एवं स्मरण रखना शामिल होते हैं।''

स्मृति उद्दीपन की अनुपस्थिति के उपरांत भी भूतकालिक अनुभव की पुनरूत्पत्ति है। स्मृति की व्याख्या निम्नानुसार की जा सकती है–

उद्दीपन–प्रतिक्रिया–एक अनुभव का उपार्जन–प्रतिधारण–समयांतर–प्रत्याहार।

वुड्वर्थ के अनुसार, स्मृति के चार प्रमुख तत्व इस प्रकार हैंः सीखना (उपार्जन), प्रतिधारण, प्रत्याहार एवं परिज्ञान।

सीखना : यह मस्तिष्क में विचारों का संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया है।

प्रतिधारण : यह एक मानसिक अनुभव के रूप में व्यक्ति के अवचेतन मस्तिष्क में भूतकालिक अनुभव के निर्वासन की प्रक्रिया है।

टिप्पणी

प्रत्याहार : यह विचारों के संबंध के आधार पर भूतकालिक अनुभव को मस्तिष्क में पुनः ताजा करने की प्रक्रिया है।

प्रत्याहार दो प्रकार का होता है– (क) स्वतःप्रवर्तित एवं (ख) ज्ञानाकृत।

स्वतःप्रवर्तित प्रत्याहार में, प्रत्याहार हेतु कोई प्रयास नहीं किया जाता है बल्कि अनुभव एवं विचार स्वतः चले आते हैं। ज्ञानाकृत प्रत्याहार में, कुछ प्रत्याहारित करने का प्रयास किया जाता है।

प्रत्याहार विचारों के संबंध पर आधारित है। यह विचारों का संबंध इन सिद्धांतों पर निर्भर करता है– (क) समानता का सिद्धांत (ख) विषमता का सिद्धांत (ग) संसक्ति का सिद्धांत (घ) प्रतिशासनकाल का सिद्धांत (ङ) आवृत्ति का सिद्धांत (च) प्रमुखता का सिद्धांत (छ) जीवंतता का सिद्धांत।

परिज्ञान : सर्वज्ञान को अभिज्ञात या व्यक्त करने की क्षमता–एक ऐसी वस्तु को देखना जिसे पहले भी देखा गया है।

स्मृति के प्रकार

स्मृति पांच प्रकार से वर्गीकृत की जा सकती है– (1) रुधि स्मृति या यथार्थ स्मृति, (2) कंठस्थ करने की स्मृति व तार्किक स्मृति, (3) निष्क्रिय स्मृति व सक्रिय स्मृति, (4) व्यक्तिगत व अव्यक्तिगत स्मृति, और (5) मूल स्मृति व स्थायी स्मृति।

(1) **रुधि स्मृति व यथार्थ स्मृति :** बर्गसन का यह मत था कि रुधि स्मृति केवल संचालन व्यवस्था पर निर्भर करती है जबकि यथार्थ स्मृति स्वतंत्र स्मरणों पर निर्भर करती है। उसके अनुसार, ''भूतकाल दो विभिन्न रूपों के अन्तर्गत अस्तित्व में रहता है, प्रथमतया संचालन व्यवस्था के रूप में, द्वितीया स्वतंत्र स्मरणों के रूप में। याद करने के संवेद में स्मरण किए गए पाठ की स्मृति में रुधि के संपूर्ण चिह्न समाहित होते हैं, जबकि प्रत्येक उत्तरोत्तर अध्ययनों की स्मृति में रुधि के कोई चिह्न नहीं होते हैं। इन दोनों स्मृतियों में से, एक शुद्ध या यथार्थ स्मृति है, दूसरी स्मृति द्वारा समझी हुई रुधि है।'' उदाहरणार्थ, केवल दोहराकर गणितीय पहाड़ों को सीखना एक प्रकार की रुधि स्मृति है। यथार्थ स्मृति संबंध एवं रुचि पर निर्भर करती है और इसलिए यह शिक्षाप्रदाताओं द्वारा पसंद की जाती है।

(2) **कंठस्थ करने की स्मृति व तार्किक स्मृति :** कंठस्थ करने की स्मृति बिना समझे हुए एक अनुभव की यांत्रिक पुनरावृत्ति है। इसे रुधि स्मृति भी कहा जाता है। तार्किक स्मृति समझ पर निर्भर करती है। एक बच्चे द्वारा गणितीय पहाडों को समझकर, कई बार उनकी पुनरावृत्ति करके और भविष्य के अवसरों पर उनका उपयोग करना, तार्किक स्मृति का एक उदाहरण है।

(3) **निष्क्रिय स्मृति व सक्रिय स्मृति :** निष्क्रिय स्मृति में, भूतकालिक अनुभव हमारी चेतना में बिना कोई प्रयास किए आते हैं। सक्रिय स्मृति में, हम विस्मृत अनुभव को प्रत्याहारित करने हेतु सुविचारित प्रयास करते हैं।

टिप्पणी

(4) **व्यक्तिगत व अव्यक्तिगत स्मृति** : व्यक्तिगत स्मृति में, हम अपने भूतकालिक अनुभवों का स्मरण करते हैं। अव्यक्तिगत स्मृति में, स्वयं के प्रति किसी संदर्भ के बिना तथ्यों को स्मरण किया जाता है।

(5) **मूल स्मृति व स्थायी स्मृति** : जब सीखी गई सामग्री को सीखने के तत्काल पश्चात प्रत्याहारित किया जाता है, तो उसे मूल स्मृति कहा जाता है। दूसरी तरफ, जब एक निश्चित समय बीत चुका हो तब हम उसे प्रत्याहारित करने का प्रयास करें और प्रत्याहारित करने में सफल रहें, तो उसे स्थायी स्मृति कहा जाता है।

उत्तम स्मृति के चिह्न

मनोवैज्ञानिकों ने उत्तम स्मृति के छः चिह्नों की पहचान की है।

1. **द्रुतवाह्यता** : उत्तम स्मृति का प्रथम चिह्न है द्रुतवाह्यता, अर्थात, कितनी द्रुत गति से सीखने वाला अपने अनुभवों को प्रत्याहारित कर सकता है। जितने न्यून समय में सीखने वाला अपने अनुभवों को प्रत्याहारित करता है उसे द्रुतवाह्यता कहते हैं।
2. **परिशुद्धता** : इससे यह आशय है कि एक भूतकालिक अनुभव को कितनी यथार्थता के साथ प्रत्याहारित किया जाता है। स्मरण करने की द्रुतवाह्यता हो किंतु परिशुद्धता का अभाव हो सकता हो। एक उत्तम स्मृति में एक साथ द्रुतवाह्यता एवं परिशुद्धता के तत्व विद्यमान होने आवश्यक हैं।
3. **समयावधि** : यह तत्व उस समय का द्योतक है जिसमें कोई व्यक्ति अपने भूतकालिक अनुभवों को प्रतिधारित करके रख सकता है तथा परिशुद्धता सहित उन्हें प्रत्याहारित कर सकता है। एक व्यक्ति अनुभव की केवल एक अल्प मात्रा को प्रतिधारित एवं प्रत्याहारित कर पाने में सक्षम है जबकि दूसरा एक बड़ी मात्रा में प्रतिधारित व प्रत्याहारित कर सकने में सक्षम है। अतः दूसरे की स्मृति अपेक्षाकृत रूप से उत्तम होगी।
4. **अनुभव का परिमाण** : कुछ व्यक्ति समस्त पढ़े हुए को प्रत्याहारित कर पाने में सक्षम होते हैं जबकि अन्य केवल उसमें से कुछ ही प्रत्याहारित कर पाते हैं।
5. **तत्परता** : इसका तात्पर्य उस सुगमता एवं सहजता से है जिसके द्वारा अनुभवों को प्रत्याहारित किया जाता है।
6. **सेवा योग्यता** : इसका संबंध उचित समय पर, उचित स्थान पर, एवं उचित तरीके से उचित अनुभवों को प्रत्याहारित करने से है।

याद्दाश्त विकास और सुधार की अनुकूल परिस्थितियां

एक प्रश्न अकसर पूछा जाता है कि स्मरण को बढ़ाना संभव है। जवाब है कमजोर स्मरण शक्ति को बढ़ाया जाता है लेकिन अगर वह स्मरण जन्मजात है तो नहीं हो सकता। कमजोर स्मरण शक्ति बढ़ाने और सिखाने की गलत विधि के कारण होता है।

टिप्पणी

इसलिए इसे बढ़ाया जा सकता है। पढ़ाने और सिखाने की उपयुक्त विधि के माध्यम से स्मरण में वृद्धि करना संभव है–

1. **रुचि** – अच्छी याद के लिए विषय में रुचि होना जरूरी है। कहावत है कि घोड़े को जब तक पानी पीने में रुचि नहीं रहेगी तब तक उसे पानी नहीं पिला सकते।
2. **सीखने की प्रेरणा**– प्रेरणा रुचि जगाता है और याद करने की प्रक्रिया के लिए सही स्थिति उत्पन्न करता है।
3. **इच्छाशक्ति**– विषय को सीखने की रुचि में वृद्धि करता है और यह बेहतर समझ को विकसित करता है।
4. **संघ**– याद करने में संघ का नियम बहुत सहायक होता है।
5. **अभ्यास का नियम और तीव्र दुहराव**– दुहराव और इसकी गुणवत्ता याद करने की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। कई मनोवैज्ञानिक परीक्षण से यह बात साबित हुई है कि चीजें अगर अकसर याद की जाती है तो लंबे समय तक याद रहती है। हालांकि दुहराव बेहतर, समझ के साथ किया जाना चाहिए।
6. **दुहराव का अंतर**– ... निश्चित अंतराल और समय को विराम देकर याद किया जाना चाहिए। यह सीखने वालों को थकान से बचाता है। प्रयास–विराम–प्रयास याद का बेहतर नेतृत्व करेगा।
7. **पढ़ाने और सीखने की विकसित विधि**– योजना विधि और समस्या विधि चीजों को रुचिकर बनाने में मददगार होती है। छात्र चीजों को आसानी से आत्मसात करता है। उसे लंबे समय तक याद रख सकता है।
8. **आधुनिक तकनीक का प्रयोग**– छात्रों को प्रेरित करने के लिए पढ़ाने और सिखाने के लिए कई तरह के तीकनीकों का सहारा लिया जाता है और ये तकनीकें छात्र को ध्यान बढ़ाने में मदद करती हैं।
9. **संपूर्ण अथवा खंड विधि**– याद रखने की दो विधि होती है– संपूर्ण विधि और खंड विधि। उदाहरण के लिए अगर कोई कविता को शुरू से अंत तक बार–बार पढ़ता है तो यह याद करने की संपूर्ण विधि कहलाती है। अगर कविता को खंड या उपखंड में विभाजित कर उस खंड को याद करें तो उसे खंड विधि कहते हैं। सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि बच्चे खंड–विधि से तेजी से सीखते हैं जबकि वयस्क संपूर्ण विधि से सीखते हैं। अगर विषय कठिन हो तो खंड विधि से सीखना, ज्यादा करना ज्यादा उपयोगी हो सकता है।
10. **उच्चारण**– इस विधि में प्रशिक्षु उस समय बिना किताब/पुस्तक देखे हुए उच्चारण की कोशिश कर विषय के तत्व को याद करने की कोशिश करता है। इस विधि में प्रशिक्षु, समय–समय पर अपने आप पर अंकुश भी लगाता है। एआई गेट्स (1942) के मुताबिक इस विधि में कमजोर संबंध आसानी से खोज लिए जाते हैं। उस पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

टिप्पणी

11. **ज्यादा सीख**– आवश्यकता से अधिक सीखना इसका अर्थ यह होता है कि निरंतर अभ्यास करने से सटीक याद्दाश्त स्थापित होती है। आवश्यकता से अधिक सीखना याद को सहेज कर रखने में मददगार होता है।

12. **स्मरणशास्त्र का उपयोग**– अध्ययन सामग्री को लंबे समय मस्तिष्क में स्थिर रखने के लिए स्मरणशास्त्र यंत्र का उपयोग होता है। इस यंत्र के माध्यम से मस्तिष्क में सूचना को अर्थपूर्ण तरीके से बदला जाता है ताकि यह स्मरण में वृद्धि कर सके। उदाहरण के लिए शिक्षा के सात प्रकार को 'R' के माध्यम से याद किया जा सकता है–

    – इसमें शामिल हैं–रीडिंग, राइटिंग, अर्थमेटिक, राइट्स, रिसपोंसबिलीटीज और रिक्रिएशन।

    – ए को एज, एबिलिटी और छात्रों के एप्टीट्यूड के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

    – H को शिक्षा ज्ञान के चार लक्ष्यों के रूप में दर्शाया जाता है– हेड, हैंड, हार्ट और हेल्थ।

13. **विषय सामग्री की व्यवस्था या मतलब**– स्मरण की वृद्धि और उसे बरकरार रखने की सबसे प्रभावशाली विधि यह है कि शिक्षक विषय सामग्री को व्यवस्थित कर उसका प्रयोग कर सकते हैं।

14. **स्पष्ट अवधारणा का निर्माण**– स्मरण बढ़ाने के लिए रेखाचित्रों का सहारा लिया जाना चाहिए, साथ ही श्रव्य–दृश्य उपकरणों का।

15. **अभ्यास के माध्यम से सीखने का सिद्धांत**– अभ्यास कर सीखने के अनुभवों को बढ़ाया जा सकता है और इसे लंबे समय तक याद रखा जाता है।

16. **क्लासरूम का वातावरण**– इसमें शिक्षक का स्वभाव और क्लासरूम वातावरण का अहम रोल होता है।

2.5.2 विस्मृति या विस्मरण

विस्मृति या विस्मरण की प्रक्रिया को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

विस्मरण की परिभाषा और अर्थ

विस्मरण सामान्यतया उत्तरदायी और याद को संपत्ति के रूप में माना जाता है। विस्मरण को जीवन का शत्रु माना जाता है। कई मौकों पर जरूरी चीजें भूला दी जाती हैं जबकि अनावश्यक चीजें याद रह जाती हैं। इसका अनुभव जीवन में प्रत्येक दिन होता है।

निम्न परिभाषाओं से हम विस्मरण की प्रकृति और संकल्पना को समझ सकेंगे–

एडम्स के अनुसार, "सच्ची सीख मुश्किल से विस्मृत होती है।"

टिप्पणी

हेम्स ड्रेकर– "विस्मरण का मतलब है असफलता उस समय की जब आप अनुभव को मापने की कोशिश करते हैं।"

नन–"विस्मरण अनुभव को सहेज कर रखने की असफलता या जो कुछ भी प्राप्त किया उसे याद न कर पाने की असफलता है।"

फ्रायड– "विस्मरण स्वाभाविक होता है जब याद न करने की इच्छा होती है।"

वाटसन– "विस्मरण बातचीत में संबंध के अभाव के कारण होता है।"

यह सामान्य विचार है कि विस्मरण समय के साथ होने की प्रक्रिया है। लोगों ने यह विश्वास किया है कि विस्मरण को समय उत्पन्न करता है। यह स्थापित विचार अनुपयोग के क्षय का सिद्धांत कहलाता है। दैनिक जीवन में हम यह अनुभव करते हैं कि समय के साथ कई चीजें विस्मृत हो जाती हैं। हम एक व्यक्ति से मिलते हैं और कुछ ही समय बाद उसका नाम भूल जाते हैं। मुश्किल से याद आता है कि हमने दो दिन पहले डिनर किया था किसी जगह।

प्रथम अक्षर दावा करते हैं तब अनुपयोग या क्षय केवल समाज को रिकॉल करने की अयोग्यता पैदा करता है। इसका मतलब यह हुआ कि समय की लंबाई तथ्यों को सीखने और उसे याद करने में जितनी होगी स्मरण उतना ही विस्मृत होगा।

दूसरा, स्मरण को सहेज कर रखने की सर्वश्रेष्ठता, समय के एक लंबे अंतराल का अनुसरण करती है। और यह हमारे जीवन में कई रूपों में होता है। दो तथ्य जिसका उद्धरण ऊपर किया गया है, अनुपयोग और क्षय के सिद्धांत को दूसरे कारक की ओर धकेलता है, जो विस्मरण में अहम भूमिका निभाता है।

स्मरण मापने की विधि

सामान्यतया मनोवैज्ञानियों ने स्मरण को मापने की तीन विधियों को प्रतिपादित किया है–

1. **रिकॉल**– हम लोग अपने छात्रों के स्मरण को मापने के लिए परीक्षा की विधि अपनाते हैं। इसमें जो कुछ भी पहले सीखा गया होता है व्यक्ति उसे पुनः स्थापित करता है। रिकॉल भूलने की समाधान प्रक्रिया है। शब्दों की कुछ सूची को छात्रों को दिलाते हैं और कुछ देर दिखने के बाद उन्हें याद करने को कहते हैं। रिकॉल करने की प्रतिशतता ज्यादातर सही होती है।
2. **पहचान**– पहचान देखे और बिना देखे के बीच विभेद होता है। इसमें विभिन्न तरह के विकल्प देते हैं और हम लोग कई विकल्पों में से सही विकल्प की पहचान करते हैं। प्रतीकात्मक पहचान प्रयोग में विषयों की पहचान योग्यता रखने के साथ नए विषयों को समाहित कर अध्ययन किए गए विषयों की पहचान करने को कहा जाता है। रोजरस शेपर्ड ने पहचान पर कई श्रेणियों में प्रयोग किए। एक प्रयोग में किसी विषय के 540 शब्दों को ताश के माध्यम से पेश कर उसे अपनी ही गति से पहचानने की कोशिश की। दूसरे स्तर पर उन्होंने शब्दों के साठ जोड़े की जांच की। एक शब्द जांच युगल में जिसे अभी–अभी परीक्षण

किया गया था, ताश की गड्डी में उभर कर सामने आया। हर बार विषयों से जुड़े शब्द ताश के पत्ते से निकाले गए। औसतन 90 प्रतिशत शब्दों को विषय ने पहचाना।

टिप्पणी

3. **पुनःसीख**– तीसरी तकनीक है। स्मरण को मापने की, स्मरण को सहेज कर लंबे समय तक रखना और यह पुनः सीख से प्राप्त करना। विषय को रिकॉल अथवा पहचानने की जगह उन्हें पूर्व के अनुभव को सामने लाने को कहा गया। हमने विषय को कुछ अंतराल पर पुनः सीखने को कहा। प्रयत्न और अवसरों के बीच विभेद यह होता है कि यह प्रारंभ से ही ज्ञान/सीख की अपेक्षा करता है। सीखना बार–बार पुनः सीख की अपेक्षा करता है। तब जाकर याद को सहेज कर रखा जाता है। तब यह विषय सूची पूरी तरह से किफायती होती है। यद्यपि मापने का नियमित प्रयोग, पुनः सीखने की विधि को गलत साबित करता है, चूंकि यह सीखने की दूसरी स्थिति पर निर्भर रहता है। किफायती प्राप्तांक का एक भाग स्मरण को सहेजकर रखने की दूसरे जांच में उभरता है। इस तरह किसी भी विषय को स्मरण रखना, सहेजने के कारण नहीं होता है, बल्कि बृहतर सीखने की योग्यता पर निर्भर करता है। वास्तविक सामग्री को सीखने की अपेक्षा पुनःसीख और नए कार्य के समानांतर सीख की तुलना कर आपत्ति का प्रबंध किया जा सकता है। पुनः सीखने की प्रक्रिया की वैधता नये कार्य के निर्माण पर निर्भर करती है जो कि पूरी तरह से वास्तविक सीखने के कार्य के समान होता है। निरर्थक शब्दांश के साथ समतुल्य सूचियों का निर्माण बिना किसी कठिनाई से किया जाता है। अर्थपूर्ण सामग्री जो कि तर्कसंगत व्याख्यान में मौजूद होते हैं उसी समान कार्य को प्राप्त करने की समस्या अधिक कठिनपूर्ण होती है।

एक महत्वपूर्ण विभिन्नता है जो पूर्व प्रभावी अवरोधन की मात्रा को प्रभावित करेगी। दो सूचियों में जितनी ज्यादा समानता होगी विस्मरण होने की मात्रा उतनी ही प्रबल होगी।

स्मरण में वृद्धि का अभ्यास

प्रत्येक कक्षा के शिक्षकों को इस समस्या का सामना करना होता है कि याद्दाश्त को छात्रों में कैसे लंबे समय तक रखा जा सके। प्रायोगिक अध्ययन यह दिखाता है कि हम लोग विस्मरण को पूरी तरह से नहीं मिटा सकते लेकिन उसे कम करने के कुछ कदम उठा सकते हैं। निम्नलिखित उपायों से शिक्षकों द्वारा क्लासरूम में पढ़ाए गए विषयों को छात्रों के अंदर सहेज कर रखा जा सकता है–

1. **जरूरत से ज्यादा ज्ञान**– यह तथ्य स्थापित है कि विषयों को याद कर के सही माध्यम से सहेज कर रखना उस समय कारगर होता है जब विषयों को अच्छी तरह से पढ़ाया जाता है। जब हम कुछ अच्छी तरह से अर्जित करते हैं तो अन्य विषयों के सीखने के बाद भी हमारे वास्तविक ज्ञान के कारगर रहने के अवसर ज्यादा होते हैं। जरूरत से ज्यादा ज्ञान का मतलब होता है उसका

टिप्पणी

निरंतर अभ्यास। याद्दाश्त को बरकरार रखने में जरूरत से ज्यादा ज्ञान आवश्यक है। लेकिन सवाल उठता है कि कितना जरूरत से ज्यादा ज्ञान। इस सवाल का जवाब मनोविज्ञानियों द्वारा नहीं दिया गया। यह व्यक्ति की निजी सीख की योग्यता पर निर्भर करता है। साथ ही उस विषय को लेकर उसमें कितनी प्रेरणा और रुचि है।

2. **अर्थपूर्ण विषयों की संरचना**– याद्दाश्त को बरकरार रखने की सबसे सटीक विधि है विषयों को शिक्षक द्वारा अर्थपूर्ण तरीके से पढ़ाना। सभी मनोविज्ञानी इस बात से सहमत हुए। मैकगोस (1930) ने चार समूहों पर याद्दाश्त को सहेज कर रखने के प्रयास का अध्ययन किया। प्रत्येक चार समूहों ने विषय को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से इन विभिन्न सूचियों को पढ़ा। दो मिनट तक पढ़ा। एक समूह ने तीन अक्षर वाले शब्दों को पढ़ा, जबकि अन्य ने निरर्थक शब्दकोश को सीखा। जिसका मान 0 प्रतिशत, 53 प्रतिशत और 100 प्रतिशत आया। इस प्रयोग के परिणाम को निम्न आंकड़ों से समझा जा सकता है–

	सामग्री	दो मिनट के बाद याद किए गए विषय
1.	तीन अक्षर के शब्द	9.1
2.	निरर्थक शब्दकोश (100 प्रतिशत)	7.4
3.	निरर्थक शब्दकोश (53 प्रतिशत)	6.4
4.	निरर्थक शब्दकोश (0 प्रतिशत)	5.1

सहेजना में अर्थपूर्ण होना एक महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षकों को छात्रों के लिए विषयों को अर्थपूर्ण बनाना चाहिए। तीस दिनों के बाद पद्य, गद्य और निरर्थक शब्दों में याद रखने की प्रतिशता इस प्रकार है–

विषय सामग्री	स्मृति में रखने का प्रतिशत
(क) पद्य	58 प्रतिशत
(ख) गद्य	40 प्रतिशत
(ग) निरर्थक शब्द	28 प्रतिशत

स्पष्ट है कि अगर विषय सामग्री स्मृति में रहती है, तो इसे अर्थपूर्ण बनाने में सुविधा होती है। 1248163264 दस संख्या वाले इन नंबरों को याद करना कठिन है लेकिन सात नंबरों वाली संख्या को याद करना आसान है। अगर 1 नंबर के बाद इसी नंबर का जोड़ आता है। शिक्षकों को विषय वस्तु जरूर अर्थपूर्ण बनानी चाहिए। विषय वस्तु को अच्छी तरह से व्यवस्थित किया जाना चाहिए। आसूबेल (1963) ने एक शैक्षणिक योजना का प्रस्ताव दिया। यह प्रस्ताव उपयुक्त तार्किक और विस्तृत आयोजनकर्ता पर आधारित है जो कि सीखने की विषय वस्तु की आधुनिकता को प्रस्तुत करता है, जिसे शिक्षक के द्वारा चुना गया। व्याख्यान की

टिप्पणी

अनुकूलता के आधार पर एकीकरण परस्पर संबंध के माध्यम से विषयों को तथ्यों के आधार आयोजन तथ्यात्मक विषय वस्तु को अधिक उपयोगी बनाता है। आयोजन के प्रयोग से प्राप्त इसकी प्रक्रिया पर बहुत किफायती असर पड़ता है और यह याद्दाश्त को बढ़ाने में सहायक होता है। बोसफील्ड (1953) ने कहा इन तथ्य से कुछ संगगठित प्रवृत्ति को जिसे समूह की संज्ञा दी जाती है वह स्मरण करने के दौरान संचालित होती है।

एकत्रण दिखाता है कि स्मरण किसी न किसी रूप में सक्रिय प्रक्रिया है। हम लोग सूचना को उसी रूप में संगृहीत नहीं करते जिस रूप में उसे पाते हैं। स्मरण के दौरान स्मरण में कुछ बदलाव होते हैं। अपने दोस्तों को कुछ शब्द पढ़कर सुनाना और उन्हें याद करने को कहें। बेड, रेस्ट, ट्राइड, वेक, अवेक, माइट, ईट, कम्फोर्ट। लगभग 50 प्रतिशत लोगों ने स्लीप शब्द के साथ इन शब्दों की सूची को याद किया। जबकि स्लीप शब्द वास्तविक सूची में शामिल नहीं था।

बेहतर सीखने के दो तरीके होते हैं– पहला शब्द और वाक्य ज्यादा अभ्यासरत हो। दूसरा यह संघ के कड़े समूह का भाग बने। यही अच्छा आयोजन होता है। कभी–कभी किसी नाम को याद करने में कठिनाई होती है। उस नाम को जानते हैं फिर भी उसे अच्छी तरह से सीख नहीं पाते। हम लोग इसे याद नहीं कर सकते, जबकि यह हमारी जुबान पर होता है। मैकनील (1966) TOT पर एक प्रयोग किया। उन्होंने पाया कि TOT (टोट) का पढ़ना सहजता को हमेशा बरकरार नहीं रखता या फिर गैर प्रक्रिया से गुजरता है। हम शब्द के पूरी विशेषता को याद किए बगैर इसे याद कर सकते हैं। अर्थपूर्ण विषय सामग्री की तुलना उस सामग्री से की जाती है जिसे सीखा जाता है। संकेत होने के कारण ऐसी सामग्री को याद करने में सफलता मिलती है।

3. **याद करने वाले यंत्र का प्रयोग**– कभी हमें विषय वस्तु को सीखने के लिए इसकी जरूरत पड़ती है। यह यंत्र विषय सामग्री की याद को बरकरार रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किड और सेगमेन (1958) ने एक प्रयोग किया। नर्सरी के छोटी गीत को संख्या 1 से 10 तक में प्रयोग किया जिसका असर यह हुआ कि विषय वस्तु को याद रखने की प्रतिशता में वृद्धि हुई। वह व्यक्ति जिसकी दृश्य को याद रखने की क्षमता अधिक है उसमें इस यंत्र ने आश्चर्यजनक रूप से काम किया। मस्तिष्क में सूचना अर्थपूर्ण तरीके से व्यवस्थित होकर याद्दाश्त में वृद्धि करती है। यह प्रमाणित करता है कि यह प्रक्रियाएं स्वतः होती हैं। समुच्चय की घटना स्वतः बदलाव का अच्छा उदाहरण है।

4. **स्वयं उच्चारण**– मनोविज्ञानियों का मानना है कि उच्चारण याद्दाश्त को बरकरार रखने में सहायक होता है। गेस्स ने बताया है कि स्वयं उच्चारण का व्यापक प्रभाव पड़ता है। विषय वस्तु जिसे उनके छात्रों ने पढ़ा वह निरर्थक और छोटी आत्मकथा थी। इस प्रयोग को इस तरह से दर्शा सकते हैं–

टिप्पणी

	स्वयं उच्चारण को दिया गया समय	16 शब्दों को याद करने की प्रतिशता	
		तुरंत	चार घंटे बाद
1.	0	35	15
2.	20	50	26
3.	40	54	28
4.	60	57	37
5.	80	74	48

ऊपर दी गई सारणी से यह साफ हो जाता है कि वे छात्र जो सिर्फ 20 प्रतिशत समय पढ़ाई को देते हैं अच्छा करते हैं लेकिन जो 80 प्रतिशत देते हैं उनके परिणाम के पीछे स्वयं का उच्चारण कारण होता है। इसका मतलब यह हुआ कि स्वयं उच्चारित कर पढ़ना ज्यादा लाभदायक होता है।

5. **स्पष्ट अवधारणा का निर्माण**– प्रशिक्षण और स्मरण वृद्धि करने का दूसरा तरीका है शिक्षक स्पष्ट अवधारणा विकसित करें और इसके लिए विभिन्न प्रकार के श्रव्य–दृश्य का प्रयोग किया जा सकता है। सक्रिय भागिता सीखने वाले के स्मरण में वृद्धि करती है।
6. **काम करने सीखने का सिद्धांत**– कार्य को कराकर शिक्षक छात्रों में सीखने की प्रक्रिया विकसित कर सकते हैं। सीखने वाले को सीखने की प्रक्रिया और सीखने के अनुभवों के माध्यम से प्रोत्साहित कर सिखाया जाना चाहिए। शिक्षण को कई प्रकार की सामग्री का इस्तेमाल संकल्पना और ज्ञान को स्पष्ट कराने के लिए करना चाहिए।

ऊपर के सिद्धांतों को हम लोग जरूरत से सीखने से याद्दाश्त बरकरार रखने के रूप में जान सकते हैं। अर्थपूर्ण, संरचनात्मक, याद बढ़ाने वाले यंत्र, स्वयं का उच्चारण और संकेत देने से सीखने वालों को अपने स्मरण से सूचना प्राप्त करने में आसानी होती है। इसके साथ ही विषय वस्तु का नियमित पुनरीक्षण भी याद को बढ़ाने में सहायक होता है।

स्मरण एवं विस्मरण के कारण

एच. एब्बिंगॉस ने विस्मरण पर अध्ययन कर अपने नतीजों को 1985 में प्रकाशित किया था। उनके अनुसार 'विस्मरण तब शुरू होता है जब हम नई चीजों को सीखना बंद कर देते हैं।' तथ्य यह है कि सीखना और विस्मरण साथ–साथ चलते हैं। इसे निम्न तरह से आंका जाता है–

समय	विस्मरण का प्रतिशत
तीस मिनट बाद	50 प्रतिशत
छह घंटे बाद	60 प्रतिशत
एक दिन बाद	66 प्रतिशत
छह दिन बाद	72 प्रतिशत
एक महीने बाद	80 प्रतिशत

एब्बिंगॉस इशारा करते हैं कि जो भी कुछ सीखें उनका पुनरीक्षण या दुहराव करना चाहिए। उनके प्रयोग के अनुसार जिस चीज को हम पढ़ना चाहते हैं उसे सीखें ओर दुबारा सीखें। टी. बोरियस ने लगभग समान परिणाम दर्शाए हैं।

टिप्पणी

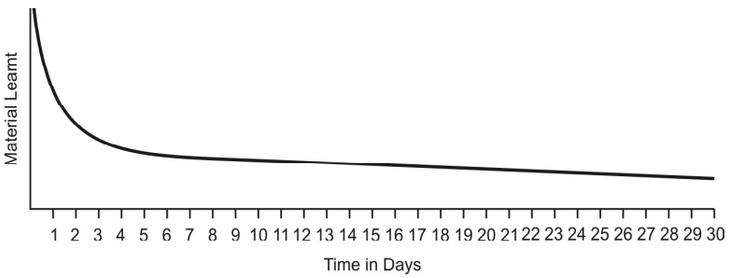

चित्र विस्मरण का वक्र

उपरोक्त चित्र विस्मरण का वक्र दिखाता है कि इसके मुख्य लक्ष्य में समय के अंतराल के साथ सीखने का प्रतिशत गिरता है। साथ ही समय अंतराल के बढ़ने से याद रखने की प्रतिशता बढ़ जाती है।

भूलने के कारण

1. काम में रुचि की कमी
2. काम में निरंतरता न होना
3. समय की कमी/समाप्ति
4. जुड़ाव और संश्लेषण की कमी– यह निम्न कारणों से हो सकता है–
   (क) दूसरे क्रियाकलापों में हस्तक्षेप करना।
   (ख) विभिन्न प्रकार के कार्यों का क्रमवार अनुभव, विशेषकर गंभीर विषयों का।
   (ग) गंभीर क्रियाकलाप के बाद आराम नहीं, इससे विषय से जुड़ाव और उसे दोहराने में कमी आ जाती है।
5. भावनात्मक रूप से परेशानी।
6. थकावट।
7. दुखद और दर्दनाक अनुभव के कारण पूरी तरह से भूलना।

विस्मरण का निदान

विभाजित सीख–विषय पर केंद्रित करना अच्छा होगा अगर विषय को समान और उपयुक्त सत्रों में बांट दिया जाए।

दुहराव और मूल्यांकन– पाठ/अध्याय अथवा अनुभवों को विचार और दुहराव की जरूरत पड़ती है।

ज्यादा सीखना– अध्ययन यह दर्शाता है कि ज्यादा सीखना अच्छा होता है अपेक्षाकृत एक विषय पाठ पर रुके रहने से। हालांकि ज्यादा सीखना पकानेवाला और अरुचिकर होता है।

टिप्पणी

सीखने की सामग्री की प्रकृति– मतलबी/अर्थपूर्ण सामग्री पर ही ध्यान केंद्रित करना चाहिए बजाए उन सामग्री से जो उलझन/भटकाव पैदा करे।

सीखने वाली सामग्री की व्यवस्था– सामग्री जो अच्छी तरह से व्यवस्थित की जाती है उस पर आसानी से ध्यान केंद्रित किया जा सकता है जबकि बेतरतीब से रखी सामग्री ध्यान भटकाती है।

विविधता– विविध तरह के चित्र और प्रभाव ध्यान केंद्रित करने में सहायक होती है।

स्मरण बढ़ाने के तरीके

सामान्यतः अनुभव यह है कि भूलना सामान्यतः लोगों को परेशान करता है। प्रतिदिन की बातचीत में, कक्षा में भागीदारी, परीक्षा में प्रदर्शन, इंटरव्यू, प्रस्तुतीकरण और जनसंचार मीटिंग के दौरान, अकसर सूचना को याद करने की मांग करता है। श्रम में असफलता ऋणात्मक प्रतिफल है जिससे हम जीवन में कई स्तरों पर अनुभव करते हैं। जिसका नतीजा यह होता है कि इससे ज्यादातर लोग याद/स्मरण को बढ़ाना चाहते हैं। नीचे कुछ तकनीकें दी गई हैं जिसके माध्यम से स्मरण को बढ़ाया जा सकता है–

1. **संगठन/व्यवस्था**–सीखने की तैयारी के लिए सीखने वालों को किसी रूप में अध्ययन की सामग्री को व्यवस्थित करने की जरूरत होती है। अगर सामग्री प्राकृतिक रूप से व्यवस्थित नहीं है तो सीखने वालों को कृत्रिम तरीके से अध्ययन सामग्री को व्यवस्थित करनी चाहिए।
2. **ध्यान क्रेंदित करना**–विस्मरण का मुख्य श्रम यह होता है कि अध्ययन सामग्री पर पर्याप्त मात्रा में ध्यान नहीं दिया जाता है। इस वजह से अध्ययन सामग्री हमारे मस्तिष्क में जमा नहीं हो पाती है और जब उसकी जरूरत होती है तो हम उसे स्मरण करने में असफल हो जाते हैं। इस तरह अगर अध्ययन सामग्री पर ध्यान सही तरीके से केंद्रित किया जाए तो स्टोर करने और उसे पुनः स्मरण करने की संभावना को बढ़ाया जा सकता है।
3. **स्थान देने की विधि**–जैसा कि नाम से अर्थ निकलता है कि यह तकनीक स्थान और कार्य से जुड़ी होती है। पूर्व में दिखाए गए दृश्य को उसी तरह से दिखाने पर कार्य/सबक याद आता है। किसी भी काम को सही तरीके से चुनने पर दिन में किसी भी समय भूली हुई चीज का स्मरण हो सकता है। किसी भी संदर्भ को इशारा या खास संकेत से जोड़ना प्रभावशाली होता है। अगर किसी के मस्तिष्क में किसी भवन को लेकर चित्र स्पष्ट है तो वह उस भवन का दरवाजा, खिड़की–फर्नीचर और दूसरी जानकारी तुरंत याद कर सकता है। इसी तरह अपने विचार में किसी चीज से जोड़ते हैं तो उस विचार के स्मरण को बढ़ाया जा सकता है।

टिप्पणी

4. **कूट भाषा**–बिना अर्थपूर्ण अध्ययन साम्रगी को समझने के लिए उसे कूट भाषा में परिवर्तित करने की जरूरत होती है जिससे उसे याद करने में आसानी होती है। कूट भाषा कई रूपों में होती है। उदाहरण स्वरूप लोग सभी चीजों का पहला अक्षर लेकर उसे वाक्य में तब्दील करते हैं। इस तरह की संरचना संकेत के रूप में काम करता है। संक्षिप्त (उदाहरण के लिए UNO, TV, CBI, WHO) इसी उद्देश्य से उपयोग में लाया जाता है, जिसमें पहला अक्षर प्रयोग होता है। बेहतरीन कूट भाषा का इस्तेमाल कर कोई कई चीजों को जोड़कर एक कहानी बना सकता है और उसे आसानी से याद कर सकता है।

2.5.3 विस्मृति या विस्मरण के सिद्धांत

विस्मृति या विस्मरण को समझने के लिए कई सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं। जो संभावित हैं तथा जिन पर समुचित ध्यान दिया गया है हम उनका पुनरावलोकन करेंगे।

हर्मन एबिंगहॉस ने विस्मरण के स्वरूप को समझने के लिए सर्वप्रथम क्रमिक प्रयास किया। उन्होंने निरर्थक शब्दांशों की सूची (जो व्यंजन–स्वर–व्यंजन अक्षरों से बना था तथा जिन्हें CVC ट्राईग्राम कहा गया जैसे NOK या SEP इत्यादि) को याद किया। उस सूची को भिन्न–भिन्न समयांतरालों पर पुनः याद किया और प्रत्येक बार प्रयासों की संख्या का मापन किया। उन्होंने पाया कि विस्मरण के क्रम का एक निश्चित प्रारूप होता है।

विस्मरण की दर प्रारंभिक पहले घंटे में सबसे ज्यादा है। उसके बाद गति धीमी हो जाती है तथा कई दिनों के बाद भी ज्यादा नहीं भूला गया है। यद्यपि एंबिगहॉस के प्रयोग प्रारंभिक अन्वेषण थे तथा बहुत परिष्कृत भी नहीं थे, फिर भी स्मृति शोधों को इसने कई महत्वपूर्ण तरीकों से प्रभावित किया है। अब यह सर्वसम्मति से माना जाता है कि शुरू में स्मृति में तीव्र ह्रास होता है। उसके बाद अवनति बहुत धीमी गति से होती है। यहां पर विस्मरण के कुछ सिद्धांतों का अवलोकन किया जा रहा है, जो निम्नलिखित हैं–

1. चिह्न ह्रास के कारण विस्मरण

चिह्न ह्रास अनुप्रयोग का सिद्धांत भी कहलाता है। यह विस्मरण का सर्वप्रथम सिद्धांत है। इसकी अवधारणा है कि स्मृति केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में कुछ संशोधन करती है जो मस्तिष्क में होने वाले शारीरिक परिवर्तन हैं इन्हें स्मृति चिह्न कहा जाता है। जब इन चिह्नों का लंबे समय तक उपयोग नहीं होता है, तो ये धूमिल हो जाते हैं। कई कारणों से यह सिद्धांत अपर्याप्त माना जाता है। यदि स्मृति अनुप्रयोग के कारण स्मृति चिह्नों का ह्रास होता है तो जो लोग याद करने के बाद सो जाते हैं, उनमें जागने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक विस्मरण होना चाहिए क्योंकि नींद आने के दौरान स्मृति चिह्नों का उपयोग नहीं होता, किंतु परिणाम इसके बिलकुल विपरीत पाए गए हैं। याद करने के बाद जागने वालों में याद करने के बाद सो जाने वालों की अपेक्षा अधिक विस्मरण पाया गया।

टिप्पणी

अतः यह सिद्धांत सामान्य अनुभव पर आधारित है। इसका आधार समय है। विस्मरण मस्तिष्क में स्मरण चिह्नों के धुंधले पड़ जाने के कारण होता है। स्मरण चिह्नों का लंबे समय तक उपयोग न होने के कारण भी विस्मरण की प्रक्रिया को बल मिलता है, जिससे समय के बीतने के साथ–साथ हम बहुत–सी चीजों को भूल जाते हैं।

2. अवरोध के कारण विस्मरण

यदि विस्मरण चिह्न ह्रास के कारण नहीं है तो यह क्यों होता है? विस्मरण का सिद्धांत जो संभवतः सबसे अधिक प्रभावकारी है वह अवरोध का सिद्धांत है। इसके अनुसार स्मृति भंडार में एकत्रित विभिन्न सामग्री के बीच अवरोध पैदा होने के कारण विस्मरण होता है। इस सिद्धांत के अनुसार सीखने और याद करने में विभिन्न पदों के बीच साहचर्य स्थापित होता है और एक बार साहचर्य स्थापित हो जाने के बाद यह स्मृति में अक्षत रहता है। व्यक्ति बहुत सारे साहचर्य अर्जित करता रहता है और ये बिना किसी आपसी द्वंद्व के स्वतंत्र रूप से स्मृति में रहते हैं। फिर भी पुनरुद्धार के समय इनमें अवरोध उत्पन्न होता है क्योंकि भिन्न–भिन्न साहचर्यों में पुनरुद्धार के लिए प्रतिस्पर्धा होती है।

विस्मरण में दो प्रकार से अवरोध उत्पन्न होते हैं। अवरोध अग्रलक्षी अर्थात आगे की ओर चलने वाले हो सकते हैं, जैसे कि जो क्रिया आपने पहले सीखी है वह बाद में सीखी गई क्रिया को याद करने में अवरोध उत्पन्न करती है, या ये पूर्वलक्षी अर्थात पीछे की ओर चलने वाले हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि जब आपको पहले सीखी गई क्रिया को याद करने में कठिनाई हो, जो किसी नयी सामग्री के अधिगम के कारण हो सकती है। दूसरे शब्दों में, अग्रलक्षी अवरोध में पूर्व अधिगम, पश्चात अधिगम के प्रत्याह्वान में अवरोध पहुंचता है जबकि पूर्वलक्षी अवरोध में पश्चात अधिगम, पूर्व अधिगम सामग्री के प्रत्याह्वान में अवरोध पहुंचाता है। उदाहरणस्वरूप, यदि आप अंग्रेजी जानते हों और फ्रेंच सीखने में कठिनाई महसूस कर रहे हों तो यह अग्रलक्षी अवरोध के कारण है। दूसरी ओर, यदि आप अंग्रेजी के शब्द, जो फ्रेंच शब्द के पर्याय हों, का प्रत्याह्वान नहीं कर पा रहे हैं, तो यह पूर्वलक्षी अवरोध का उदाहरण है।

3. पुनरुद्धार असफलता के कारण विस्मरण

विस्मरण न केवल एक समय के बाद स्मृति चिह्नों के ह्रास के कारण होता है। और न ही प्रत्याह्वान के समय स्वतंत्र रूप से संचित साहचर्यों के बीच प्रतिद्वंद्विता के कारण होता है, बल्कि प्रत्याह्वान के समय पुनरुद्धार के संकेतों के अनुपस्थित रहने के कारण भी होता है। पुनरुद्धार के संकेत वे साधन हैं जो हमें स्मृति में संचित सूचनाओं को पुनः प्राप्त करने में मदद करते हैं। यह विचार टलविंग (Tulving) और उनके साथियों द्वारा प्रतिपादित किया गया था, जिन्होंने यह दिखाने के लिए अनेक प्रयोग किए कि स्मृति की सामग्री अक्सर हमें इसलिए नहीं प्राप्त होती, क्योंकि पुनरुद्धार के संकेत प्रत्याह्वान के समय या तो अनुपस्थित होते हैं या अनुपयुक्त।

टिप्पणी

उदाहरणस्वरूप, आपने सूची में कुछ शब्द; जैसे– झोपड़ी, मकान, सोना, तांबा, चींटी इत्यादि जो कि कुछ श्रेणियों से संबंधित हैं जैसे, रहने का स्थान, कीटों का नाम, धातु का प्रकार इत्यादि को याद किया। यदि कुछ देर के बाद आपको उनका प्रत्याह्वान करने के लिए कहा जाए तो आप उनमें से कुछ का पुनःस्मरण तो कर पाएंगे लेकिन यदि दूसरे प्रयास में आपको श्रेणियों का नाम भी बता दिया जाए तो आपको प्रतीत होगा कि आपने पूरा पुनःस्मरण कर लिया है। इसमें श्रेणी के नाम पुनरुद्धार के संकेतों का काम करते हैं। श्रेणी नाम के अतिरिक्त जिस भौतिक संदर्भ में आप याद करते हैं वह भी एक प्रभावी पुनरुद्धार संकेत प्रदान करता है।

अतः विस्मरण का कोई स्थाई रूप नहीं होता है। प्रत्याह्वान के समय स्मृति भंडार से स्मरण की गई सामग्री को ढूंढ़ा जाता है। इस कार्य में विफलता प्राप्त होने पर ही विस्मरण होता है।

4. संज्ञानात्मक सिद्धांत

इस सिद्धांत के प्रतिपादक कोहलर और लेविन को माना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार याद किए गए विषय के स्मृति–चिह्न समय अंतराल के कारण नष्ट नहीं होते, बल्कि वे पुनः संगठित होकर विकृत रूप ग्रहण कर लेते हैं। स्मृति–चिह्नों की विकृति के कारण पहले याद किए गए विषय का स्मरण नहीं हो पाता। यह विकृति जितनी अधिक होती है, विस्मरण की मात्रा भी उतनी ही ज्यादा होती है।

5. दमन सिद्धांत

इस सिद्धांत के प्रतिपादक फ्रायड महोदय को माना जाता है। इसे अभिप्रेरणा का सिद्धांत भी कहते हैं। फ्रायड के अनुसार, "विस्मरण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है। हम भूलते हैं क्योंकि हम भूलना चाहते हैं।" विस्मरण के पीछे हमारी स्वयं की इच्छा और अभिप्रेरणा होती है। हम अपने दुखद अनुभवों को अचेतन मन में दमित कर देते हैं जिससे वे अनुभव चेतन मन से हट जाते हैं और उनका विस्मरण हो जाता है। इस विस्मरण को अभिप्रेरित विस्मरण भी कहते हैं।

2.5.4 अल्पकालिक और दीर्घ स्मृति

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत व्यक्ति सूचनाओं को संरक्षित रखता है। जब हम किसी विषय को समझ लेते हैं तब मस्तिष्क इन सूचनाओं को संगृहीत कर लेता है और इन सूचनाओं का पुनरुद्धार सामान्यतः प्रत्याह्वान के रूप में होता है। एक प्रकार से सूचनाओं का पुनरुद्धार ही स्मृति है।

स्मृति, चिंतन, कल्पना, संवेदना आदि की तरह एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपने किसी अतीत के अनुभव को वर्तमान चेतना में लाते हैं। कालांतर में जब हम अपने उन पूर्व के अनुभवों या शिक्षण को पुनर्व्यक्त करते हैं तो पहचानने की वह मानसिक प्रक्रिया ही स्मृति या स्मरण कहलाती है। स्मरण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। इसे चिंतन, कल्पना, प्रत्यक्षीकरण, संवेदना आदि प्रक्रियाओं से अलग करना आसान नहीं है। स्मरण प्रक्रिया में ये चार प्रकार की प्रक्रियाएं होती हैं–

(i) स्थिरीकरण

(ii) धारणा

(iii) पुनःस्मरण या प्रत्याह्वान

(iv) प्रतिभिज्ञा

टिप्पणी

स्थिरीकरण के अंतर्गत किसी विषय का अनुभव होना या शिक्षण आते हैं। दूसरी प्रक्रिया धारणा के अंतर्गत अनुभव में आए हुए अथवा सीखे हुए विषय को संगृहीत करने की प्रक्रिया आती है। धारणा में संगृहीत विषय को चेतना में लाना प्रत्याह्वान या पुनःस्मरण कहलाता है। चौथी प्रक्रिया प्रतिभिज्ञा की प्रक्रिया है। जब हम प्रत्यावाहित अनुभव या शिक्षण को पहचानते हैं तब यह प्रतिभिज्ञा की प्रक्रिया कही जाती है।

स्मृति को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बांटा गया है–

1. संवेदी स्मृति
2. अल्पकालिक स्मृति
3. दीर्घकालिक स्मृति।

संवेदी स्मृति

किसी भी नयी सूचना का संचार पहले संवेदी स्मृति में होता है। संवेदी स्मृति की संचयी क्षमता तो अधिक होती है किंतु इसकी अवधि बहुत कम होती है, एक सेकण्ड से भी कम। यह एक ऐसी स्मृति है जो प्रत्येक संवेदना को परिशुद्धता से ग्रहण करती है। इस स्मृति को संवेदी स्मृति या संवेदी पंजिका कहते हैं, क्योंकि स्मरण संवेदनाएं यहां उद्दीपक की प्रतिकृति के रूप में ही संगृहीत की जाती हैं। उदाहरणस्वरूप यदि आपने कभी दृश्य–उत्तर बिंब अर्थात बल्ब बुझने के बाद भी जो छाया रह जाती है उसका अनुभव किया हो या आवाज के बंद हो जाने के बाद भी उसकी प्रतिध्वनि सुनी हो तो इसका तात्पर्य है कि आप प्रतिध्वन्यात्मक संवेदी पंजिका से परिचत हैं। इस स्मृति में इंद्रियों का प्रयोग करके हम अतीत के अनुभवों को पुनः याद कर सकते हैं।

अल्पकालिक स्मृति

ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाएं जब हमारे ध्यान में आती हैं तो वे अल्पकालिक स्मृति का भाग बन जाती हैं। अल्पकालिक स्मृति को क्रियात्मक स्मृति भी कहते हैं। हम उन सभी सूचनाओं पर ध्यान नहीं देते जो हमारे संवेदी ग्राहकों को प्रभावित करती हैं। जिन सूचनाओं पर हम ध्यान देते हैं वे हमारी द्वितीय स्मृति भंडार में प्रवेश करती हैं जिसे अल्पकालिक स्मृति कहते हैं, जो थोड़ी सूचना को थोड़े समय तक अर्थात् सामान्यतः 30 सेकण्ड या उससे कम ही रख पाती है। एटकिंसन एवं शिफ्रिन के अनुसार अल्पकालिक स्मृति में सूचना का कूट संकेतन मुख्य रूप से ध्वन्यात्मक होता है। यदि इसका निरंतर अभ्यास न किया जाए तो 30 सेकण्ड से कम समय में ही अल्पकालिक स्मृति से बाहर चली जाती है। अल्पकालिक स्मृति कमजोर तो होती है लेकिन संवेदी पंजिका की भांति नहीं, जहां एक सेकण्ड से भी कम समय में सूचना का क्षय हो जाता है।

दीर्घकालिक स्मृति

ऐसी संगृहीत सामग्री, जो अल्पकालिक स्मृति की क्षमता एवं धारण अवधि की सीमाओं को पार कर जाती है, वह दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश करती है। इसकी क्षमता व्यापक

टिप्पणी

है। यह स्मृति का ऐसा स्थाई भंडार है जहां सूचनाएं, चाहे वह कितनी भी नई क्यों न हो, जैसे आपने कल क्या नाश्ता किया था? आपने अपना छठा जन्मदिन कैसे और कहां मनाया था? सभी संचित होती हैं। यह प्रदर्शित किया गया है कि कोई सूचना एक बार दीर्घकालिक स्मृति के भंडार में चली जाती है तो उसे हम कभी नहीं भूलते क्योंकि वह शब्दार्थ कूट संकेतन अर्थात किसी सूचना का क्या अर्थ है? द्वारा संगृहीत की जाती है। आप जिस सूचना को भूलते हैं वह पुनरुद्धार की विफलता के कारण होता है।

सूचना एक भंडार से दूसरे भंडार तक कैसे पहुंचती है और किस तंत्र के द्वारा वह एक विशिष्ट स्मृति–भंडार में संगृहीत रहती है? इस विषय में विचार करते हैं कि ऐसा कैसे होता है?

सूचना एक भंडार से दूसरे भंडार तक कैसे पहुंचती है? इस प्रश्न के उत्तर में एटकिंसन एवं शिफ्रिन ने नियंत्रण प्रक्रियाओं का विचार प्रस्तुत किया है जो स्मृति के विभिन्न भंडारों से सूचना के प्रवाह का परिवीक्षण करती हैं। वे सभी सूचनाएं, जो हमारे संवेदी ग्राहक प्राप्त करते हैं, पंजीकृत नहीं की जातीं। यदि ऐसा होता तो कल्पना कीजिए कि हमारे स्मृति तंत्र पर कितना दबाव होता। केवल वही सूचनाएं जिन पर ध्यान दिया जाता है, हमारे संवेदी ग्राहकों द्वारा अल्पकालिक स्मृति में प्रवेश करती हैं। चयनात्मक अवधान पहली नियंत्रण प्रक्रिया है जो यह सुनिश्चित करती है कि कौन–सी सूचना संवेदी ग्राहकों से अल्पकालिक स्मृति में प्रवेश करेगी। ऐसे संवेदी चिह्न पर ध्यान नहीं दिया जाता, शीघ्र ही धूमिल हो जाते हैं। अल्पकालिक स्मृति फिर दूसरी नियंत्रण प्रक्रिया अनुरक्षण पूर्वाभ्यास को सक्रिय करती है जिससे सूचना को वांछित समय तक धारण किया जा सके। यह पूर्वाभ्यास सूचना को पुनःस्मरण कर अनुरक्षित करता है तथा जब पूर्वाभ्यास रुक जाता है तब सूचना का क्षय हो जाता है।

सूचना अल्पकालिक स्मृति से दीर्घकालिक स्मृति में विस्तारपरक पूर्वाभ्यास के द्वारा पहुंचती है। अनुरक्षण पूर्वाभ्यास के विपरीत, जिसमें मूक या वाचिक रूप से दुहराया जाता है, इसमें धारण की जाने वाली सूचना को दीर्घकालिक स्मृति में पूर्व संचित सूचना के साथ जोड़ने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, 'मानवता' शब्द का अर्थ याद करना सरल होगा, यदि हम पहले से 'करुणा' 'सत्य' और 'सद्भावना' के संप्रत्ययों का तात्पर्य जानते हों। नई सूचना के साथ आप कितना साहचर्य उत्पन्न कर सकते हैं, यह उसके स्थायित्व को निर्धारित करेगा। विस्तारपरक पूर्वाभ्यास में व्यक्ति एक सूचना को उससे उद्वेलित विभिन्न साहचर्यों के आधार पर विश्लेषित करता है। इसमें सूचना को विभिन्न संभावित तरीकों से एकत्रित किया जाता है। सूचना को किसी तार्किक ढांचे में विस्तृत किया जा सकता है अथवा समान स्मृतियों से जोड़ा जा सकता है।

अल्पकालिक स्मृति और दीर्घकालिक स्मृति वास्तव में दो भिन्न स्मृति भंडार हैं, वहीं अन्य प्रयोगों ने इनकी विभिन्नता पर प्रश्नचिह्न लगाया है। उदाहरणस्वरूप पहले यह प्रदर्शित किया गया कि अल्पकालिक स्मृति की सूचना प्रतिध्वन्यात्मक रूप से संकेतित की जाती है जबकि दीर्घकालिक स्मृति की सूचना शब्दार्थ रूप से, किंतु बाद के प्रायोगिक प्रमाण यह प्रदर्शित करते हैं कि अल्पकालिक स्मृति में सूचना शब्दार्थ के रूप में तथा दीर्घकालिक स्मृति में प्रतिध्वन्यात्मक रूप में भी संकेतित की जा सकती है।

टिप्पणी

सन 1970 में शैलिस (Shallice) एवं वारिंगटन (Warrington) ने एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया जो KF के नाम से जाना जाता था, जिसके प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध का बायां हिस्सा चोट लगने के कारण क्षतिग्रस्त हो गया था। कालांतर में यह पाया गया कि उसकी दीर्घकालिक स्मृति तो सुरक्षित थी किंतु अल्पकालिक स्मृति बुरी तरह से प्रभावित हो गई थी। सूचनाएं दीर्घकालिक स्मृति में अल्पकालिक स्मृति से होकर ही जाती हैं। यदि KF की अल्पकालिक स्मृति प्रभावित थी तो दीर्घकालिक स्मृति कैसे सामान्य थी? कई अन्य अध्ययनों ने यह प्रदर्शित किया है कि स्मृति की प्रक्रियाएं सभी सूचनाओं के लिए समान होती हैं, चाहे वे कुछ सेकण्ड के लिए धारण की गई हों या अधिक समय के लिए। साथ ही, स्मृति भंडारों को अलग किए बिना भी स्मृति को पर्याप्त रूप से समझा जा सकता है।

दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार

जिस प्रकार अल्पकालिक स्मृति में एक से अधिक घटक होते हैं, उसी तरह दीर्घकालिक स्मृति भी ऐकिक नहीं है, क्योंकि इसमें विभिन्न प्रकार की सूचनाएं होती हैं। इस दृष्टिकोण से दीर्घकालिक स्मृति के कई प्रकार होते हैं। उदाहरणस्वरूप, दीर्घकालिक स्मृति का एक प्रमुख वर्गीकरण, घोषणात्मक एवं प्रक्रियामूलक (कभी–कभी अघोषणात्मक) स्मृतियां हैं। सभी सूचनाएं जिनमें तथ्य, नाम, तिथि; जैसे– रिक्शा के तीन पहिए होते हैं। भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ, मेंढक उभयचर प्राणी है, घोषणात्मक स्मृति के अंग हैं। दूसरी ओर, प्रक्रियामूलक स्मृति उन स्मृतियों से संबंधित है जिनमें किसी कार्य को पूरा करने के लिए कुछ कौशल की आवश्यकता होती है; जैसे– साइकिल चलाना, बास्केटबॉल खेलना इत्यादि। घोषणात्मक स्मृति से संबंधित तथ्यों का शाब्दिक वर्णन किया जा सकता है जबकि प्रक्रियामूलक स्मृति को सहजता से वर्णित नहीं किया जा सकता। उदाहरणस्वरूप आप यह तो बता सकते हैं कि बास्केटबॉल कैसे खेला जाता है, लेकिन यदि कोई पूछे कि साइकिल कैसे चलाई जाती है तो यह बताना आपके लिए कठिन होता है।

टलविंग ने एक अन्य रूप में वर्गीकरण किया है– घोषणात्मक स्मृति को घटनापरक या आर्थी स्मृति के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

घटनापरक स्मृति में जीवन चरित से संबंधित सूचनाएं होती हैं। हमारे निजी जीवन से संबंधित स्मृतियां घटनापरक स्मृति बनाती हैं, इसलिए सामान्यतया इनका सांवेगिक स्वरूप होता है।

जीवन के अनुभवों को भूलना सरल नहीं होता, किंतु यह भी सत्य है कि बहुत सारी घटनाएं जीवन में लगातार होती रहती हैं जिनमें सभी को हम याद नहीं रखते। दुःखद एवं कष्टप्रद अनुभवों को हम उतना याद नहीं रखते जितना सुखद अनुभवों को।

आर्थी स्मृति सामान्य ज्ञान एवं जागरूकता की स्मृति है। सभी प्रकार के संप्रत्यय, विचार तथा तर्कसंगत नियम आर्थी स्मृति में संचित होते हैं। उदाहरणस्वरूप, अर्थगत स्मृति के कारण ही हम 'अहिंसा' का अर्थ याद रख पाते हैं या हम यह भी याद कर पाते हैं कि 2+6=8 होता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. "सच्ची सीख मुश्किल से विस्मृत होती है।" यह किसका कथन है?

(क) वाटसन (ख) एडम्स

(ग) फ्रायड (घ) हेम्स ट्रेकर

8. मनोविज्ञानियों ने स्मरण को मापने की कौन सी विधि का प्रतिपादन किया है?

(क) रिकॉल (ख) पहचान

(ग) पुनःसीख (घ) ये सभी

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (ख)
4. (ख)
5. (ग)
6. (घ)
7. (ख)
8. (घ)

2.7 सारांश

विभिन्न अनुसंधानों के माध्यम से विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की प्रक्रिया का गहनता से अध्ययन किया है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा जो निष्कर्ष निकाले हैं और अधिगम की प्रक्रिया के विषय में जो संगठित विचार प्रस्तुत किये हैं, उन्हें ही अधिगम के सिद्धान्त कहा जाता है।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे को रचनावादी विचारधारा के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है, जिनके संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत ने मनोविज्ञान एवं अधिगम के प्रति व्यवहारवादी विचारधारा को चुनौती देकर उससे भिन्न मनोविज्ञान में संज्ञानवादी विचारधारा की नींव रखी।

ऑसुबेल का एक ऐसा ज्ञान सिद्धान्त है जो व्यवहारवादियों से तो आमतौर पर विभेद रखता ही है, किन्तु बहुत–कुछ पियाजे और ब्रूनर से भी विभिन्नता प्रदर्शित करता है। यद्यपि वह यह मानता है कि खोज द्वारा सीखना महत्वपूर्ण है, किन्तु वह यह भी स्पष्ट करता है कि कुछ दशाओं में यह अकुशल और यहां तक कि कहीं–कहीं यह नामुमकिन भी है। इसके साथ–साथ वह यह भी मानता है कि उपदेश शिक्षण–पद्धति

टिप्पणी

(Didactic) अनेक स्थितियों में सबसे सरल तथा सबसे कुशल सीखने की पद्धति है। और परिणामस्वरूप वह यह मानता है कि इसे भी सीखने के लिए चुना जा सकता है।

टॉलमैन का यह सिद्धान्त S-R Theory तथा Cognitive Field Theory के मध्य स्थित हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस सिद्धान्त की जड़ें व्यवहार में स्थित हैं। परन्तु यह सिद्धान्त S-R Connectionism (संयोजनवाद) के खिलाफ है। टॉलमैन S-R सिद्धान्त तथा प्रयत्न एवं भूल (Trial and Errar) सिद्धान्त दोनों की आलोचना करते हैं। वह कहते हैं कि संपूर्ण अधिगम प्रक्रिया 'हिट एण्ड मिस अफेयर'' (Hit and miss affairs) नहीं है। साथ ही, ना तो यह उद्देश्यहीन है ना ही यादृच्छिक (random) है। यह यान्त्रिक (mechanical) भी नहीं यह एक सोदेश्यपूर्ण है और न ही (Purposive) क्रिया है जो अपने उद्देश्य को प्राप्त करे हेतु प्रयासरत होती है।

संपूर्ण शिक्षण अधिगम पर व्यवहारवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव पड़ा। व्यवहारवादियों द्वारा किए गए अधिगम से संबंधित अनुसंधान ने शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप देने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। समय के साथ हुए परिवर्तनों और अधिगम के क्षेत्र में हुए बाद के अनुसंधानों ने यह सिद्ध किया कि व्यवहारवादी शिक्षण व्यवस्था ने आदमी की आंतरिक सोचने व समझने की प्रक्रिया की उपेक्षा करके उसे केवल वातावरण के उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया देने वाला एक जीव बना दिया है, जबकि व्यक्ति तार्किक क्षमता से युक्त प्राणी है। व्यवहारवाद की इन्हीं कमियों ने रचनावादी दृष्टिकोण को जन्म दिया।

हल के सबलीकरण सिद्धान्त का मुख्य तत्व किसी आवश्यकता को दूर करना है। आवश्यकता की पूर्ति के लिये जो कुछ भी हम उस क्षण से पहले अनुभव कर रहे होते हैं वह हमारी अनुक्रिया से सम्बद्ध हो जाता है। यह सम्बद्ध अनुक्रिया आवश्यकता प्रतीत होने पर होती है। जैसे–मान लीजिये हमें कहीं से जलने की गंध आ रही है और जहां हम बैठे हैं, वहां पास से धुआं भी उठ रहा है तो ऐसी स्थिति में हमारा आग लगने का भय, जिसके कारण हम कांपने लगते हैं तथा गंध को अच्छी तरह से सूंघने की प्रतिक्रिया ये सब गन्ध एवं धुएं से सम्बन्धित हो जाती है।

अंतर्दृष्टि अथवा सूझ के सिद्धान्त का प्रतिपादन गेस्टाल्टवादियों ने किया था। इसलिये इस सिद्धान्त को गेस्टाल्ट सिद्धान्त भी कहते हैं। गेस्टाल्ट सिद्धान्त एक जर्मन स्कूल की देन है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बाद में अमेरिका चले गये। गेस्टाल्ट स्कूल का जन्म सन् 1920 में हुआ था। इस स्कूल से सम्बन्धित व्यक्ति मेक्स वर्दीमर, कोहलर तथा कोफका है। वर्दीमर इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। और कोफका तथा कोहलर ने इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाने का कार्य किया है।

अंतर्दृष्टि से सीखना तथा प्रयत्न एवं भूल से सीखने की विधि का अन्तर समस्या के सुलझाव तक पहुंचने के ढंग पर निर्भर करता है। यदि सुलझाव बहुत देर तक तथा बराबर प्रयास करते रहने से मिलता है तो यह प्रयत्न एवं भूल की विधि है और यदि सुलझाव यकायक मिलता है तो यह अंतर्दृष्टि की विधि है। बिल्ली पर किये गये थार्नडाइक के प्रयोगों में कोलहर को यह संदेह हुआ कि बिल्ली को पिजड़े से बहुत देर

टिप्पणी

तक इसलिये हाथ–पैर मारने पड़ते हैं क्योंकि पिंजड़े की पूरी परिस्थिति उनकी समझ में नहीं आती। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार जीत को परिस्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान होने पर वह अंतर्दृष्टि से उसमें से सुलझाव निकाल सकता है। परन्तु कोहलर ने कुत्तों, मुर्गियों, बन्दरों और चिम्पंजियों पर प्रयोग करने के लिए कुछ सरल समस्यायें बताईं।

रचनावादी परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत शिक्षार्थी अपने साथ पूर्व के अनुभव लाता है। वह किसी परिस्थिति के सांस्कृतिक तत्व तथा पूर्व ज्ञान के आधार पर स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है। रचनावादी परिप्रेक्ष्य में शिक्षार्थियों के समालोचनात्मक चिंतन व अभिप्रेरणा को विकसित करके उन्हें स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में परिवर्तित किए जाने पर जोर दिया जाता है। रचनावादी परिप्रेक्ष्य में शिक्षण युक्तियां व गतिविधियां अधिगम प्रक्रिया पर आधारित होती हैं।

ब्रूनर का विश्वास है कि सभी मानव संज्ञानात्मक गतिविधियों में श्रेणियां शामिल हैं। दुनिया से जुड़ी समझ बनाने के लिए यह निर्माण और प्रतिनिधित्वों की प्रक्रिया है। प्राप्त होने वाली जानकारी पूर्व मौजूदा श्रेणियों में आयोजित है या नई श्रेणियां ली जाती हैं। विकास के जिन चरणों का हम दुनिया का अर्थ समझने के लिए उपयोग करते हैं, ब्रूनर ने विकास के उन चरणों के अनुसार प्रतिनिधित्व के तीन प्रकारों की पहचान की है। इनमें से हर प्रकार का वस्तुओं और घटनाओं का प्रतिनिधित्व करने का अपना अनूठा तरीका है।

गेने के विचार से सीखने के अधिक सफल तरीके उस समय ही हो सकते हैं जब किसी व्यक्ति ने बहुत से विभिन्न प्रकार के शाब्दिक सम्बन्धों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया हो, S-R सीखने पर आधारित होते हैं। उसके अनुसार एक अवधारणा को सीखने की अनेक सम्भावनाएं उस समय होती है जब वह विभिन्न प्रकार के शाब्दिक सम्बन्धों से परिचित हो। विद्यार्थी नियमों को अधिक सरलता से उस समय समझ लेते हैं। जब उन्होंने उचित प्रत्यय अधिगम कर लिया हो। वे समस्या का हल करने में तभी अधिक सफल हो सकते हैं जब उन्होंने नियमों, सिद्धान्तों को बड़ी संख्या में ठीक से जान लिया हो तथा समझ लिया हो।

स्मृति हमारी कार्यक्षमता में अभिवृद्धि करती है। स्मृति हमें महत्वपूर्ण तथ्यों, विचारों, नामों, आदि, एवं अन्य सूचना के मदों को स्मरण रखने के योग्य बनाती है। वास्तव में, स्मृति एक व्यक्ति की सबसे उत्तम मित्र, मार्गदर्शक एवं दार्शनिक है। स्मृति के बिना, एक व्यक्ति अशुद्ध व अक्षम बन जाता है। स्मृति मस्तिष्क का वह प्रकार्य है जिसके आधार पर एक व्यक्ति अपनी गतिविधियों द्वारा अर्जित विचारों को अभिलेखित, प्रतिधारित एवं उत्पन्न करता है।

सूचना अल्पकालिक स्मृति से दीर्घकालिक स्मृति में विस्तारपरक पूर्वाभ्यास के द्वारा पहुंचती है। अनुरक्षण पूर्वाभ्यास के विपरीत, जिसमें मूक या वाचिक रूप से दुहराया जाता है, इसमें धारण की जाने वाली सूचना को दीर्घकालिक स्मृति में पूर्व संचित सूचना के साथ जोड़ने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, 'मानवता' शब्द का अर्थ याद करना सरल होगा, यदि हम पहले से 'करुणा' 'सत्य' और

टिप्पणी

'सद्भावना' के संप्रत्ययों का तात्पर्य जानते हों। नई सूचना के साथ आप कितना साहचर्य उत्पन्न कर सकते हैं, यह उसके स्थायित्व को निर्धारित करेगा। विस्तारपरक पूर्वाभ्यास में व्यक्ति एक सूचना को उससे उद्वेलित विभिन्न साहचर्यों के आधार पर विश्लेषित करता है। इसमें सूचना को विभिन्न संभावित तरीकों से एकत्रित किया जाता है। सूचना को किसी तार्किक ढांचे में विस्तृत किया जा सकता है अथवा समान स्मृतियों से जोड़ा जा सकता है।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **अधिगम** – अधिगम अनुभव तथा प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार में होने वाला सुधारात्मक परिवर्तन है।
- **तलरूप** – क्षेत्र सिद्धांत को तलरूप कहा जाता है।
- **सदिश** – मनोविज्ञान में सदिश एक बल का प्रतिनिधित्व करता है।
- **गेस्टाल्ट** – टॉलमैन के सिद्धांत को गेस्टाल्ट सिद्धांत कहते हैं।
- **प्रतिधारण** – यह एक मानसिक अनुभव के रूप में व्यक्ति के अवचेतन मस्तिष्क में भूतकालिक अनुभव के निर्वासन की प्रक्रिया है।

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अधिगम से क्या तात्पर्य है? परिभाषित कीजिए।
2. संज्ञानात्मक सिद्धांत के अंतर्गत किन सिद्धांतों को शामिल किया जाता है?
3. ऑसुबैल के सिद्धांत को संज्ञानात्मक सिद्धांत क्यों कहा जाता है?
4. स्मृति एवं विस्मृति में क्या अंतर है? स्पष्ट कीजिए।
5. अंतर्दृष्टि सिद्धांत से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अधिगम के व्यवहारवादी व संज्ञानात्मक सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
2. पियाजे के रचनावादी दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।
3. अधिगम के बारे में ब्रूनर और गेने के विचारों पर प्रकाश डालिए।
4. विस्मृति के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
5. वाईगोत्सकी के सामाजिक रचनावाद की विवेचना कीजिए।
6. अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

ओर्मरॉड, जीन एलिस, *ह्यूमैन लर्निंग : थिअरीज, प्रिंसिप्ल्स एंड एजुकेशन ऐप्लिकेशंस,* न्यू यॉर्क : मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी।

सैंट्रॉक, जॉन डब्ल्यू., 2001, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* न्यू यॉर्क : मैकग्रॉ हिल्स।

अनीता ई., 1998, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* मेसाच्युसेट्स : एलिन एंड बेकन।

ड्रिस्कॉल, एम.पी., 2005, *साइकॉलॉजी ऑफ लर्निंग फॉर इन्स्ट्रक्शन,* टोरंटो : पीयर्सन।

इकाई 3 अभिप्रेरणा अभिसरण और विभिन्न अधिगम

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 अभिप्रेरणा की अवधारणा
  3.2.1 आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरणा
  3.2.2 शिक्षार्थी की आवश्यकता और अभिप्रेरणा बढ़ाना
  3.2.3 सहयोग और प्रतिस्पर्धा की भूमिका
3.3 बुद्धिमता की अवधारणा
  3.3.1 विविध क्षमताएं
  3.3.2 शिक्षण अधिगम के लिए आकलन और महत्व
3.4 रचनात्मकता की अवधारणा
  3.4.1 रचनात्मकता का मापदंड
  3.4.2 शिक्षार्थियों में रचनात्मकता को बढ़ावा देने की रणनीतियां
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

शिक्षण में अभिप्रेरणा का विशेष महत्व होता है। वास्तव में अभिप्रेरणा ही अधिगम का एक आधार है। अधिगम प्रक्रिया का वह केन्द्र बिन्दु माना जाता है। छात्रों के व्यवहार में व्यक्ति वांछित परिवर्तन एवं अधिगम के लिये शिक्षक द्वारा उन्हें प्रेरित किया जाना अति आवश्यक है। शिक्षण का नियोजन तथा व्यवस्था कितनी भी अच्छी क्यों न हो परन्तु यदि छात्रों को एक निश्चित रीति से व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित नहीं किया जाता तो शिक्षण–अधिगम (Teaching Learning) से आगे नहीं बढ़ सकती है। और न ही अधिगम के उद्देश्यों को भली–भांति प्राप्त किया जा सकता है इसलिए कहा जा सकता है कि अभिप्रेरणा सीखने का एक आवश्यक अंग है।

अभिप्रेरणा की प्रविधियों का चयन एवं प्रयोग कक्षा स्तर पर छात्रों की आवश्यकताओं, सीखने के उद्देश्यों एवं स्वरूप आदि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए तभी अधिगम प्रभावशाली एवं स्थर हो सकेगा। मेहरान के टामसन ने अभिप्रेरणा के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है– "छात्र की मानसिक क्रिया के बिना विद्यालय में अधिगम बहुत कम होता है। सबसे अधिक प्रभावशाली अधिगम उस समय होता है जब मानसिक क्रिया सबसे अधिक होती है। अधिकतम मानसिक क्रिया प्रबल अभिप्रेरणा के फलस्वरूप होती है।"

बुद्धिमत्ता को मानव विकास की रीढ़ की हड्डी माना जाता रहा है। बुद्धिमत्ता की कसौटी क्या है? इस पर विभिन्न विद्वानों ने अपनी–अपनी तरह से विश्लेषण और मंथन

टिप्पणी

किया। हैरत की बात है कि लोगों में मतैक्य नहीं है। पर कहना उचित है कि बुद्धिमत्ता विद्यालय एवं जीवन में सफलता को प्रभावित करने वाली एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्ती वस्तु है। इसका चौतरफा वर्गीकरण भी किया गया। किसी ने इसे सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता माना तो किसी ने सीखने की योग्यता कहा। विस्तृत क्षेत्र वाली इस प्रवृत्ति का मूल्यांकन भी होता रहा। कुछ सिद्धांतों का भी सृजन हुआ। कुछ विद्वानों ने इसे सफलता की अपरिहार्य सीढ़ी भी माना और इसे मापने का पैमाना भी खोजा गया। बुद्धिमत्ता का एक विस्तृत फलक है जिसमें बहुत कुछ समाया हुआ है और समय के साथ–साथ यह फलक और भी विस्तृत होता जा रहा है। अभी भी इस पर मंथन जारी है।

प्रस्तुत इकाई में अभिप्रेरणा की अवधारणा, सहयोग और प्रतिस्पर्धा की भूमिका, बुद्धिमता की अवधारणा, शिक्षण अधिगम के लिए आकलन, रचनात्मकता की अवधारणा आदि तथ्यों का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अभिप्रेरणा की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरणा के मध्य अंतर को समझ पाएंगे;
- बुद्धिमत्ता की अवधारणा एवं सिद्धांतों से अवगत हो पाएंगे;
- शिक्षण अधिगम में आकलन के महत्व को जान पाएंगे;
- रचनात्मकता की अवधारणा को समझ पाएंगे।

3.2 अभिप्रेरणा की अवधारणा

शिक्षा जगत में लक्ष्य और साधन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे एक–दूसरे के पूरक हैं। एक लक्ष्य की पूर्ति दूसरे लक्ष्य की पूर्ति का साधन बन जाता है। इस प्रकार साधन की उपलब्धता के कारण नये लक्ष्य निर्मित होते हैं। इसी प्रकार छोटे–छोटे लक्ष्य मिलकर बड़े लक्ष्यों की प्रेरणा को जन्म देते हैं। वास्तव में प्रेरणा व्यक्ति को किसी कार्य को करने के लिये उकसाने का कार्य करती है। कार्य करने की यह उत्तेजना व्यक्ति में अन्दर या बाहर से आ सकती है। मनोविज्ञान में प्रेरणा से अर्थ है–आन्तरिक उत्तेजना। वास्तव में प्रेरणा एक आन्तरिक शक्ति है जो व्यक्ति को किसी भी कार्य को करने के लिये अतिरिक्त उत्साह प्रदान करती है।

मोटीवेशन (Motivation) शब्द का भी लगभग यही शाब्दिक अर्थ है।

गिलफोर्ड के अनुसार, ''प्रेरक कोई भी विशेष आन्तरिक कारक अथवा दशा है जो क्रिया को प्रारम्भ करने अथवा बनाये रखने को प्रवृत्त होता है।''

"A Motive is any particular internal factor or condition that tends to intiate and to sustain activity." —Guilford J.P.

टिप्पणी

वुडवर्थ के अनुसार, ''किसी कार्य को प्रारम्भ करने, जारी रखने और नियमित बनाने की प्रक्रिया को अभिप्रेरणा कहते हैं।''

"Motivation is the process of arousing sustaining and regulating activity." good.

मैक्डूगल के अनुसार, ''प्रेरक प्राणी की आन्तरिक व मनोदैहिक दशाएं हैं, जो उसे किसी कार्य को एक विशिष्ट ढंग से करने के लिये बाध्य करती हैं।

"Motives are conditions of psychological and psychological within the organism the dispases it to act in certain ways. — MC Doygall

शेफर एवं अन्य, ''अभिप्रेरणा क्रिया की एक ऐसी प्रवृत्ति है जो कि चालक (Drive) द्वारा उत्पन्न होती है तथा समायोजन (Adjustment) द्वारा समाप्त होती है।''

"A motive may now be defined as a tendency to activity initiated by drive and concluded by the adjustment." — Shaffer & Others.

अभिप्रेरणा के मूल संप्रत्यय

अभिप्रेरणा के तीन मूल संप्रत्यय होते हैं जो निम्न हैं–

आवश्यकता (Need)

प्रत्येक प्राणी की कुछ मौलिक आवश्यकताएं हुआ करती हैं। जिनके बिना वह जीवित नहीं रह सकता है। जैसे–हवा, भोजन, पानी, कामवृत्ति, मल–मूत्र त्यागादि। ये आवश्यकतायें प्राणी में एक आन्तरिक तनाव उत्पन्न करती हैं। आवश्यकताओं की तृप्ति होने पर तनाव कम हो जाता है।

बोरिंग लैंगफील्ड के अनुसार, ''आवश्यकता प्राणी की वह आन्तरिक अवस्था है जो किसी उद्दीपनों अथवा लक्ष्यों के सम्बन्ध में जीवों का क्षेत्र संगठित करती है और उनकी प्राप्ति हेतु क्रिया उत्पन्न करती है।

चालक (Drive)

प्राणी की आवश्यकताओं (Needs) से चालक (Drive) की उत्पत्ति होती है। भोजन की कमी की अवस्था को आवश्यकता कहा जाता है और प्यास को चालक की अवस्था माना जायेगा। भूख की आवश्यकता से 'भूख चालक' (Hunger Drive) पानी की आवश्यकता से 'प्यास चालक (Thirst Drive) और काम की आवश्यकता से 'काम चालक' (Sen Drive) की उत्पत्ति होती है।

डैशिल के अनुसार, ''चालक शक्ति का वह मौलिक स्रोत है जो व्यक्ति को क्रियाशील कर देता है।

"Drive is an original source of energy that activates the human organism."

— Dashiell

प्रोत्साहन (Incentives)

प्राणी के चालकों (Drives) की तृप्ति करने वाली वस्तुएं उद्दीपन (Incentives) कहलाती हैं। उदाहरण के लिए 'भूखचालक' (Hunger Drive) का उद्दीपन (Incentives) है। इसी

टिप्पणी

प्रकार 'प्यास चालक' (Thirst Drive) की सन्तुष्टि पानी से होती है। अतः पानी उद्दीपन है। बोरिंग तथा अन्य के अनुसार ''उद्दीपन वह वस्तु, परिस्थिति अथवा क्रिया है जो व्यवहार को उत्तेजना प्रदान करती है, उसे जारी रखती है तथा उसे दिशा देती है।

"An Incentive may be difined as an object, a situation or activity which excite, maintain and directs behaviour." –Boring and Others.

वास्तव में देखा जाये तो आवश्यकता, चालक एवं उद्दीपन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आवश्यकताएं चालकों को जन्म देती है। चालक एक तनावपूर्ण स्थिति होती है तथा व्यवहार को एक निश्चित दिशा और रूप प्रदान करती है। उद्दीपन द्वारा आवश्यकता की पूर्ति होती है। पूर्ति के पश्चात् चालक की समाप्ति हो जाती है। आवश्यकता, चालक एवं उद्दीपन के सम्बन्ध को निम्न रेखाचित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है–

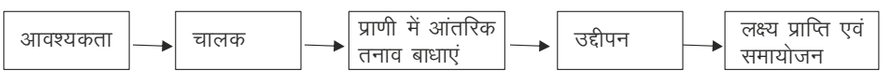

प्रोत्साहन के प्रकार (Kinds of Incetive)

प्रोत्साहन के दो प्रकार हैं–

1. **धनात्मक प्रोत्साहन** : वह प्रोत्साहन होते हैं जिन्हें व्यक्ति स्वेच्छा से प्राप्त करने के लिये प्रयासरत रहता है; जैसे–भोजन, पानी, उपलब्धि शक्ति आदि।
2. **ऋणात्मक प्रोत्साहन** : वह प्रोत्साहन होते हैं जो व्यक्ति के लिए पीड़ादायक होते हैं और व्यक्ति उनसे बचना चाहता है, जैसे–दण्ड, असफलता, क्षति आदि।

इस प्रकार अभी तक मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा की व्याख्या करने के लिये अभिप्रेरणात्मक चक्र का उपयोग करते रहे हैं, किन्तु 1975 में डेसी (Desi) ने मानव अभिप्रेरणा को अभिप्रेरणात्मक चक्र द्वारा और अधिक स्पष्ट एवं सरल बनाने के लिये इसमें एक नया पद संज्ञान (Cognition) और जोड़ा है। इस प्रकार के अभिप्रेरणात्मक चक्र को संज्ञानात्मक अभिप्रेरणात्मक चक्र कहा जाता है।

इस चक्र के आधार पर मानव अभिप्रेरणा की व्याख्या इस प्रकार की जाती है–जब व्यक्ति किसी उद्दीपक से उद्दीप्त होता है तो उसकी क्रियाशीलता व तनाव का स्तर बढ़ जाता है और वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगता है। लक्ष्य की ओर अग्रसर होते समय उसे इस बात का ज्ञान होने लगता है कि उक्त लक्ष्य की प्राप्ति होने पर उसे कितना सन्तोष मिलेगा। इस तरह के अनुमान को भावी सन्तोष से अवगत की स्थिति कहा जाता है। यदि वास्तविक सन्तोष का स्तर भावी सन्तोष के स्तर से कम रहता है तो अभिप्रेरण बना रहता है और व्यक्ति वास्तविक सन्तोष के स्तर तक पहुंचने के लिए निरन्तर क्रियाशील बना रहता है।

अभिप्रेरणा के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा को दो भागों में बांटा है। पहले भाग के अन्तर्गत जन्मजात, जैविक अभिप्रेरक आते हैं। ये अभिप्रेरक व्यक्ति में जन्म से आते हैं। जैसे–भूख, प्यास, निद्रा आदि। दूसरे भाग के अन्तर्गत अर्जित अभिप्रेरक आते हैं। जिन्हें व्यक्ति अपने काल

में स्वयं को सामाजिक रूप से श्रेष्ठ बनाए रखने के लिए सीखता है जैसे अनुमोदन उपलब्धि, शक्ति अभिप्रेरणा आदि।

टिप्पणी

(अ) प्राथमिक अभिप्रेरक/जन्मजात अभिप्रेरक

1. **भोजन**–भोजन की आवश्यकता भूख अन्तर्नोद को जन्म देती है। भूख एक ऐसी स्थिति है जिसके कारण व्यक्ति का समस्त शारीरिक और मानसिक सन्तुलन बिगड़ सकता है। अनेक अध्ययनों से पता चला है कि भूख की उत्पत्ति आमाशय की मांसपेशियों में संकुचन से होती है। जब व्यक्ति का आमाशय खाली हो जाती है तो उसमें संकुचन होने लगता है, जिससे व्यक्ति को भूख का अनुभव होने लगता है। इसे मनोवैज्ञानिकों ने भूख का स्थानीय उद्दीपक सिद्धान्त (Local Stimulus Theory of hunger) कहा है।

   कैनन तथा वाशबर्न (W.B. Cannon and A.L. Washburn, 1921) एवं कार्लसन (A.J. Carlson 1961) ने इस संबंध में एक प्रयोग किया। उन्होंने अपने प्रयोज्य को एक गुब्बारा निगलवाया। इस गुब्बारे से एक नली सम्बन्धित थी जो प्रयोज्य के मुंह से होती हुई काइमोग्राफ से सम्बन्धित थी। गुब्बारे को नली से हवा भर कर फुला देने के पश्चात प्रयोज्य को कहा गया कि जब वह भूख का अनुभव करे तो एक निश्चित कुन्जी दबा दे। जब अमाशय की मांसपेशियों में संकुचन होता था अर्थात् प्रयोज्य को भूख का अनुभव होता था तो गुब्बारे से हवा बाहर निकलने के कारण स्मॉक ड्रम के कागज पर ऊपर से नीचे की दिशा में लाइन खिंच जाती है। इस प्रयोग के आधार पर कौन तथा वाशवर्न ने यह बताने का प्रयास किया कि अमाशय की मांसपेशियों में संकुचन से व्यक्ति को भूख का अनुभव होता है किन्तु बाद में मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर इस सिद्धान्त को गलत सिद्ध कर दिया।

   डेविस गैराकेलो व गाल्ट (1959) ने अपने प्रयोग प्रयोगों के आधार पर बताया कि आमाशय में संकुचन भूख के कारण नहीं बल्कि गुब्बारे के कारण होता है साथ ही उनकी यह भी मान्यता थी कि आमाशय को समाप्त कर देने अथवा आमाशय से मस्तिष्क तक जाने वाली तन्त्रिकाओं को क्षतिग्रस्त करने से भोजन की इच्छा एवं भोजन करने के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं होता है। स्वेन (1948) ने मनुष्यों ने वेगस नाड़ी (Vagus herve) सूचना को मस्तिष्क में पहुंचने से रोक दिया किन्तु ऐसे प्रयोज्यों ने भी सामान्य प्रयोज्यों की तरह ही भोजन ग्रहण किया।

   कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भूख अभिप्रेरक की व्याख्या करते हुए कहा कि जब रक्त में शर्करा की कमी हो जाती है तो व्यक्ति को भूख का अनुभव होने लगता है। फ्रीडमैन तथा स्टीकर (Friedmata & Sticker, 1976) ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि बहुत लम्बे समय तक कुछ न खाने पर यक्रत (Liver) की चपापचयी क्रियाओं (Metabolic Processes) में परिवर्तन होने लगता है जिसकी सूचना मस्तिष्क के हाइपोथेलेमस (Hypothalamus) व्यक्ति की भूख का अनुभव होन लगता है।

   भूख अभिप्रेरक का एक अन्य शारीरिक आधार लट्ेल हाइपोथैलेमस। (Lateral Hypothalamus or LH) एक वेन्ट्रोमेडीयल (Ventromedial hypothalomus VMH) भी है। LH को विद्युत धारा (Electiric Shock) से उत्तेजित करने पर पशु अधिक

भूख का अनुभव करने लगता है। इसके विपरीत VMH को उत्तेजित करने पर पशु भोजन ग्रहण करना बन्द कर देता है। किन्तु कुछ अध्ययनों में यह भी देखा गया कि LH तथा VMH को उत्तेजित कर देने के स्थान पर यदि इन दोनों को सत कर दिया जाए तो ऐसी स्थिति में पहले के विपरीत परिणाम देखने को मिलते हैं अर्थात् LH को सत कर देने पर पशु को भूख लगनी बन्द हो जाती है। और VMH को सत करने पर पशु को पहले की अपेक्षा अधिक भूख लगने लगती है। कुछ अन्य अध्ययनों में यह भी देखा गया कि मस्तिष्क में ट्यूमर (Brain tumer) के कारण VMH के क्षतिग्रस्त होने पर व्यक्ति पहले की तुलना में अधिक भूख लगने लगती है। कुछ अन्य अध्ययनों में यह भी देखा गया कि मस्तिष्क में ट्यूमर (Brain tumer) के कारण VMH के क्षतिग्रस्त होने पर व्यक्ति पहले की तुलना में अधिक खाना खाने लगा तथा क्षतिग्रस्त होने पर व्यक्ति में भूख की समाप्ति हो गयी।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि भूख अभिप्रेरक का शारीरिक आधार मस्तिष्क ही नहीं बल्कि अन्य कारक जैसे–रक्त में शर्करा की कमी चपापचयी क्रियाओं में परिवर्तन आदि भी है।

2. **प्यास** (Thirst)–जीवन के लिए जल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शरीर के विभिन्न आन्तरिक अंगों को पानी की आवश्यकता होती है चूंकि विभिन्न रूपों में जल शरीर से बाहर निकलता रहता है अतः उसकी आपूर्ति शीघ्रातिशीघ्र होनी जरूरी होती है। कैनन (Cannon 1918) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर बताया कि प्यास की उत्पत्ति मुंह और गला सूखने के कारण होती है। इसे प्यास का स्थानीय सिद्धान्त (Local Theory of Thirst) कहा जाता है। किन्तु बाद में कहा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त से अपनी असहमति दिखाते हुए इसे प्यास के प्रारम्भिक कारक के रूप में स्वीकार किया। कुछ मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) पीयूष ग्रन्थि (Pituitary gland) से निकलने वाला एन्टीड्यूरटिक हारमोन (Antiduretic Hormones or ADH) वृक्क (Kidney) द्वारा पानी शरीर से बाहर निकलने की क्रिया पर अपना नियन्त्रण रखता है। इस प्रकार ADH वृक्क (Kidney) की कार्यवाही को नियन्त्रित कर शरीर में पानी का सामान्य स्तर बनाये रखता है। इपस्टीन एवं उनके सहयोगियों (Epstein, 1937) ने प्यास की व्याख्या करने के लिए डब्ल डिपलेस सिद्धान्त दिया। सिद्धान्त दो कारकों पर आधारित है प्रथम कोशिकाओं में पानी की कमी (Cellular dehydration) शरीर में पानी की कमी होने पर शरीर की कोशिकाओं का भीतरी भाग सूखने लगता है। इस स्थिति में हाइपौथेलेमस की एक तन्त्रिका कोशिका ओस्मोरिसेप्टर (Osmoreceptor) मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों को स्नायु प्रवाहों (Nerve impulse) द्वारा पानी में पानी की कमी के बारे में सूचित करती है जिससे व्यक्ति को प्यास का अनुभव होता है। इस स्थिति को कोशकीय निर्जलन (Cellular dehydration) द्वितीय मात्रा में कमी हो जाना (Hypovademia) जब किसी कारणवश शरीर में पानी की कमी हो जाती है। तो शरीर में खून की मात्रा में भी कमी आ जाती है। और रक्तचाप (Blood Presure) रक्त चाप में कमी के कारण वृक्क (Kidney) पदार्थ रैनिन निकलता है जिसके खून में मिलने से एनगियोटेनसिन–(Angiotensin) बनता है। ऐनगियोलेसिन II व्यक्ति में प्यास की अनुभूति उत्पन्न करता है।

टिप्पणी

3. **काम** (Sex)—काम अभिप्रेरक को जैविक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के अभिप्रेरकों के अन्तर्गत रखा जाता है। इस अभिप्रेरक का मुख्य कारण हारमोनल (Harmonals) कारकों एवं मस्तिष्कीय कारकों को माना जाता है। जबकि इसे सामाजिक तत्व, व्यक्ति की आदतें व मनोवृत्ति भी प्रभावित करती है। भूख और प्यास के समान आवश्यक अभिप्रेरक न होने पर भी यह एक शक्तिशाली अभिप्रेरक है।

   जीवन के यौनारम्भ काल में पुरुषों (Males) में टेस्टोस्ट्रोन (Testosterone) एवं ऐन्ड्रोजन (Androgen) हारमोन्स साबित होने लगते हैं। जो पुरूषोचित विशेषताएं उत्पन्न करते हैं तथा स्त्रियों (Femals) में एस्टोजेन्स (Estrogens) एवं प्रोजेस्ट्रोन (Progesterone) हारमोन्स स्रावित होने लगते हैं। जो स्त्रियों में गौण लैंगिक गुण (Secondary sexual characteristics) जैसे—मासिक धर्म का प्रारम्भ होना, स्तनों में वृद्धि आदि परिवर्तन होने लगते हैं। इन्हीं हारमोन्स के कारण प्राणियों के काम अभिप्रेरक की उत्पत्ति होती है।

   थॉम्पसन (Thompson), 1975 ने एक अध्ययन किया, जिसमें चूहों को सेक्स हारमोन्स (Sex harmons), एस्ट्रोजन एवं टेस्टोस्ट्रोन (Testosterone) परिणाम में उन्होंने देखा कि अपरिपक्व (Immatured) चूहों ने वयस्क चूहों जैसा व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। जब मादा चूहों ने जिनकी डिम्बसन्धि आपरेशन द्वारा निकाल दी (Ovary) गयी थी एवं नर चूहों ने जिनका बन्ध्याकरण (Castration) कर दिया गया था। इन्जेक्शन के प्रभाव से आपरेशन के पहले जैसा लैगिंग व्यवहार करने लगा।

   कुछ मनोवैज्ञानिकों ने काम में मस्तिष्क सम्बन्धी कारकों की भूमिका का अध्ययन किया। अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि हाइपोथैलेमस लैगिंग व्यवहार के लिए उत्तरदायी होता है। यदि पशुओं के हाइपोथैलेमस को सत कर दिया जाए तो लैगिंक व्यवहारों में अत्याधिक न्यूनता आ जाती है। इसके विपरीत हाइपोथैलेमस को हल्की विद्युत धारा से उत्तेजित करने पर नर एवं मादा दोनों प्रकार के पशुओं में लैंगिक क्रियाओं के लिए सक्रियता बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त नींद, मल—मूल त्याग अभिप्रेरक भी जन्मजात अभिप्रेरक के अन्तर्गत आते हैं।

(ब) अर्जित अभिप्रेरक (Secondary Motive)

1. **शक्ति अभिप्रेरक** (Power Motivation)—अन्य व्यक्तियों पर प्रभुत्व बनाये, रखने, उनसे अपनी इच्छानुसार काम कराने, उनके व्यवहार को नियन्त्रित करने आदि की इच्छा शक्ति अभिप्रेरक के लिए उत्तरदायी होती है। रॉजर्स (Rogers 1945) के अनुसार ''शक्ति अर्जित करने की, उसका प्रदर्शन करने की और दूसरों पर शासन करने की इच्छा से शक्ति की आवश्यकता की उत्पत्ति होती है'' शक्ति अभिप्रेरणा से प्रेरित व्यक्तियों में व्यक्तित्व में कुछ विशेष प्रकार के गुण पाए जाते हैं—

   1. इस प्रकार के व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों को अपने नियन्त्रण में रखकर अत्यन्त सन्तोष प्राप्त होता है।
   2. ऐसे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से प्रार्थना, धन आवेश व आक्रमणशीलता द्वारा अपनी बात मनवाने में सक्षम होते हैं।

टिप्पणी

3. शक्ति अभिप्रेरक से अभिप्रेरित व्यक्ति प्रायः अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करने वाले साधनों पर नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास करते हैं।
4. शक्ति अभिप्रेरणा से प्रेरित व्यक्ति सामाजिक मान्यताओं व मूल्यों को कम महत्व प्रदान करते हैं।
5. शक्ति अभिप्रेरणा आवेगशीलता, आक्रमणशीलता व वाद–विवाद को भी जन्म देती है।
6. शक्ति अभिप्रेरणा से प्रेरित व्यक्ति जल्द ही किसी व्यक्ति का नेतृत्व स्वीकार नहीं कर पाते हैं।

ऐसा माना जाता है कि व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति के लिए शक्ति अभिप्रेरक का होना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु कुछ व्यक्ति अपने शक्ति अभिप्रेरक का प्रयोग अन्य लोगों को धोखा देने व छल कपट करने में करते हैं। तो ऐसे शक्ति अभिप्रेरक को मैक्यावेलियनिज्म (Mechiaveilianism) कहा जाता है।

2. **उपलब्धि अभिप्रेरक** (Achievement Motive)–किसी क्षेत्र विशेष में अधिक से अधिक सफलता प्राप्ति के लिए उसी के अनुरूप कार्य करने की प्रवृत्ति उपलब्धि अभिप्रेरक होती है। मन, फर्नाल्ड व फर्नाल्ड (Man, Fernald & Fernald, 1972) उपलब्धि अभिप्रेरक से तात्पर्य श्रेष्ठता का विशेष स्तर प्राप्त करने से होता है'' सर्वप्रथम मरे ने उपलब्धि अभिप्रेरक के विषय स्तर में बताया? तत्पश्चात मैक्लीलैण्ड (MC Clelland) 1953, एवं एटकिन्सन (J.W. Atkinson) 1964 ने उपलब्धि अभिप्रेरणा व्यवहार को दिशा, तीव्रता और निरन्तरता प्रदान करती है।''

उपलब्धि अभिप्रेरणा की कुछ प्रमुख कसौटियां हैं, जो इस प्रकार हैं।

(i) इस प्रकार के व्यक्ति सफलता की ओर अग्रसर होते हैं एवं विफलता से बचने का प्रयास करते हैं।

(ii) ऐसे व्यक्ति उन कार्यों को करने पर अधिक जोर देते हैं। जिनके निष्पादन पर उन्हें प्रशंसा व सम्मान प्राप्त होने के अवसर अधिक होते हैं।

(iii) ऐसे व्यक्ति उन कार्यों को करना अधिक पसन्द करते हैं जिसके परिणाम को वह नियन्त्रित कर सके ताकि असफलता से बचा जा सके।

(iv) इस तरह के व्यक्ति यदि असफल होते हैं। तो वह इसका कारण स्वयं को ही मानते हैं।

(v) इस प्रकार के व्यक्ति संघर्षशील, बाधाओं से न घबराने वाले असफलता मिलने पर पहले से भी ज्यादा परिश्रम करने की प्रवृत्ति वाले होते हैं।

(vi) उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले व्यक्ति अपने व्यवहार में सातव्य प्रदर्शित करने वाले, माध्यम स्तर की चुनौतियां स्वीकार करने वाले व प्रायः उच्च आकांक्षा स्तर वाले होते हैं। एटकिन्सन ने उपलब्धि अभिप्रेरणा की व्याख्या दो आधारों पर की है।

(i) सफलता पाने की प्रवृत्ति

(ii) विफलता से बचने की प्रवृत्ति

टिप्पणी

3. **अनुमोदन अभिप्रेरक** (Approval Motive)–अनुमोदन की अभिप्रेरणा जिन व्यक्तियों में अधिक होती है, वह व्यक्ति ऐसे कार्यों को करना अधिक पसन्द करते हैं। जिनको करने पर अन्य लोग उनके कार्यों की सराहना व प्रशंसा करे। ऐसे व्यक्तियों की इच्छा होती है कि वह जो कार्य करे अन्य व्यक्तियों द्वारा उसे स्वीकार किया जाए। अन्य व्यक्तियों द्वारा किसी व्यवहार विशेष के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना ही अनुमोदन होता है। जिन व्यक्तियों में अनुमोदन अभिप्रेरणा अधिक होती है। वह समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार को करना अधिक पसन्द करते हैं व कई बार अन्य व्यक्तियों अथवा समूह के दबाव में अपना निर्णय बदल लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों में सुझाव ग्रहणशीलता अधिक पायी जाती है।

   इस अभिप्रेरक की अधिकता वयस्कों की अपेक्षा किशोरों में अधिक पायी जाती है ऐसा देखा गया है कि व्यक्ति अपने आत्म–सम्मान के स्तर को ऊंचा करने की इच्छा से भी इस अभिप्रेरक को अपने अन्दर बनाये रखते हैं अर्थात् सामाजिक नियमों के अनुरूप व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं। इस सम्बन्ध में क्राउनी तथा मारलो के अध्ययन महत्वपूर्ण है।

4. **सम्बन्ध अभिप्रेरक** (Affilition Motive)–व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही वह अपनी विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। अतः व्यक्ति को अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। सामाजिक व्यवस्था व्यक्तियों में परस्पर अपनत्व की भावना को बल देती है। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में एकता, आशावादिता, प्रेम, सुरक्षा, सहयोग, मानसिक शान्ति एवं परस्पर सहायता के गुण विकसित होते हैं। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि जिन व्यक्तियों में चिन्ता का स्तर जितना अधिक होगा। वह व्यक्ति उतने ही अधिक सामाजिक सम्बन्ध बनाने के लिए तत्पर होंगे। इस सम्बन्ध में शैचटर (Schachte 1959) ने एक प्रयोग किया। इस प्रयोग में उन्होंने एक प्रयोगिक समूह एवं एक नियन्त्रित समूह लिया। प्रयोग में कॉलेज छात्राओं के एक समूह को मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में लाकर एक बड़ी इलेक्ट्रॉनिक मशीन दिखाई गई और कहा गया कि अभी जो प्रयोग होने वाला है। उसमें इस मशीन का उपयोग किया जायेगा। प्रयोग के दौरान आपको विद्युत आघात दिया जायेगा, यह आघात आपको किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचाया जायेगा। वह निर्देश देने के बाद प्रयोज्यों को कुछ देर प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया : प्रतीक्षा के लिए वह उसी कक्ष में अकेले अथवा अन्य किसी कक्ष में समूह में प्रतीक्षा कर सकती है। जहां और अन्य लड़कियां भी हैं। तत्पश्चात् नियन्त्रित समूह को केवल वह मशीन दिखाकर उसे चलाने की विधि समझा दी। उसके बाद उन्हें भी प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। उन्हें भी कक्ष में अकेले अथवा अन्य कक्ष में समूह के साथ रहकर प्रतीक्षा करने का विकल्प दिया गया। परिणाम में देखा गया कि प्रायोगिक समूह की छात्राओं ने अकेले के स्थान पर समूह में प्रतीक्षा करना अधिक पसन्द किया। नियन्त्रित समूह की छात्राओं में इस प्रकार की प्रवृत्ति देखने के लिए नहीं मिली। जिससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गये–अधिक चिन्ता सम्बन्ध अभिप्रेरक को उत्पन्न करती है अर्थात् अधिक चिन्ता की स्थिति में व्यक्ति निम्न चिन्ता स्तर वाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सम्बन्ध

टिप्पणी

बनाता है। कुछ अन्य अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि अभिप्रेरणा, चिन्तास्तर, आयु एवं जन्म क्रम से भी सम्बन्धित है इन स्थितियों में व्यक्तियों में सम्बन्ध अभिप्रेरक अधिक पाये जाने के कारण मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रकार है–चिन्ता एवं डर उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में व्यक्तियों में सम्बन्ध अभिप्रेरक प्रायः इस कारण से भी बढ़ जाता है क्योंकि अपने समान ही अन्य लोगों की स्थिति होने पर व्यक्ति की चिन्ता कम हो जाती है। प्रथम जन्म–क्रम एवं अकेली सन्तान में भी सम्बन्ध अभिप्रेरक अधिक होता है।

5. **सामाजिक अभिप्रेरक** (Social Motives)–सामाजिक प्रेरक व्यक्ति को सामाजिक व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं। कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक प्रेरक नीचे जा रहे हैं।

   (i) **सामूहिकता** (Gregariousness)–मानव की सामूहिकता की भावना एक अर्जित प्रेरणा है। बचपन से मानव अन्य लोगों के सम्पर्क में आने से उसके अन्दर सामुदायिकता का विकास होता जाता है। मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों में भी सामुदायिकता की प्रेरणा पाई जाती है।

   (ii) **आत्म–गौरव एवं आत्म–हीनता के प्रेरक** (Motives of Self-assertion & Self Submisson)–समाज में रहकर व्यक्ति के अन्दर मन की उच्च भावना का विकास होता है। वह अपने अहं को उच्च बनाये रखने का प्रयत्न करता है। वह यह भी प्रयत्न करता है कि वह अन्य लोगों से आगे निकल जाये। वह अपने मांगे में आने वाली कठिनाइयों पर विलय प्राप्त करने का प्रयास करता है। यही आत्म गौरव की प्रवृत्ति होती है। यदि व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यों के सम्मुख अपने आप को छोटा समझता है तो वह अपने आप को ही हीन समझने लगता है।

   (iii) **आत्माधिकार** (Acquisitiveness)–मानव की यह प्रवृत्ति होती है कि विभिन्न वस्तुओं को अपनाकर उन पर अपना अधिकार रखना चाहता है, साथ ही अधिकाधिक सम्पत्ति का मालिक बनकर रहना चाहता है तथा दूसरों को कम से कम देना चाहता है, जो वस्तुयें उसे आत्मसन्तोष प्रदान करती है उन्हें वह अर्जित करने का प्रयास करता है।

   (iv) **सामाजिक सुरक्षा** (Social Security)–प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि जिस समाज में वह रहता है वह समाज उसे पसन्द करे तथा अपने में सम्मिलित रखे। यदि किसी व्यक्ति को समाज या जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है तो वह निम्न दृष्टि से देखा जाता है तथा वह अपने आप को असुरक्षित समझने लगता है। इस प्रकार का भय व्यक्तियों के अनेक कार्यों पर नियन्त्रण रखता है। इससे उसकी सामाजिक सुरक्षा की प्रेरणा बनी रहती है। इसके साथ ही साथ आक्रामक भावना आदि सामाजिक प्रेरक में आते हैं।

अभिप्रेरणा के कार्य (Funtion Of Motivation)

अभिप्रेरणा शिक्षण एवं अधिगम का एक आधार एवं केन्द्र बिन्दु है। कैली महोदय ने अभिप्रेरणा को अधिगम प्रक्रिया के कुशल एवं सुचारू रूप से व्यवस्था करने में एक केन्द्रीय कारक माना है। जैसे–अभिप्रेरणा अधिगम का अवश्य अंग नहीं है। परन्तु

टिप्पणी

सहायक अंग है सभी प्रकार के अधिगमों में किसी न किसी प्रकार का अभिप्रेरक आवश्यक होता है। गेट्स (Gates) के अनुसार, ''मौलिक रूप से अनुप्रेरित सीखना जैसी कोई वस्तु नहीं है। अभिप्रेरणा अधिगम या सीखने की अनिवार्य स्थिति है।"

Basically there is no such thing as unmotivated learning Motivation is the sine quanon of learning.

गेट्स ने अधिगम की प्रक्रिया में अभिप्रेरकों के तीन कार्य बताये हैं।

1. **व्यवहार को शक्ति प्रदान करना** (To Energize Behaviour)—अभिप्रेरकों द्वारा व्यक्ति में कार्य करने की शक्ति जागृत होती है। शारीरिक दशायें—जैसे—भूख (Hunger) और प्यास (Thirst) व्यक्ति की भुजाओं एवं ग्रन्थियों की प्रतिक्रियाएं प्रारम्भ कर देती है। बाह्य उद्दीवन (External stimuli) सहयोग से समायोजित व्यवहार को जागृत करते हैं। प्रशंसा—निन्दा, दण्ड, पुरस्कार, धन, भोजन आदि अभिप्रेरक कारक हैं तथा इनके द्वारा बच्चों को अधिगम एवं लक्ष्य प्राप्ति के लिये अभिप्रेरित किया जा सकता है?
2. **प्रवृत्तियों का निर्धारण** (To Determine Tendencies)—रुचि एवं प्रेरक व्यक्ति की प्रवृत्तियों का निर्धारित करते हैं। प्रेरक ही किसी व्यक्ति की किसी परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करने एवं अन्य के प्रति उदासीन रहने की परिस्थिति में रखते हैं। प्रेरक इस बात को निश्चित करते हैं कि किसी विशेष परिस्थिति में वह किस प्रकार की प्रतिक्रिया करेगा। मानव रुचि (Interest) के आधार पर क्रिया जाता है। अपनी रुचि की क्रिया की सन्तुष्टि के लिए बाह्य रूप से कार्य करता है तथा प्रेरक एक शान्त कार्यकर्त्ता (Silent agent) के रूप से कार्य करता है। जो उस कार्य से सम्बन्धित व्यवहार का चुनाव करता है तथा उसे निदेशित करता है। आर्थिक रुचि वाला व्यक्ति अखबार की आर्थिक बातों वाले पृष्ठ की बातें याद रखता है तथा उसे देखता है एवं पढ़ता है। खेलों में रुचि रखने वाला व्यक्ति अखबार में खेल वाले कॉलम का ही विशेष रूप से अध्ययन करता है। मानव तथा अन्य जीव चुनी हुई क्रियाओं का ही करते हैं जैसे जब उन्हें भूख लगती है तो खाना प्राप्त करने की क्रिया करते हैं तथा प्यास लगने पर पानी की खोज करते हैं जब तक उनके लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती है तब तक उस क्रिया को करते हैं।
3. **व्यवहार को निर्देशित करना** (To Direct Behaviour)—अभिप्रेरकों महत्वपूर्ण कार्य प्राणी के व्यवहार को निर्देशित करता है। प्राणी के लिए सिर्फ यह आवश्यक नहीं है कि वह क्रियाशील हो जाये। भूख लगने पर एक निश्चित व्यवहार जागृत हो जावे एवं व्यवहार को शक्ति मिल जाये, यह पर्याप्त नहीं है वरन् उसकी क्रिया किसी निश्चित लक्ष्य की ओर निर्देशित हो जाये जिससे आपके चालक (Drive) की संतुष्टि हो जाये। गेट्स के अनुसार अधिगम सतत् चुना हुआ और सोददेश्य प्रयत्न के बिना सफल अथवा सक्षम नहीं कहा जा सकता है। अतः अभिप्रेरणा के अतिरिक्त शिक्षण में कोई अन्य समस्या नहीं है।

"Learning can not be successful or efficient without persistent, celective and purposeful effort. There is no more important problem in teaching therefore, than that of motivation." अभिप्रेरकों के अन्य महत्वपूर्ण कार्यों में छात्रों को सीखने की रुचि

टिप्पणी

को जागृत करना अधिगम (Learning) है। शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य है कि वह छात्रों की रुचि उस समय तक बनाये रखे जब तक वह किसी निश्चित विचार या पाठ्य–सामग्री पर पूर्ण अधिकार न कर ले। क्रो एंड क्रो (Crow & Crow) लिखा है : "सीखने वाला इतना उद्देश्य प्रेरित होना चाहिए कि उसकी रुचि एक निश्चित लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट की जाये तो उसे उन अनुभवों के पार ले जाये जोकि अभिप्रेरक को आगे की ओर ले जाने में प्रयोग किये जाते हैं।"

"The Learner must be so motivated that his interest will be direct towards a definite goal which will take him far beyond the experiences which are used as motivation towards further learning."

उसने आगे बताया कि अभिप्रेरकों छात्रों की सीखने में रुचि जागृत करने का अच्छा महत्वपूर्ण साधन है। लेकिन रुचि जागृत करने में अत्याधिक समय व शक्ति लगाने से रुचि हट जाती है, विचारों पर आधिपत्य नहीं रहता है।

अभिप्रेरणा का प्रयोग छात्रों को ध्यान (Attention) में रखकर किया जाता है। छात्रों का ध्यान कुछ वस्तुओं, लोगों, स्वयं के विचारों तथा संवेगों के ओर निर्देशित किया जा सकता है। ध्यान देने का अर्थ है छात्रों को मानसिक क्रियाओं में व्यस्त रखना। शिक्षक छात्रों को अभिप्रेरित करके उनका ध्यान पाठ्यवस्तु पर केन्द्रित करने में सहायता कर सकता है। इसके अलावा अभिप्रेरकों द्वारा छात्रों का मानसिक विकास, सामाजिक गुणों का विकास, चारित्रिक विकास आदि के लिए छात्रों को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1. **अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त** (Instinct Theory)–इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल (MCDougall) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि प्रत्येक प्राणी में कुठ जन्मजात शक्तियां या मूल–प्रवृत्तियां होती हैं। इन्हीं मूल प्रवृत्तियों को उसने प्रेरक (Motive) है। प्राणी का व्यवहार इन्हीं मूल प्रवृत्तियों द्वारा प्रवाहित एक संचालित होता है। मैक्डूगल ने मूल प्रवृत्ति के तीन प्रधान तत्व–सामान्य उत्तेजन क्रिया एवं लक्ष्य निर्देशन बताया।

   मूल प्रवृत्ति के इस सिद्धान्त की काफी आलोचना की गई है। मूल प्रवृत्ति को यदि अभिप्रेरणा का आधार मान लिया जाए तो सिद्धान्त भी अधूरा है।

2. **उद्दीपन अनुक्रिया का सिद्धान्त** (Stimulus-Response Theory)–व्यवहारवादियों द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव का समस्त व्यवहार उद्दीपन (Stimulus) के परिणामस्वरूप शारीरिक अनुक्रिया (Response) है। मानव कुछ उत्तेजना पाने पर ही स्वाभाविक प्रतिक्रिया करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार चेतन–अचेतन में किसी भी प्रकार की गुंजाइश नहीं है। व्यवहार ही स्वयं में एक विशिष्ट अनुक्रिया है तथा मानसिकता के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं है। यह सिद्धान्त भी अधूरा है तथा उद्दीपनों से होने वाली क्रियाओं की व्याख्या करता है।

टिप्पणी

3. **व्यवहार का सिद्धान्त (**Behaviour Theory) : इस सिद्धान्त के प्रतिपादक विटिन्ग तथा चायल्ड (Whiting and child) हैं। उनके अनुसार मानव जो कुछ मूल अनुप्रेरणायें शैशवकाल के प्रारम्भ में अर्जित कर लेता है, बाद के जीवन में उसके व्यवहार संस्थान (Behaviour System) में उनकी वृद्धि हो जाती है। इस व्यवहार संस्थान में अनेक प्रकार के व्यवहार एक ही मूल अनुप्रेरणा से प्रभावित होते रहते हैं।

   उन्होंने बताया कि प्रत्येक संस्थान आदतों या रिवाजों की एक शृंखला से निर्मित होता है जो एक ही प्रकार के प्रारम्भिक जीवन में अर्जित अनुप्रेरणा से अनुप्रेरित होता है। पांच व्यवहार संस्थानों का उन्होंने चयन किया। मौखिक (Oral), कामुक (Sexual) आक्रामकता (Dependency) पहले तीन संस्थान (Aggressive) जैविक अभिप्रेरकों से विकसित होते हैं। (भूख, प्यास, मलमूत्र, त्याग एवं काम की इच्छा) अन्त के दो अभिप्रेरक सार्वभौमिक रूप से प्रारम्भ बाल्यकाल में अर्जित कर लिये जाते हैं। इस सिद्धान्त के आलोचकों के अनुसार व्यवहार संस्थान में अनेक प्रकार के व्यवहार एक ही प्रेरणा से प्रभावित होते हैं समक्ष में नहीं आता है।

4. **मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त** (Psychoonalytic Theory)—इस सिद्धान्त के प्रतिपादक फ्रॉयड (Freud) तथा उसके साथी युग (Young) तथा एडलर (Adder) हैं। उनका कहना हे कि मानव बहुत–सी अप्रिय बातों, इच्छाओं तथा आवश्यकताओं, भावनाओं को जो सन्तुष्ट नहीं होती हैं, अपने चेतन मन से निकाल देता है तथा ये सब दमित इच्छायें उसके अचेतन मन (Unconscious mind) में एकत्रित होती हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार अचेतन मन में एकत्रित हुई दमित इच्छायें चेतन मन में आये बिना मानव व्यवहार को अभिप्रेरित करती है। कुछ मूल प्रवृत्तियां भी इसमें अपना योगदान करती हैं। उसने बताया कि बाल्यावस्था में ही अचेतन भावों की नींव पड़ जाती है। ये अचेतन भाव चेतन मन में आने का प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप मानव के व्यवहार में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं।

   फ्रॉयड महोदय का यह सिद्धान्त यौन इच्छा (Sex desire) तथा अचेतन संवेगों को यौन सम्बन्धी माना है इसलिए को शंका की दृष्टि से देखा जाता है। साथ ही दमित इच्छायें कभी–कभी ऐसे कार्यों को करने के लिए बाह्य करती है जो सुखदायक नहीं होते हैं।

5. **मैस्लो का आत्मसिद्धि सिद्धान्त** (Self Actualization Theory of Maslow) – मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त (1954) को आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त की संज्ञा होती है। मैस्लो ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या आत्मसिद्धि के आधार पर की है। आत्मसिद्धि से तात्पर्य व्यक्ति को अपने अन्दर छिपी हुई क्षमताओं की पहचान करके उनका ठीक प्रकार से विकास करने की आवश्यकता से है। मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोलपनर के अनुसार, ''व्यक्ति की अपनी क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता को आत्मसिद्धि कहा जाता है।'' वास्तव में आत्मसिद्धि की पहचान की आवश्यकता सभी व्यक्तियों में अलग–अलग होती है। किसी व्यक्ति के लिए किसी राजनैतिक दल, समुदाय, धार्मिक संस्था अथवा किसी अन्य समूह का नेतृत्व करना हो सकती है। मैस्लो के सिद्धान्त में आत्मसिद्धि आवश्यकता

टिप्पणी

पदानुक्रम में सबसे ऊपर की सीढ़ी पर आती है। पदानुक्रम द्वारा सर्वोच्च आवश्यकता से निम्नतम आवश्यकता की ओर चलने पर यह अनुक्रम इस प्रकार है–

(i) आत्मसिद्धि की आवश्यकता (The Need for self-actualization)

(ii) सम्मान की आवश्यकता (Esteem needs) उदाहरण के लिए प्रतिष्ठा, सफलता, आत्म–सम्मान पाने की आवश्यकता आदि।

(iii) सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता (Belongingness and love needs) उदाहरण के लिए स्नेह, सम्बन्धन, पहचान प्राप्ति की आवश्यकता।

(iv) सुरक्षा की आवश्यकता (Safety needs) जैसे–सुरक्षा, स्थायित्व एवं व्यवस्था आदि की आवश्यकता।

(v) शारीरिक आवश्यकता (Physiological needs) जैसे–भूख, प्यास एवं काम की आवश्यकता आदि।

आत्मसिद्धि की आवश्यकता सम्मान की आवश्यकता

जैसे–प्रतिष्ठा, सफलता, आत्म सम्मान जाने की आवश्यकता आदि।

सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता

जैसे–स्नेह, सम्बन्ध, पहचान प्राप्ति की आवश्यकता

सुरक्षा की आवश्यकता

जैसे–सुरक्षा, स्थायित्व एवं व्यवस्था आदि की आवश्यकता

शारीरिक आवश्यकता

जैसे–भूख, प्यास एवं काम की आवश्यकता आदि।

व्यक्तित्व के स्वस्थ एवं सामान्य विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि सर्वप्रथम शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाए तत्पश्चात् क्रमशः बढ़ते हुए आत्मसिद्धि की आवश्यकता की पूर्ति की जाए अर्थात् निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति से उच्चतम आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर बढ़ना चाहिये। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार एक भूखा व्यक्ति जिसे तत्काल भोजन की आवश्यकता होती है। उस समय उसके लिए भोजन के अधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक कुछ भी नहीं होता है। जैसे–अगले दिन के लिए भोजन (सुरक्षा आवश्यकता) मिलेगा भी नहीं अथवा नहीं मिलेगा आदि। उस समय उस पर अपना पेट भरने की ही चिन्ता रहती है। लेकिन यदि उस व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकता (भोजन) की उस समय पूर्ति हो जाती है तो वह अपनी सुरक्षा के विषय में सोचना शुरू कर देता है। जैसे कि दूसरे दिन उसे भोजन मिलेगा या नहीं आदि। इस प्रकार वह क्रमशः अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अभिप्रेरणा की प्रत्येक सीढ़ी पर यही क्रम चलता है। यदि व्यक्ति आवश्यकता अनुक्रम पर क्रमश नहीं बढ़ता है तो उसके विभिन्न मनोरोगों से ग्रस्त होने के अवसर बढ़ जाते हैं? जैसे यदि व्यक्ति अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति किये बिना ही सुरक्षा आवश्यकताओं की अत्याधिक पूर्ति करता है तो उसमें Parnaia के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

इसी सुरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति के स्थान पर स्नेह पर एवं सम्बद्धता की आवश्यकताओं की पूर्ति को प्राथमिकता देने पर Counter Phobia की आवश्यकताओं की पूर्ति के स्थान पर सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति होने पर तथा समाज की आवश्यकताओं के स्थान पर आत्मसिद्धि की आवश्यकता की पूर्ति होने पर तथा समाज की आवश्यकताओं के स्थान पर आत्मसिद्धि की आवश्यकता की पूर्ति पर (Schizophrenia) मनोविदलता, के लक्षणों की उत्पत्ति की सम्भावना बढ़ जाती है। अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों के मध्य सिद्धान्त अत्याधिक प्रचलित एवं मान्य सिद्धान्त है। किन्तु फिर भी इस सिद्धान्त को कुछ कटु आलोचना का सामना करना पड़ा है।

मैस्लो के अनुसार आवश्यकता अनुक्रम के प्रत्येक स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए ही आगे बढ़ना श्रेष्ठ होता है, किन्तु विभिन्न आलोचकों का मानना है कि यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति में प्रत्येक स्तर की आवश्यकता निश्चित रूप से उत्पन्न ही हो, अतः सम्भव है कि व्यक्ति पहली के बाद तीसरी आवश्यकता की पूर्ति करे साथ ही यह भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति दूसरे–तीसरे स्तर की आवश्यकताओं के बाद अन्य आवश्यकताएं ही उत्पन्न न हो।

कुछ मनोविज्ञानिकों का मत है कि मैस्लो ने अपने सिद्धान्त में आवश्यकताओं के दैहिक एवं मनोविज्ञान आधारों का वर्णन नहीं किया है जिसके कारण इस सिद्धान्त को वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।

6. **एटकिन्सन का उपलब्धि अभिप्रेरणा सिद्धान्त** (Atkinson's Theory of Achievement Motivation) : एटकिन्सन एवं फीदर (Atkinson & Feather) ने 1966 में उपलब्धि अभिप्रेरणा सिद्धान्त दिया। एटकिन्सन के अनुसार, ''उपलब्धि अभिप्रेरणा व्यवहार को दिशा, तीव्रता एवं निरन्तर प्रदान करती है।'' यह प्रवृत्ति उस समय अधिक पायी जाती है। जहां सफलता प्राप्ति की सम्भावना होती है। उपलब्धि अभिप्रेरणा 0.5 का मापन करने के लिए मरे के टी.ए.टी. (T.A.T.) का उपयोग किया जाता है। उपलब्धि अभिप्रेरणा दो कारकों पर निर्भर करती है–

1. सफलता प्राप्त करने की प्रवृत्ति (Tendency of achieve success)
2. असफलता से दूर रहने की प्रवृत्ति (Tendency to avoide failure)–इन दोनों प्रवृत्तियों के भी अपने–अपने अवयव होते हैं जो आपस में सह–सम्बन्धित रहते हैं। जो इस प्रकार हैं–

(i) सूत्र– Ts = Ms×Ps×Is

Ts= Tendency of achieve success
(सफलता प्राप्त करने की प्रवृत्ति)

Ms= Motive related to achieve success
(सफलता प्राप्ति से सम्बन्धित अभिप्रेरक)

Ps= Probability of success
(सफलता प्राप्ति की प्रसम्भाव्यता)

टिप्पणी

Is= Incetive value releated to achieve success.
(सफलता प्राप्ति से सम्बन्धित प्रलोभन मूल्य)

(ii) सूत्र Ty = MAF × PFX IF

Ty= Tendency to avoid failure
(विफलता से परिहार की प्रवृत्ति)

MAF= Motive to avoid failure
(विफलता से परिहार की प्रेरणा)

Pf= Probability of failure (विफलता की सम्भावना)

If= Incentive value of failure (विफलता का प्रलोभन मूल्य)

विभिन्न प्रयोगों के परिणामों से पता चला कि व्यक्ति सफलता प्राप्त करना चाहता है एवं विफलता से बचना चाहता है। यदि Ts+Tg तो का मान धनात्मक होगा तो व्यक्ति का निष्पादन उतना ही अच्छा होगा। जिन व्यक्तियों में अधिक होता है वह Ts अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए अधिक समय तक क्रियाशील रहते हैं। साथ ही जिन व्यक्तियों का Tf अधिक प्रबल होता है वह या तो बहुत अधिक अथवा बहुत कम स्तर का निष्पादन रखते हैं। सिन्हा ने अपने अध्ययनों (1968) के आधार पर बताया कि उच्च तथा निम्न चिन्ता स्तर का उपलब्धि अभिप्रेरणा पर बहुत अच्छा असर नहीं होता अपितु उपलब्धि अभिप्रेरणा पर माध्यम स्तर की चिन्ता का अच्छा प्रभाव पाया जाता है। एटकिन्सन के अनुसार उच्च चिन्ता वाले प्रयोज्य जटिल कार्यों वाले प्रयोज्यों की तुलना में कम सफल होते हैं।

3.2.1 आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरणा

अभिप्रेरण को मूलतः दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैः आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरण। इनका क्रमिक अध्ययन निम्नानुसार है–

1. आंतरिक अभिप्रेरण

आंतरिक अभिप्रेरण का संदर्भ उस अभिप्रेरण से है जो काम में ही रूचि और आनंद द्वारा संचालित होता है और बाहरी दबावों या पुरस्कार की इच्छा पर निर्भर करने की अपेक्षा व्यक्ति के भीतर ही होता है। आंतरिक अभिप्रेरण का अध्ययन प्रारंभिक 1970 से किया गया है। आंतरिक अभिप्रेरण के सिद्धांत को पहले पशु व्यवहार के भीतर के प्रयोगात्मक अध्ययनों में स्वीकार किया गया। इन अध्ययनों में यह स्पष्ट था कि जीवधारी पुरस्कार की अनुपस्थिति में चंचल और उत्सुकता संचालित व्यहार में संलग्न हों। आंतरिक अभिप्रेरण एक प्राकृतिक अभिप्रेरणात्मक मनोवृत्ति है और ज्ञान संबधी, सामाजिक और शारीरिक विकास का महत्वपूर्ण तत्व है। आंतरिक रूप से उत्प्रेरित विद्यार्थी काम में स्वेच्छापूर्वक और अपनी निपुणताओं को बढ़ाने के लिए लगेंगे जो कि उनकी क्षमताओं को बढ़ाएगा। छात्र आंतरिक रूप से उत्प्रेरित होंगे यदि वेः

- अपने शिक्षात्मक परिणामों का श्रेय अपने खुद के नियंत्रण में होने वाले कारकों को दे जिन्हें नियंत्रण की स्वायत्तता भी कहा जाता हैं।

टिप्पणी

- मानें कि अपने इच्छित लक्ष्य तक पहुंचने में प्रभाव अभिकर्ता होने की निपुणताएं उनमें हैं जिन्हें आत्मप्रभावोत्पादक आस्थाएं कहा जाता है।
- न सिर्फ अच्छे अंक प्राप्त करने में बल्कि एक विषय में महारत हासिल करने में रूचि रखते हैं।

2. बाह्य अभिप्रेरण

बाह्य अभिप्रेरण किसी परिणाम प्राप्त करने हेतु किसी गतिविधि के कार्य निष्पादन से संदर्भित है चाहे वह गतिविधि आंतरिक रूप से ही उत्प्रेरित क्यों न हो। बाहरी अभिप्रेरण व्यक्ति के बाहर से आता है। पुरस्कार (उदाहरणार्थ पैसा या अंक) इच्छित व्यवहार के प्रदर्शन के लिए और दुर्व्यवहार के बाद दंड की धमकी सामान्य बाहरी अभिप्रेरण हैं। प्रतिस्पर्धा एक बाहरी उत्प्रेरक है क्योंकि वह कार्य निष्पादक को जीतने और दूसरों को हराने के लिए प्रोत्साहित करती हैं, सिर्फ गतिविधि के आंतरिक पुरस्कारों का आनंद लेने के लिए नहीं। हौसला बढ़ाती हुई और ट्रॉफी जीतने की इच्छा भी बाहरी प्रोत्साहन हैं।

आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरण की तुलना

सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोध ने दर्शाया है कि बाहरी पुरस्कार अति प्रमाणिकता और आंतरिक अभिप्रेरण में अनुवर्ती घटाव तक ले जा सकते हैं। इस प्रभाव का प्रदर्शन कर रहे एक अध्ययन में बच्चे जिन्हें चित्र खींचने पर एक रिबन और एक सुनहरे सितार का पुरस्कार दिया गया, उन्होंने चित्र बनाने की सामग्री के साथ उन बच्चों की तुलना में कम समय गुजारा जिनके पुरस्कार की शर्त अप्रत्याशित थी। हालांकि दूसरे अध्ययन ने दर्शाया कि फिसड्डी बच्चे जिन्हें पुरस्कार में पुस्तक दी गयी, उन्होंने भविष्य में पाठन व्यवहार अधिक दिखाया जिससे जाहिर हुआ कि कुछ पुरस्कार आंतरिक अभिप्रेरण को कम नहीं आंकते। जहां बाहरी पुरस्कारों का प्रावधान किसी गतिविधि की वांछनीयता को कम कर सकता है, किसी गतिविधि के निष्पादन के खिलाफ सजा की धमकी जैसे बाहरी अवरोधों के उपयोग से उस गतिविधि में आंतरिक रुचि को बढ़ता हुआ पाया गया है। एक अध्ययन में जब बच्चों को एक आकर्षक खिलौने के साथ खेलने के खिलाफ हल्की धमकियां दी गईं, पाया गया कि धमकी ने वस्तुतः खिलौने में बच्चों की रुचि को बढ़ाने का काम किया जो कि धमकी की अनुपस्थिति में बच्चों के लिए पहले अवांछनीय था।

उन बच्चों के लिए जिन्हें कोई बाहरी पुरस्कार नहीं मिला है, आत्म संकल्प सिद्धांत प्रस्तावित करता है कि यदि काम उनके मूल्यों और आस्थाओं के साथ सही बैठता है तो व्यक्ति के द्वारा बाहरी अभिप्रेरण का आंतरिकीकरण किया जा सकता है और इससे उनकी मूल मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद मिलती है।

3.2.2 शिक्षार्थी की आवश्यकता और अभिप्रेरणा बढ़ाना

सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरकों का बड़ा महत्व है। साथ ही शिक्षक का कक्षा शिक्षण में अभिप्रेरणा का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। वास्तव में शिक्षा की समस्या छात्र को

टिप्पणी

अभिप्रेरणा प्रदान करने की ही समस्या है। छात्र को इस प्रकार अभिप्रेरित किया जाये कि वह स्वयं सीखने के लिये अभिप्रेरित हो जाये। इसके लिए शिक्षक को छात्रों का परिपक्वता, उनके लक्ष्य एवं आवश्यकतायें, पाठ्यवस्तु अधिगम का स्वरूप एवं बाल मनोविज्ञान आदि बातों का अनुभव एवं ज्ञान होता है। छात्रों को सीखने के लिये अभिप्रेरणा प्रदान करने की कुछ महत्वपूर्ण प्रविधियों का वर्णन नीचे किया जा रहा है–

1. **सीखने की इच्छा** (Intention to learn)–सीखने के लिये एक सरल एवं महत्वपूर्ण प्रेरणा बच्चे को यह दी जा सकती है कि उससे यह कहा जाये कि उसे सीखना है। जब बच्चे को यह अभ्यास हो जायेगा कि उससे सीखने की आशा की जाती है तो वह निश्चित रूप से सीखने का प्रयत्न करेगा। परन्तु कभी–कभी व्यक्ति सीखने की इच्छा न होने पर भी सीख लेता है; जैसे–कोई टेलीफोन नम्बर या बस नम्बर बिना इच्छा के ही सीख लेता है तथा कभी–कभी अभिवृत्तियां (Attitudes) भी बिना इच्छा के सीख लेता है। जैसे–किसी धर्म या जाति के प्रति घृणा करना।

2. **परिपक्वता** (Moturation)–सीखने तथा परिपक्वता का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि किसी बालक ने परिपक्वता प्राप्त नहीं की है तो उसे सिखाना व्यर्थ ही होगा क्योंकि वह तथ्यों को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकेगा। इसलिए सिखाने की प्रक्रिया में छात्र की शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक अवस्था ऐसा होनी चाहिए कि वह उसे ग्रहण कर सकें। यदि वह परिपक्व नहीं है तो उस तथ्यों को ग्रहण करने में या तो असमर्थ होगा या उन्हें गलत एंग से ग्रहण करने मतें या तो असमर्थ होगा या उन्हें गलत ढंग से ग्रहण करेगा। उसे विद्यालय के कार्यों में रुचि उत्पन्न हो जाती है और अपने उद्देश्य की स्पष्टता उसे अभिप्रेरित करेगी।

3. **शिक्षण विधियां** (Teaching Method)–शिक्षण विधियां भी छात्रों के लिए अभिप्रेरित करती है। प्रत्येक अवस्था के बच्चों को सिखाने व पढ़ाने की विधियां अलग–अलग होती हैं। उदाहरण के लिए छोटे बच्चों को खेल प्रणाली द्वारा पढ़ना लाभदायक होता है। इस प्रणाली के द्वारा सीखने में बच्चा विद्यालय के कार्यों में रुचि लेता है तथा उसे आनन्द आता है। उसे थकान तक नहीं होती है। साथ ही विभिन्न प्रकार के चार्ट, मॉडल, चित्र एवं अन्य सहायक सामग्री द्वारा पाठ्य–वस्तु उसके लिए सरल एवं रुचिकर हो जाती है तथा वह सीखने के लिए अभिप्रेरित हो जाता है।

4. **प्रभाव का नियम** (Law of Effect)–'प्रभाव का नियम' बालकों के सीखने में अभिप्रेरणा का एक महत्वपूर्ण कार्य है। मानव की प्रत्येक क्रिया के साथ संतोष अथवा असंतोष, आनन्द अथवा दुःख की भावना छिपी रहती है। प्रेरणा उत्पत्ति के लिए सुखवाद (Hedonism), का सिद्धान्त कार्य करता है। विद्यालयों में ज्ञान प्राप्ति तथा अभ्यास बार–बार आवृत्ति द्वारा किये जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि छोटे बच्चे अपने आप विद्यालय में सीखे हुए क्रियात्मक गीतों (Action Songs), शारीरिक व्यायाम (Physical Exercises) तथा अन्य क्रियाओं की पुनरावृत्ति करते

टिप्पणी

रहते हैं। इस पुनरावृत्तिइ से उन्हें आनन्द तथा संतोष मिलता है। प्रभाव के नियम के परिणामस्वरूप उन्हें पुनरावृत्ति करने एवं अधिकाधिक सीखने की अभिप्रेरणा मिलती है।

5. **पुरस्कार एवं दण्ड** (Reward and Punishment)—पुरस्कार तथा दण्ड छात्रों को अभिप्रेरित करने की सामान्य तथा परम्परागत प्रविधि है। पुरस्कार एक प्रत्यक्ष प्रेरणा है और दण्ड प्रविधि से अपेक्षाकृत अच्छी है। पुरस्कार प्राप्त करने के लिए छात्र प्रशंसनीय व अच्छे–अच्छे कार्य करता है। पुरस्कार प्राप्त करने के लिये छात्र आनन्द प्राप्त करता है तथा उसका मनोबल बढ़ता है। पुरस्कार दो प्रकार के हो सकते हैं–भौतिक पुरस्कार–पुस्तकें, भेंट, लेखन–सामग्री एवं अन्य मूल्य वाली वस्तुयें आती हैं। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक किसी पद के लिए चुनाव, प्रशंसा, पदोन्नति, सम्मानसूचक उपाधि आदि अथवा प्रमाण पत्र आदि। दण्ड एक निषेधात्मक प्रेरणा है। छात्रों को किसी अवांछनीय कार्य को करने से रोकने के लिए दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार वे उस कार्य को दुबारा नहीं करते। शारीरिक दण्ड शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसार वर्जित है। शिक्षक को पुरस्कार तथा दण्ड का प्रयोग सोच–विचार कर करना चाहिए अन्यथा इनसे लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना रहती है।

6. **प्रशंसा तथा निन्दा** (Praise and Blame)—प्रशंसा व निन्दा छात्रों को अभिप्रेरित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षक को छात्रों की सफलता में प्रशंसा तथा असफलता में निन्दा का प्रयोग करना चाहिये। इन प्रविधियों का प्रयोग यदि ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिनका छात्र आदर करता है तो उसका परिणाम अच्छा निकलता है। शिक्षक को प्रशंसा व निन्दा का उपयुक्त प्रयोग करना चाहिए। अधिक प्रशंसा औसत तथा हीन (Average and Inferior) करती है जबकि निन्दा से इन बालकों का विकास कुंठित हो जाता है। कुशाग्र बुद्धि वाले बालकों पर प्रशंसा का कम प्रभाव पड़ता है। बालिकाओं के ऊपर प्रशंसा का अधिक प्रभाव होता है। चेज (Chase) के 1932 के अध्ययन के आधार पर ''निन्दा का प्रशंसा से अधिक प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से छोटे बालकों पर।''

7. **सफलता एवं असफलता** (Success and failure)—बनार्ड के अनुसार, ''सफलता सामान्य छात्रों में आत्मविश्वास उत्पन्न करती है जिसके आधार पर वे अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार अपने जीवन लक्ष्यों (Life goals) को आसानी से निर्धारित कर लेते हैं। लक्ष्य होने से प्रत्येक कार्य में प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है। प्रेरणा का एक विशेष गुण यह होता है कि वह सदैव अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर इंगित करती है। वास्तव में सफलता सीखने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करती है।'' कभी–कभी असफलता भी प्रेरणा का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाती है। असफलता मेधावी छात्रों का विशेष प्रेरणा स्रोत बनती है। वे असफलता का एक चुनौती मानकर उस पर विजय प्राप्त करने में सफल होते हैं। इसलिए कहा भी गया है कि ''असफलता सफलता की कुन्जी है।'' "Failure to the key of success."

टिप्पणी

8. **प्रगति का ज्ञान** (Knowledge of Progress)–किसी विषय में छात्रों को किस सीमा तक प्रेरित किया जा सकता है इसके लिए यह आवश्यक है कि छात्रों को उनके द्वारा की गई प्रगति का ज्ञान करा दिया जाए। इससे छात्र क्रियाशील बनते हैं तथा उन्हें पुनर्बलन (Reinforcement) तथा पृष्ठ पोषण (Feed back) मिलता है। छात्रों को अपने लक्ष्य निर्धारण में सहायता मिलती है। और वे लक्ष्य प्राप्ति के लिए क्रियाशील हो जाते हैं। इसी के अनुरूप आजकल विद्यालयों में छात्रों के प्रगति पत्र (Progress Charts) है। इनसे छात्र व अभिभावक दोनों सजग रहते हैं।

9. **प्रतियोगिता एवं सहयोग** (Cometition and Co-operation)–विद्यालय के छात्रों में प्रतियोगिता एवं प्रतिद्वन्द्विता की भावना पाई जाती है। इसी के फलस्वरूप कक्षा में एक–दूसरे से अधिक अंक प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। शिक्षक छात्रों की प्रतियोगिता के माध्यम से अधिक अंक प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर सकता है। साथ ही शिक्षक दो या दो से अधिक वर्गों (Sections) के बीच अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने के लिए उत्साहिक कर सकता है। व्यक्तिगत प्रतियोगिता में प्रतिद्वन्दिता की भावना समूह की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है क्योंकि इसमें क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने को सर्वोत्तम प्रदर्शित करने का प्रयत्न करता है। अनुसंधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक स्तर पर सामूहिक प्रेरणा की अपेक्षा व्यक्तिगत अभिप्रेरणा बालकों के लिए अधिक प्रभावशाली पाई गई है। साथ ही दूसरे विद्यालय से प्रतियोगिता कराई जा सकती है तथा विद्यालय के वातावरण, स्वर (Tone) एवं स्तर में वृद्धि की जा सकती है।

   सहयोग के माध्यम से भी छात्रों को अभिप्रेरित किया जा सकता है। सहयोग के द्वारा छात्र मिलजुलकर अधिक से अधिक से अधिक सीख सकते हैं तथा प्रगति कर सकते हैं। शिक्षक को चाहिये कि वह छात्रों में सहयोग की भावना जाग्रत कर सकते हैं। उन्हें मिल–जुलकर कार्य करने को प्रोत्साहित करे। इस प्रकार छात्र सामाजिक एवं अपना विकास स्वस्थ आधार पर कर सकेंगे।

10. **आकांक्षा का स्तर** (Level of Aspiration)–आकांक्षा का स्तर छात्र की सामर्थ्य अवि तथा मानसिक शक्तियों से होता है। आकांक्षा का उच्च रखना अच्छा है। यह उसके लिए एक लक्ष्य का कार्य करता है तथा उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। यदि छात्र का आकांक्षा स्तर उनकी सामर्थ्य से ऊंचा है तो छात्र में प्रेरणा के स्थान पर निराशा उत्पन्न हो जाएगी। यदि उसकी आकांक्षा का स्तर उसकी सामर्थ्य से निम्न है तो उसमें हीन–भावना जाग्रत हो जाएगी। अतः छात्र की आकांक्षा का स्तर उसकी सामर्थ्य के अनुसार होना चाहिये तभी वह लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरित हो सकता है। शिक्षक को छात्र की उपलब्धि को ध्यान में रखकर उचित मार्ग–दर्शन प्रदान करना चाहिए जिससे वे अपने आकांक्षा स्तर के अनुसार अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित हो सके। इसके अतिरिक्त शिक्षक छात्रों को सिखाने के लिये अन्य बहुत–सी प्रविधियों का प्रयोग कर सकता है। जैसे–पाठ्यवस्तु को नवीनता के साथ प्रस्तुत करना, कक्षा में प्रेम

व स्नेह पूर्ण वातावरण रखना, श्रव्य–दृश्य सामग्री का प्रयोग, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में सक्रिय भाग लेना, उसकी आवश्यकता एवं रुचियों के ज्ञान द्वारा शिक्षक छात्रों को सीखने के लिए अभिप्रेरित कर सकता है। जहां तक हो सके छात्रों को चिन्ताओं एवं निराशाओं से दूर रखना चाहिए।

3.2.3 सहयोग और प्रतिस्पर्धा की भूमिका

सहयोग (Co-operation) एवं प्रतिस्पर्धा या प्रतियोगिता (Competition) सामाजिक व्यवहार के दो रूप हैं जो समाजपक्षीय व्यवहार (Pro social behaviour) कहे जाते हैं। उदाहरण के लिए आप रेलगाड़ी में सफर करने जा रहे हैं। रेलगाड़ी में चढ़ते समय काफी भीड़ का सामना करने पड़ता है। सभी यात्री जल्दी से जल्दी डिब्बे में प्रवेष्ठा कर अपनी सीट सुरक्षित करने की होड़ में हैं। यह दृश्य प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा की भावना को इंगित करता है। इस भीड़ में एक वृद्ध व्यक्ति भी है। एक नौजवान व्यक्ति इस बूढ़े व्यक्ति को डिब्बे में प्रवेश दिलाने में मदद करता है। वृद्ध व्यक्ति की मदद करना सहयोग की भावना से उत्प्रेरित व्यवहार कहा जायेगा। इस प्रकार सहयोग और प्रतिस्पर्धा दोनों में साझे का लक्ष्य विद्यमान रहता है, लेकिन साझे के लक्ष्य के प्रति व्यक्ति की प्रतिबद्धता में भिन्नता पायी जाती है। कुछ लोग उक्त लक्ष्य के प्रति प्रतियोगिता का भाव यानी व्यक्तिगत लाभ या हित से प्रेरित होकर कार्य करते हैं तो कुछ लोग व्यक्तिगत लाभ की जगह परमार्थ की भावना से प्रेरित होकर सहयोगी व्यवहार करते हैं, जिसमें व्यक्तिगत लाभ कुछ नहीं होता। किसी समूह का साझा लक्ष्य सहयोगात्मक है या प्रतिस्पर्धात्मक इसकी स्पष्ट व्याख्या समूह के लिए काफी महत्त्व रखता है। समाज मनोविज्ञान की भाज़ा में जब किसी लक्ष्य के प्रति व्यक्ति का व्यवहार पूरे समूह के लिए लाभकारी या हितकारी होता है तो उसे सहयोगात्मक व्यवहार कहते हैं। ठीक इसके विपरीत जो व्यवहार व्यक्ति विशेष के लिए हितकर या लाभप्रद हो तथा दूसरे उस लाभ से वंचित हो तो ऐसे व्यवहार को प्रतिस्पर्धात्मक व्यवहार कहते हैं।

अधिकांश सामाजिक स्थितियों में व्यवहार या तो 'सहयोग' या प्रतिस्पर्धा के द्वारा परिभाषित होते हैं। प्राय लोग एक दूसरे से अनेक विषयों में अन्त:क्रिया करते हैं जब समूह किसी साझे लक्ष्य को पाने के लिए एक साथ काम करते हैं तो उसे सहयोग कहा जाता है। सहयोगी स्थिति में प्राप्त होने वाले फल सामूहिक पुरस्कार के रूप में होते हैं न कि व्यक्तिगत रूप में । जबकि समूह का प्रत्येक सदस्य स्वयं के लाभ को बढ़ाने का प्रयत्न करता है तथा अपने स्वार्थ के लिए कार्य करता है तो उसकी परिणति प्रतिस्पर्धी दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। प्रतिस्पर्धी लक्ष्यों का निर्धारण इस प्रकार से किया जाता है कि कोई व्यक्ति अपना लक्ष्य केवल तब प्राप्त कर सकता है जब दूसरे लोग अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर पायें। उदाहरण के लिए – प्रतियोगिता उस स्तर तक निष्पादन नहीं कर पाएं हों कि उन्हें प्रथम स्थान पर रखा जा सके। दूसरी ओर, सहयोगी लक्ष्य वह कहलाता है जिसमें कोई व्यक्ति लक्ष्य को प्राप्त कर ले। आइए, इसे खेलकूद से संबंधित एक उदाहरण से समझाने का प्रयत्न करें– बारह लोगों के मध्य होने वाली एक साइकिल की दौड़ में कोई एक ही प्रतियोगी विजेता हो सकता है। यह सफलता व्यक्तिगत निष्पादन पर निर्भर करती है जबकि एक रिले रेस (RelayRace) विजयी टीम के सभी सदस्यों के सामूहिक निष्पादन

टिप्पणी

पर निर्भर करती है। ड्यूश ने समूह में सहयोग तथा प्रतिस्पर्धा का अध्ययन किया। कॉलेज के छात्रों को छः-छः व्यक्तियों के समूह में विभक्त किया गया तथा उनसे पहेलियों तथा समस्याओं को हल कराने के लिए कहा गया। समूह के एक सेट जिसे 'सहयोगी समूह' कहा गया, को बताया गया कि निष्पादन हेतु सामूहिक रूप से पुरस्कार दिया जायेगा। समूह के दूसरे सेट को 'प्रतिस्पर्धी समूह' कहा गया और उन्हें बताया गया कि निष्पादन में व्यक्तिगत प्रकर्ष या श्रेष्ठता के लिए पुरस्कृत किया जायेगा। प्राप्त परिणाम से यह दर्शाया गया है कि सहयोगी समूह में अधिक तालमेल था, एक दूसरे के मत के प्रति अधिक स्वीकृति थी तथा सदस्यों के संबंध प्रतिस्पर्धी समूह की अपेक्षा अधिक मित्रवत् थे। सहयोगी समूह के सदस्यों का मुख्य उद्देश्य यह देखने में था कि समूह श्रेष्ठ निष्पादन करे।

एक समूह में व्यक्तियों के मध्य प्रतिस्पर्धा का परिणाम द्वन्द्व तथा असामंजस्य के रूप में हो सकता है जबकि समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा समूह के अन्दर संसक्ति एवं एकात्मकता को बढ़ा सकने के रूप में हो सकती है।

कैदी की दुविधा संबंधी खेल का प्रयोग सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा के अध्ययन हेतु किया जाता है। यह खेल दो व्यक्तियों के बीच में खेला जाता है जिसमें दोनों पक्षों को सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा का सम्मान करना पड़ता है और अपने वरण के आधार पर इस खेल में दोनों ही जीत या हार सकते हैं ये खेल एक उपाख्यान पर आधारित है। दो संदिग्ध व्यक्तियों में जासूसों द्वारा अलग-अलग प्रश्न पूछे गये। जासूसों के पास उन संदिग्ध व्यक्तियों को एक छोटे से अपराध के लिए दोषी ठहराने के पर्याप्त साक्ष्य थे। दोनों ही कैदियों को अपराध स्वीकृत करने के लिए अवसर दिया गया। यदि एक व्यक्ति अपराध को मान लेता है और दूसरा व्यक्ति ऐसा नहीं करता है तब जो व्यक्ति अपराध मान लेता है उसे कोई दण्ड नहीं मिलेगा। और उसका अपराध-स्वीकरण दूसरे कैदी को एक बड़े अपराध हेतु दोषी ठहराने के लिए प्रयोग किया जायेगा। यदि दोनों ही व्यक्ति अपराध को स्वीकार कर लेते हैं तब इस स्थिति में दोनों को साधारण दण्ड दिया जायेगा। अगर दोनों अपराधों को नहीं मानते हैं तब भी प्रत्येक को छोटा सा दण्ड दिया जाता है। इस खेल का उपयोग सैकड़ों प्रयोगों में यह दर्शाने के लिए किया गया है कि जहां दो पक्ष संलग्न होते हैं वहां सहयोग एवं अभिप्रेरणा के मध्य एक द्वन्द्व होता है।

शेरिफ का ग्रीष्म शिविर प्रयोग प्रचलित है जिसमें समूह निर्माण से अन्तर समूह प्रतिस्पर्धा एवं अन्तर समूह सहयोग तक की चर्चा की गई है-

शेरिफ ने 10-11 वर्ष के ऐसे लड़कों पर प्रयोगों की एकश्रृंखला ली जो एक दूसरे को जानते तक नहीं थे। लड़के ग्रीष्म शिविर में भाग ले रहे थे। इस शिविर में कुछ अध्ययनकर्त्ता थे जिन्होंने लड़कों के व्यवहार का परीक्षण किया। लेकिन लड़के इससे अंजान थे। प्रयोग चार चरण में थे - मित्रता निर्माण, समूह निर्माण, अन्तर समूह प्रतिस्पर्धा तथा अन्तर समूह सहयोग।

1. **मित्रता निर्माण (Friendship Formation):**- लड़कों ने शिविर में पहुंचकर अपना आरम्भिक समय एक दूसरे के साथ बिताया। वे एक दूसरे से अच्छी तरह मिले तथा खेल और गतिविधियों के लिए उन्होंने मित्रो को चुना।
2. **समूह निर्माण (Group Formation):**- उसके पश्चात् प्रयोगकर्त्ताओं ने लड़कों को दो समूहों में वर्गीकृत कर दिया। दोनों समूहों के लड़के अलग-अलग रहते थे। संसक्तता वृद्धि के लिए समूह के सदस्यों को सहकारी परियोजना में लगाया गया

टिप्पणी

दोनों समूहों को भिन्न-भिन्न नाम दिया गया। समय के साथ उन्होंने अपने स्वयं के मानक का विकास कर लिया ।

3. **अन्तः समूह प्रतिस्पर्धा (Inter-group Competition):**-दोनों समूहों को विभिन्न प्रतिस्पर्धात्मक स्थितियों में एक साथ लाया गया। ऐसे खेलों का आयोजन किया गया जिसमें दोनों समूहों ने एक-दूसरे के विरूद्ध प्रतिस्पर्धा करनी थी। इस प्रतिस्पर्धा के कारण दोनों समूहों के मध्य एक दूसरे के खिलाफ तनाव एवं शत्रुता पैदा हो गई; इतना ही नहीं दोनों समूह एक दूसरे के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग करने लगे। साथ ही साथ अन्तःसमूह संसक्तता एवं ईमानदारी और अधिक प्रबल हो गई।

4. **अन्तर समूह सहयोग (Different Group Co-operation):**- अन्तर समूह प्रतिस्पर्धा द्वारा शत्रुता को रोकने के लिए अध्ययनकर्त्ता ने एक ऐसी समस्या पैदा की जिसका प्रभाव दोनो समूहों के ऊपर पड़ा और दोनों समूह इसका निवारण करना चाहते थे। उच्चकोटि लक्ष्य को समूहो के सहयोग के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। दोनों समूहों की जलपूर्ति बाधित कर दी गई थी दोनों समूहों के सदस्यों ने इसको समाप्त करने के लिए एक दूसरे की सहायता की। इस अन्तर समूह सहयोग के चरण ने शत्रुता को कम कर दिया । इसकी परिणति एक उच्चकोटि के लक्ष्य, जो एक ऐसा लक्ष्य था जिसके आगे व्यक्तिगत लक्ष्य प्रधान नहीं थे, के निर्धारण में हुई।

इन शोधों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सामूहिक स्थितियों में विरोधी तथा शत्रुतापूर्ण व्यवहार पैदा किये जा सकते हैं। साथ ही साथ यह शोध यह भी दर्शाता है कि उच्चकोटि के लक्ष्य, जो दोनों ही समूहों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण एवं लाभदायक होते हैं।

सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा संबंधी व्यवहारों पर किए गये अध्ययनों से कुछ निम्नांकित बातें स्पष्ट होती हैं-

1. सहयोगात्मक लक्ष्य रहने पर सदस्यों के बीच पारस्परिक संबंध में वृद्धि होती है क्योंकि लक्ष्य की प्राप्ति में प्रत्येक सदस्यय एक दूसरे की मदद करता है।

2. समूह का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के लिए पूरक का कार्य करता है। अर्थात् प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के कार्य की प्रगति में योगदान देता है।

3. सहयोग की स्थिति में प्रत्येक सदस्य एक दूसरे को पसंद करता है क्योंकि प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के लिए मददगार सिद्ध होता है। संभवतः यही कारण है कि सहयोगात्मक लक्ष्य रहने पर अंतः पारस्परिक संबंध रुचिकर और प्रगाढ़ होता है तथा इस प्रकार के संबंधों के पनपने में सहयोग की भूमिका मुख्य होती है।

4. हालांकि इन अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि प्रतिस्पर्धा से समूह में संसक्ति आती है। अतः यदि पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के कारण समूह के संगठन में विघटन का खतरा न हो तो एक सीमा तक प्रतिस्पर्धा सहनीय होती है। लेकिन यदि प्रतिस्पर्धा की सीमा ऐसी हो जिससे समूह में अर्न्तद्वन्द्व

का वातावरण बनता है तो इससे समूह में बिखराव की स्थिति आती है जो सामाजिक विकास का कारण बनती है।

टिप्पणी

सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा के निर्धारक

(Determinants of Co-operation and Competition)

सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा को निर्धारित करने वाले महत्त्वपूर्ण घटक निम्नलिखित हैं-

1. **पारितोषिक संरचना (Reward Structure):**-मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि व्यक्ति सहयोग करेंगें अथवा प्रतिस्पर्धा करेंगें यह पारितोषिक संरचना पर निर्भर करता है। यह संरचना वह है जिसमें प्रोत्साहक में परस्पर निर्भरता पाई जाती है। पुरस्कार पाना तब ही सम्भव है जब सभी सदस्य मिलकर कर प्रयत्न करते हैं। इस संरचना के अन्तर्गत कोई व्यक्ति तभी पुरस्कार प्राप्त कर सकता है जब दूसरे पुरस्कार नहीं पाते हैं।
2. **अंतवैयक्तिक संप्रेषण (Interpersonal Communication):**- जब समूह में अच्छा अंतवैक्तिक संप्रेषण होता है तो सहयोग इसकी सम्भावित परिणति होती है। संप्रेषण अन्त: क्रिया और विचार-विमर्श को सुयोग्य बनाता है। इसके फलस्वरूप समूह के सदस्य एक दूसरे के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
3. **परस्परता (Mutuality):**- परस्परता का अभिप्राय यह है कि लोग जिस वस्तु को प्राप्त करते हैं उसे वापस करने में कृतज्ञता महसूस करते हैं। प्रारम्भि सहयोग आगे चलकर अधिक सहयोग को प्रोत्साहित करता है। प्रतिस्पर्धा भी अत्यधिक प्रतिस्पर्धा को पैदा करती है। यदि कोई व्यक्ति आपकी सहायता करता है तो आप भी उस व्यक्ति की सहायता करना चाहते है; इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति आपकी सहायता नहीं करता है जब आपकों उसकी आवश्यकता होती है तब ऐसी स्थिति में आप भी उस व्यक्ति की सहायता नहीं करना चाहोगे।

मानव जीवन से संबंधित दिन-प्रतिदिन की प्रतिक्रियाओं के विज़य में यदि बात की जाये तो निश्चित ही यह सत्य है कि उसकी जीवन शैली पर पड़ने वाला प्रभाव सामूहिक रूप से पड़ता है अर्थात् प्रत्येक मानव का जीवन समूह सरलता की प्रकृति से प्रभावित होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "किसी कार्य को प्रारंभ करने, जारी रखने और नियमित बनाने की प्रक्रिया को अभिप्रेरणा कहते हैं।" यह परिभाषा किसने दी?
   (क) गिलफोर्ड (ख) वुडवर्थ
   (ग) शेफर (घ) मैक्डूगल
2. गेट्स ने अधिगम की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा के कौन से कार्य बताए हैं?
   (क) व्यवहार को शक्ति प्रदान करना (ख) प्रवृत्तियों का निर्धारण
   (ग) व्यवहार को निर्देशित करना (घ) ये सभी

3.3 बुद्धिमता की अवधारणा

टिप्पणी

बुद्धिमत्ता की परिभाषा को लेकर लेखकों एवं मनोवैज्ञानिकों के मध्य कोई मतैक्य नहीं है। वस्तुतः, जितने इस विषय पर लिखने वाले लेखक हैं उतनी ही बुद्धिमत्ता की परिभाषाएं भी हैं।

पी. बी. बल्लार्ड (1913) ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि, ''जहां शिक्षकों ने बुद्धिमत्ता को उपजाने का प्रयास किया वहीं मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धिमत्ता को मापने का प्रयास किया, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उनमे से किसी को भी यह ज्ञात नहीं हुआ है कि बुद्धिमत्ता क्या थी।''

विभिन्न तरीके जिनमें बुद्धिमत्ता को समझा जाता है उनके कारण, यह कम स्वीकार्य हो गई है तथा मनोवैज्ञानिकों के द्वारा इसकी कहीं अधिक समीक्षा की जाती है। फिर भी परंपरागत रूप से माता–पिता एवं शिक्षकों द्वारा यह अभिस्वीकृत किया जाता है कि बुद्धिमत्ता विद्यालय एवं जीवन में सफलता को प्रभावित करने वाली एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्ती वस्तु है। सामान्य रूप से, बुद्धिमत्ता अर्थात वह तरीका जिसके द्वारा एक व्यक्ति तथ्यों एवं परिस्थितियों के साथ बरतता है। बुद्धिमत्ता उद्देश्यपूर्ण रूप से कार्य करने, तर्कसंगत ढंग से विचारने तथा परिवेश के साथ प्रभावकारी ढंग से बरतने की एक व्यक्ति की समग्र या वैश्विक क्षमता है।

प्राध्यापक आर. आर. कुमरिया के अनुसार, ''यह विभिन्न नामों एवं श्रेणियों में एक समान ही है– चाहे आप इसे व्यावहारिक ज्ञान कहें इसे सामान्य ज्ञान कहें, या फिर प्रवीणता कहें।''

बुद्धिमत्ता की परिभाषाओं का वर्गीकरण

समय–समय पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा अपने–अपने दृष्टिकोण से बुद्धिमत्ता को परिभाषित किया गया, जिसे निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

परिभाषाओं का प्रथम वर्ग एक व्यक्ति द्वारा अपने संपूर्ण परिवेश या इसकी सीमित अवस्थाओं के साथ सामंजस्य व अनुकूलन बैठाने की योग्यता पर जोर देता है। इस वर्ग के अनुसार, बुद्धिमत्ता जीवन में उभरने वाली नवीन समस्याओं एवं परिस्थितियों के साथ सामान्य रूप से मानसिक अनुकूलता स्थापित करना है।

परिभाषाओं का दूसरा वर्ग सीखने की योग्यता पर बल देता है। एक व्यक्ति जितना अधिक बुद्धिमान होगा उतनी ही अधिक सरलता व व्यापक रूप से वह कार्यकलाप एवं अनुभव के अपने क्षेत्र के बारे में सीखकर उसमें वृद्धि कर पाता है।

परिभाषाओं के तीसरे वर्ग का यह मत है कि बुद्धिमत्ता काल्पनिक सोच को लेकर चलने की योग्यता है। इसका तात्पर्य है चिह्नों, विशेषकर संख्यात्मक एवं वाचिक चिह्नों के साथ कार्य करने के लिए विचारों व क्षमता का प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने की योग्यता।

चौथा वर्ग प्रचालन परिभाषाओं से संबंधित है। इन परिभाषाओं के वर्ग, नहीं हैं, और कदाचित परस्पर अनन्य हो ही नहीं सकते। वे अनेक बिंदुओं पर परस्पर एक दूसरे को प्रतिच्छेदित एवं अतिच्छादित करते हैं।

टिप्पणी

बुद्धिमत्ता : मुख्य अभिलक्षण एवं व्यापकीकरण

बुद्धिमत्ता से संबंधित मुख्य अभिलक्षणों एवं व्यापकीकरण को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

वंशागत बुद्धिमत्ता : बुद्धिमत्ता में वृद्धि या कटौती नहीं की जा सकती। किसी व्यक्ति द्वारा धारण की जाने वाली बुद्धिमत्ता वंशागत एवं नियत होती है। मात्रा, हालांकि नियत होती है, किंतु अपने आप को जीवन की शुरुआत में प्रकट नहीं करती है। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं, एक बच्चे की वंशागत मात्रा में भी वृद्धि होती है। सामान्य मत यह है कि बुद्धिमत्ता में होने वाली वृद्धि सोलह या सत्रह वर्ष की आयु होने पर रुक जाती है और अपनी अंतिम सीमा तक पहुंच जाती है। यह सत्य है कि एक चालीस वर्ष का व्यक्ति जो वह सोलह वर्ष की आयु में एक बालक के रूप में जानता था उससे अधिक जानकारी अब रखता है। पर इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि उसके द्वारा भूतग्रस्त बुद्धिमत्ता की मात्रा में कोई वृद्धि हो गई है। यह उसके अनुभव की वजह से हो सकता है। जहां तक उसकी बुद्धिमत्ता का सवाल है, वह वही रहती है।

बुद्धिमत्ता एवं परिवेशगत कारकों का प्रभाव : निश्चित रूप से यह स्वीकार करना न्यायपूर्ण होगा कि प्रेम, स्नेह, सहानुभूति व उदारता, जब बढ़ते हुए बच्चों को विवेकपूर्वक प्रदान की जाती है, तो उससे अपेक्षाकृत अच्छे परिणाम पैदा होते हैं। कुत्सित परिवेश बुद्धिमत्ता के विकास को धीमा कर देता है।

किन्हीं बच्चों में कुछ अवांछित परिस्थितियों के कारण बुद्धिमत्ता का विकास धीमा पड़ सकता है और यहां यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि जब ये परिस्थितियां सुधर जाती हैं, तो बुद्धिमत्ता पुनः सामान्य रूप से बढ़ने लगती है।

बुद्धिमत्ता, सामंजस्य एवं आविष्कार : एक बुद्धिमान व्यक्ति के पास बदलते हुए परिवेश के साथ सरलता, कुशलता एवं गतिशीलतापूर्वक सामंजस्य बैठाने की योग्यता होती है। वह विचारों को शीघ्रतापूर्वक व स्पष्ट रूप से आत्मसात कर सकता है। वह नवीन स्थितियों का सामना बहुत सफलतापूर्वक कर सकता है। विश्व के सभी आविष्कारों का श्रेय अति उच्च बुद्धिमत्ता वाले व्यक्तियों को जाता है।

नासमझ या मूढ़ व्यक्ति नवीन स्थितियों के बारे में विचार नहीं कर पाते हैं। उनका मार्गदर्शन हमेशा अन्य लोगों द्वारा किया जाता है। उनमें मौलिकता की कमी होती है।

बुद्धिमत्ता का विभाजन : अधिकतर विद्यार्थियों, लगभग 60 प्रतिशत, का बौद्धिक स्तर 90–110 की सीमा के मध्य पाया जाता है और उन्हें 'सामान्य' या 'औसत' कहा जाता है।

बुद्धिमत्ता एवं लिंग भिन्नता : सामान्य तौर पर कहें तो, शोध–अध्ययन ये दर्शाते हैं कि आश्चर्यजनक रूप से भिन्न लिंगों के औसत अंक समान हैं।

टिप्पणी

बुद्धिमत्ता एवं जाति भिन्नता : प्रत्येक जाति एवं संस्कृति सामूहिक में कुछ प्रतिभावान बच्चे होते हैं। फ्रेन्ज बोआस का कथन है कि, ''अगर हमें मानवजाति के तृतीयांश में से सबसे बुद्धिमान, कल्पनाशील, चुस्त एवं भावनात्मक रूप से स्थिर व्यक्तियों को चुनना पड़े, तो हमे उसमें सभी जातियां मिलेंगी।''

बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार के तीन विस्तृत क्षेत्र

थर्स्टन ने सुझाव पेश किया है कि हम बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार के कम से कम इन तीन विस्तृत क्षेत्रों को स्वीकार कर सकते हैं:

(क) **अमूर्त बुद्धिमत्ता** : उन्होंने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''यह शब्दों, संख्याओं, रसायनशास्त्र या भौतिकी के सूत्र, कानूनी निर्णय, वैज्ञानिक सिद्धांत एवं इसी प्रकार के जैसे और अन्य विचारों एवं चिह्नों को समझने व उनका प्रबंधन करने की योग्यता है।'' विद्यार्थियों के विषय में, दार्शनिक अभिक्षमता कही जा सकती है।

(ख) **यांत्रिक बुद्धिमत्ता** : इसमें ''एक चाकू, बंदूक, गतिशील मशीन एवं स्वचालित कार, बोट, और इसी तरह की अन्य चीजों जैसी वस्तुओं को स्वच्छ करने, समझने या उनका प्रबंधन करने और उन्हें प्रक्रियाबद्ध करने की योग्यता।

(ग) **सामाजिक बुद्धिमत्ता** : ''यह पुरुषों व महिलाओं, लड़कों एवं लड़कियों की मानवीय संबंधों में बुद्धिमानी से बर्ताव करने की योग्यता है।''

बुद्धिमत्ता की वक्रता रेखा

अगर हम एक यादृच्छ विषय को लेकर जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के बौद्धिक विकास को कालानुक्रमिक आयु के विरुद्ध मापें, तो हमें जैसा कि चित्र में दिखाया गया है एक एस–आकार की वक्रता रेखा प्राप्त होगी।

***चित्र** : कालानुक्रमिक आयु वर्षों में बुद्धिमत्ता की वक्रता रेखा*

इस वक्रता रेखा से निम्नलिखित बिंदु स्पष्ट होते हैं–

शुरुआती बचपन के दौरान, तुलनात्मक रूप से बुद्धिमत्ता के विकास की गति अतिद्रुत है, जबकि आगे किशोरावस्था के दौरान यह दर धीमी है।

बचपन के दौरान, वक्रता रेखा लगभग रैखिक है।

बुद्धि का विकास वयस्क होने के शुरुआती वर्षों के दौरान लगभग अपने अधिकतम स्तर पर पहुंचता है।

टिप्पणी

3.3.1 विविध क्षमताएं

बहु–बुद्धि का सिद्धांत हावर्ड गार्डनर (Howard Gardner) के द्वारा प्रस्तुत किया गया। उनके अनुसार, बुद्धि कोई एक तत्व नहीं है अपितु कई विभिन्न प्रकार की बुद्धियों का अस्तित्व होता है। प्रत्येक बुद्धि एक दूसरे में स्वतंत्र रहकर कार्य करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति में किसी एक बुद्धि की मात्रा अधिक है तो यह जरूरी नहीं कि उस व्यक्ति में किसी अन्य प्रकार की बुद्धि की मात्रा अधिक होगी, कम होगी या कितनी होगी। गार्डनर ने यह भी कहा है कि किसी समस्या का समाधान खोजने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की बुद्धियां आपस में अंतःक्रिया करते हुए एक साथ कार्य करती हैं। गार्डनर ने अपने–अपने क्षेत्रों में असाधारण योग्यताओं का प्रदर्शन करने वाले अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्तियों का अध्ययन किया और इसके आधार पर आठ प्रकार की बुद्धियों का वर्णन किया, जो निम्नलिखित हैं–

1. **भाषागत (linguistic) (भाषा के उत्पादन और उपयोग करने की योग्यता)**– यह स्वयं के विचारों को प्रकट करने तथा दूसरे व्यक्तियों के विचारों को समझने हेतु प्रवाह के साथ भाषा का उपयोग करने की क्षमता है। जिन व्यक्तियों में यह बुद्धि अधिक होती है वे 'शब्द–कुशल' होते हैं। ऐसे व्यक्ति शब्दों के भिन्न–भिन्न अर्थों के प्रति संवेदनशील होते हैं। वे अपने मन में भाषा के विभिन्न बिंबों का निर्माण कर सकते हैं और स्पष्ट तथा परिशुद्ध भाषा का उपयोग करते हैं। अच्छे वक्ता, लेखकों, कवियों में यह बुद्धि अधिक मात्रा में पाई जाती है।
2. **तार्किक–गणितीय (logical-mathematical) (तार्किक तथा आलोचनात्मक चिंतन एवं समस्याओं को हल करने की योग्यता)**– इस प्रकार की बुद्धि की अधिक मात्रा रखने वाले व्यक्ति तार्किक तथा आलोचनात्मक चिंतन करने में कुशल होते हैं। वे अमूर्त तर्कना कर लेते हैं और गणितीय समस्याओं के हल के लिए प्रतीकों का प्रहस्तन अच्छी प्रकार से कर सकते हैं। वैज्ञानिकों तथा नोबेल पुरस्कार विजेताओं में इस प्रकार की बुद्धि अधिक पाई जाती है।
3. **देशिक या स्थानिक (Spatial) (दृश्य बिंब तथा प्रतिरूप निर्माण करने की योग्यता)** – यह मानसिक बिंबों को बनाने, उनका उपयोग करने तथा उनमें मानसिक धरातल पर परिमार्जन करने की योग्यता होती है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति सरलता से देशिक सूचनाओं को अपने मस्तिष्क में रख सकता है। मूर्तिकार, वास्तुकार, चित्रकार, आंतरिक साज–सज्जा के विशेषज्ञ, शल्य–चिकित्सक आदि में इस प्रकार की बुद्धि अधिक पाए जाने की संभावना रहती है।
4. **संगीतात्मक (musical) (सांगीतिक लय तथा अभिरचनाओं को उत्पन्न करने की योग्यता)**– सांगीतिक अभिरचनाओं को उत्पन्न करने, उनका सर्जन करने की क्षमता सांगीतिक योग्यता कहलाती है। इस प्रकार की बुद्धि की उच्च मात्रा रखने वाले लोग ध्वनियों और स्पंदनों तथा ध्वनियों की नई अभिरचनाओं के सर्जन के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील होते हैं।

टिप्पणी

5. **शारीरिक–गतिसंवेदी (bodily-kinsthetic) (संपूर्ण शरीर अथवा उसके किसी अंग की लोच का उपयोग करने की योग्यता और उसमें सर्जनात्मकता प्रदर्शित करना)**– किसी वस्तु के निर्माण के लिए अथवा मात्र शारीरिक प्रदर्शन के लिए संपूर्ण शरीर अथवा उसके किसी एक या एक से अधिक अंग की लोच तथा पेशीय कौशल की योग्यता शारीरिक–गतिसंवेदी योग्यता कहलाती है। धावकों, नर्तकों, खिलाड़ियों, जिमनास्टों तथा शल्य–चिकित्सकों में इस बुद्धि की अधिक मात्रा में पाए जाने की संभावना होती है।

6. **अंतर्वैयक्तिक (interpersonal) (दो या दो से अधिक व्यक्तियों के सूक्ष्म व्यवहारों को जानने की योग्यता)**– इस योग्यता द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों की अभिप्रेरणाओं या उद्देश्यों, भावनाओं तथा व्यवहारों का सही बोध करते हुए उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करता है। मनोवैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षक तथा धार्मिक नेता आदि में उच्च अंतर्वैयक्तिक बुद्धि की अधिक मात्रा पाई जाती है।

7. **अंतःव्यक्ति (Intrapersonal) (अपनी निजी भावनाओं, अभिप्रेरणाओं तथा इच्छाओं को जानने की योग्यता)**– इस प्रकार की बुद्धि के अंतर्गत व्यक्ति को स्वयं की शक्ति तथा कमजोरियों का ज्ञान और उस ज्ञान का अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक अंतःक्रिया में उपयोग करने की ऐसी योग्यता सम्मिलित है जिससे यह दूसरे व्यक्तियों से प्रभावी संबंध स्थापित करता है। इस प्रकार की बुद्धि की अधिक मात्रा रखने वाले व्यक्ति अपनी पहचान, मानव अस्तित्व और जीवन के अर्थों को समझने में अत्यंत संवेदनशील होते हैं। दार्शनिक तथा आध्यात्मिक नेता आदि में इस प्रकार की उच्च बुद्धि पाई जाती है।

8. **प्रकृतिवादी (Naturalistic) (पर्यावरण के प्राकृतिक पक्ष की विशेषताओं को पहचानने की योग्यता)**– इस प्रकार की बुद्धि से अभिप्राय प्राकृतिक पर्यावरण से हमारे संबंधों की पूर्ण अभिज्ञता से है। विभिन्न पशु–पक्षियों तथा वनस्पतियों के सौंदर्य का बोध करने में और प्राकृतिक पर्यावरण में सूक्ष्म विभेद करने में यह बुद्धि अत्यंत सहायक होती है। शिकारी, किसान, पर्यटक, प्राणीविज्ञानी, वनस्पतिविज्ञानी और पक्षीविज्ञानी आदि में प्रकृतिवादी बुद्धि के अधिक मात्रा में पाए जाने की संभावना होती है।

बुद्धि का त्रिचापीय सिद्धांत

राबर्ट स्टर्नबर्ग (1985) ने बुद्धि का त्रिचापीय सिद्धांत प्रस्तुत किया। स्टर्नबर्ग के मत में "बुद्धि वह योग्यता है जिससे व्यक्ति अपने पर्यावरण के प्रति अनुकूलित होता है, अपने तथा अपने समाज और संस्कृति के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पर्यावरण के कुछ पक्षों का चयन करता है और उन्हें परिवर्तित करता है।" इस सिद्धांत के अनुसार, बुद्धि मूल रूप से तीन प्रकार की होती है– घटकीय, आनुभविक तथा सांदर्भिक।

टिप्पणी

घटकीय बुद्धि (Componential Intelligence) – घटकीय या विश्लेषणात्मक बुद्धि वह बुद्धि है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने के लिए प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करता है। इस प्रकार की बुद्धि की अधिक मात्रा वाले लोग विश्लेषणात्मक तथा आलोचनात्मक ढंग से सोचते हैं। इस बुद्धि के भी तीन अलग–अलग घटक होते हैं जो अलग–अलग कार्य करते हैं। पहला घटक ज्ञानार्जन से संबंधित है जिसके द्वारा व्यक्ति अधिगम करता है और विभिन्न कार्यों को करने की विधि का ज्ञान प्राप्त करता है। दूसरा घटक एक उच्च स्तरीय घटक होता है जिसके द्वारा व्यक्ति ये योजनाएं बनाता है कि उसको क्या करना है और कैसे करना है। तीसरा घटक निष्पादन से संबंधित होता है। इस प्रकार बुद्धि द्वारा व्यक्ति किसी कार्य का वास्तविक रूप में निष्पादन करता है।

आनुभविक बुद्धि (Experiential Intelligence)– आनुभविक या सर्जनात्मक बुद्धि द्वारा व्यक्ति किसी नई समस्या के समाधान हेतु अपने पूर्व अनुभवों का सर्जनात्मक रूप से उपयोग करता है। इस प्रकार की बुद्धि का सर्जनात्मक निष्पादन में प्रदर्शन है। इस बुद्धि की उच्च मात्रा रखने वाले लोग विगत अनुभवों को मौलिक रूप से समाकलित करते हैं और समस्या के मौलिक समाधान खोजते हुए आविष्कार करते हैं। किसी भी विशेष स्थिति में वे तुरंत समझ जाते हैं कि कौन सी सूचना अधिक निर्णायक सिद्ध होगी।

सांदर्भिक बुद्धि (contextual intelligence)– जिस बुद्धि के द्वारा व्यक्ति अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में आने वाली पर्यावरणीय मांगों से निपटता है, उसे व्यावहारिक बुद्धि या व्यावसायिक बुद्धि कहते हैं। इस बुद्धि की अधिक मात्रा रखने वाले व्यक्ति अपने वर्तमान पर्यावरण से शीघ्र अनुकूलित हो जाते हैं या फिर अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पर्यावरण में वांछित परिवर्तन कर लेते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति अपने जीवन में सफल होते हैं।

अतः स्टर्नबर्ग का त्रिचापीय सिद्धांत बुद्धि को समझने के लिए सूचना प्रक्रमण उपागम के अंतर्गत अपने वाले सिद्धांतों का एक प्रतिनिधि सिद्धांत है।

3.3.2 शिक्षण अधिगम के लिए आकलन और महत्व

शिक्षण की अन्तिम अवस्था मूल्यांकन से सबंधित है। इस अवस्था में शिक्षण की वो सभी क्रियाएं सम्मिलित होती है, जो छात्रों की निष्पत्तियों के मूल्यांकन तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के निर्णय के संबंध में प्रयुक्त की जाती है। शिक्षण के अन्त में छात्रों के व्यवहार परिवर्तन का मापन किया जाता है। शिक्षक छात्रों के मापन के लिए उनके मौखिक व लिखित प्रश्न पूछता है ताकि छात्रों की उपलब्धियों का सही मूल्यांकन कर सके।

मूल्यांकन पक्ष में निम्न क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है–

1. मूल्यांकन पक्ष में उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिससे छात्रों की निष्पत्ति तथा उद्देश्यों की प्राप्ति का निर्णय किया जा सके। इसके अन्तर्गत प्रयुक्त प्रविधियों में कौन सी कमी रही, इसकी जानकारी प्रदान की जाती है। उसी के आधार पर शिक्षक नई इकाई पढ़ाई जाए या नहीं का निर्णय लेता है।

टिप्पणी

2. मूल्यांकन के अन्तःप्रक्रियाचरण के अंतर्गत शिक्षक और छात्र द्वारा किये गये क्रिया–प्रतिक्रिया से बालक के व्यवहार में किसी सीमा तक परिवर्तन हुआ है, इसी का मूल्यांकन किया जाता है।
3. मूल्यांकन की तीसरी अवस्था में शिक्षक लिखित या मौखिक प्रश्नों व परीक्षणों आदि के माध्यम से छात्रों की निष्पत्तियों का पता लगाता है। इस प्रकार से शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया का आकलन इस अवस्था में किया जाता है तथा भविष्य के लिए नई योजना व व्यूह रचना बनाई जाती है।

शिक्षण के उत्तर–क्रिया चरण की प्रकृति

1. यह अवस्था पूर्व चरणों के उपरान्त की सभी गतिविधियों का विश्लेषण करती है।
2. इस अवस्था में शिक्षक, छात्र एवं शिक्षण क्रियाओं का आकलन करता हैं।
3. शिक्षण के इस चरण की आधार विशिष्ट गतिविधियां है।
4. शिक्षण का यह चरण शिक्षण में सुधार एवं पुनर्विचार करने का अवसर प्रदान करता है।
5. इस चरण में मूलतः पूर्व प्रक्रिया चरण व अन्तःप्रक्रिया चरण का मूल्यांकन तथा भविष्य के लिए सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं।

शिक्षण के तीनों चरणों पर प्रतिपुष्टि देना

इस अवस्था में एक शिक्षक निम्न कार्य करता है–

1. बालकों के व्यवहार परिवर्तन के शुद्ध रूप को परिभाषित करना।
2. समुचित मूल्यांकन प्रविधियों का चयन करना।
3. मूल्यांकन से छात्रों की निष्पत्तियों का निर्णय लेना।
4. कमियों को सूचीबद्ध करना।
5. प्रमाणों का विश्लेषण करना।
6. पाठ–शिक्षण के विषय में निर्णय लेना।

1. बालकों के व्यवहार परिवर्तन के शुद्ध रूप को परिभाषित करना

इस चरण में शिक्षक छात्रों के व्यवहार परिवर्तन को परिभाषित करता है जिससे मानदण्ड व्यवहार कहते हैं। इसके लिए शिक्षक छात्रों के पूर्व व्यवहार से उसके अन्तिम व्यवहार की तुलना करता है और यदि छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन होता है तो इसका अर्थ हुआ कि शिक्षक ने जो शिक्षण क्रियाएं छात्रों के व्यवहार परिवर्तन के लिए की थी वो प्रभावशाली रही है तथा उसने शिक्षण उद्देश्य की प्राप्ति कर ली है। इसके विपरीत यदि छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन नहीं किया है तो इसका अर्थ हुआ कि शिक्षक की पूर्व प्रक्रिया एवं अन्तःप्रक्रिया के अन्तर्गत प्रयोग की गई, विधियों, प्रविधियों की प्रभावशीलता में कहीं कमी रह गई है। उसके सुधार की आवश्यकता है।

टिप्पणी

2. समुचित मूल्यांकन प्रविधियों का चयन करना

इस अवस्था में शिक्षक को छात्रों के पूर्व व अन्तिम व्यवहार का पता लगाने के लिए कुछ मूल्यांकन प्रविधियों का चयन करना पड़ता है। जिनके द्वारा अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन की जांच की जाती सके। जिन मूल्यांकन प्रविधियों का चयन किया जाय वो विश्वसनीय तथा वैद्य होनी चाहिए। मूल्यांकन में बालकों के ज्ञानात्मक भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों की जांच की जाती है। इसके लिए व निष्पत्ति परिक्षण का उपयोग करता है। परन्तु अब निष्पत्ति परीक्षण के स्थान पर मानदण्ड परीक्षणों के प्रयोग पर महत्व दिया जाने लगा है।

3. मूल्यांकन से छात्रों की निष्पत्तियों का निर्णय लेना

मूल्यांकन की प्रविधियों का प्रयोग करने से छात्रों की निष्पत्ति और उद्देश्यों की प्राप्ति के विषय में ज्ञान हो जाताह है। साथ ही यह भी पता चल जाता है कि शिक्षण ने जो शिक्षण विधि व प्रविधियों का उपयोग किया था वो कहां तक उद्देश्यों की प्राप्ति करने में सफल रही है व कया कमी रह गई है। इसकी जानकारी शिक्षण को प्राप्त हो। ताकि वह इनमें सुधार करके उद्देश्यों को प्राप्त कर सके।

4. कमियों को सूचीबद्ध करना

शिक्षण की तीनों अवस्थाओं के आधार पर उन सभी तत्वों की सूची बनाई जाती है, जिनके कारण छात्रों व व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो सका।

5. प्रमाणों का विश्लेषण करना

परीक्षणों के प्रमाणों के आधार पर शिक्षक विश्लेषण करता है कि अपेक्षित व्यवहार किन कारणों के कारणों नहीं हो पाया है। फिर वह उनकी कमियों की एक सूची बनाकर रखता है व विश्लेषण करता है कि ये प्रमाण वैद्य व विश्वसनीय है या नहीं।

6. पाठ–शिक्षण के विषय में निर्णय लेना

प्रमाणों के विश्लेषण के आधार पर शिक्षक निर्णय लेता है कि जिन उद्देश्यों को आधार बनाकर शिक्षण किया गया था, वो पूरे हुए या नहीं। इस निर्णय शिक्षक दुबारा से करता है तथा पुनः शिक्षण कराना है या नहीं, इसका भी निर्णय लेता है।

शिक्षण में पेशेवर विकास के लिए प्रतिवर्तन एवं मूल्यांकन, आत्मचिंतन, निरीक्षण और साथियों की प्रतिक्रिया

शिक्षा के उद्देश्यों, शैक्षणिक अनुभव तथा मूल्यांकन में घनिष्ठ संबंध है। उद्देश्यों के आधार पर योजना बनाई जाती है तथा योजनानुसार उद्देश्य प्राप्त हुए या नहीं। इसको जानने के लिए मूल्यांकन किया जाता है। शिक्षा में मूल्यांकन व मापन दोनों का ही बहुत महत्व है। मापन की विधियां से जहां छात्र की उपलब्धि, बुद्धि, अभिवृत्ति, व्यक्तित्व आदि की वस्तुनिष्ठ परीक्षणों द्वारा जांच की जाती है वहीं मूल्यांकन द्वारा परीक्षणों के नियम–सिद्धान्त, उनका निर्माण, मानकीकरण, प्रशासन तथा उनके द्वारा प्राप्त परिणामों की व्याख्या आदि सभी कुछ निहित माना जाता है।

मूल्यांकन को विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

चैस्टर टी. मैकनरली के अनुसार– ''किसी भी मूल्यांकन कार्यक्रम का उद्देश्य परीक्षार्थियों की आवश्यकताओं की खोज इस प्रकार करता है कि आवश्यकतायें

टिप्पणी

निश्चित कर लेने पर यह निश्चित किया जाए कि कौन–कौन से अनुभव है, जिनसे आवश्यकताएं संतुष्ट की जा सकती हैं। मूल्यांकन आवश्यकताओं को निश्चित करता है और साथ ही यह निश्चित करता है कि जिस का मूल्यांकन किया जा रहा है, उसका विकास कैसा हो रहा है? इसलिए मूल्यांकन एक नाजुक प्रक्रिया है। किसी एक साधान द्वारा उचित मूल्यांकन करना संभव नहीं है। इस कार्य को करने के लिए कई साधनों का उपयोग करना पड़ता है।''

राइटटोन के अनुसार– ''मूल्यांकन सापेक्षिक रूप में एक तकनीकी शब्द है, जो परम्परागत परीक्षणों और परीक्षा की तुलना में एक अधिक व्यापक संप्रत्यय के रूप में प्रयुक्त कियाजाने लगा है– इसमें व्यक्तित्व संबंधी मुख्य परिवर्तनों तथा शैक्षिक कार्यक्रम से जुड़े हुए मुख्य उद्देश्यों पर बल दिया जाता है। इसमें केवल विषय वस्तु से संबंधित उपलब्धियों को ही नहीं, बल्कि अभिवृत्तियों, रुचियों, आदर्शों, सोचने के तरीकों, काम करने की आदतों तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुकूलन क्षमता को भी शामिल किया जाता है।''

क्विलन एवं हैना के अनुसार– ''मूल्यांकन वह प्रक्रिया है, जिसमें विद्यालय द्वारा बालकों में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों के संबंध में सूचना एकत्रित की जाती है और उनकी व्याख्या की जाती है।''

छात्र मूल्यांकन

किसी भी प्रणाली या संस्था की गुणवत्ता इस बात की निर्भर होती है कि उद्देश्यों के आधार पर उनको उनकी पूर्ति में कितनी सफलता मिली है। उद्देश्य पूरे हुए है या नहीं। विद्यालय की निष्पत्ति उसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों के निष्पादन तथा उपलब्धियों की गुणवत्ता के आधार पर मापी जाती है। विद्यालय का वास्तविक उद्देश्य उसमें पढ़ने वाले छात्रों का हित होता है विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाकर विद्यालय व शिक्षक उनके व्यक्तित्व में सर्वागीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। क्योंकि विद्यार्थियों की प्रगति का लेखा–जोखा भी हमे विद्यालय तथा अन्य वाल्य एजेन्सियों द्वारा प्रतिपादित उपलब्धि एवं निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रमों एवं रिकार्डो से अच्छी तरह उपलब्ध होता है।

छात्र मूल्यांकन के कार्य क्षेत्र

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार–''आज स्कूल बच्चे के मानसिक विकास के साथ–साथ उनके शारीरिक, सामाजिक और भावात्मक विकास की ओर ध्यान देता है।'' अतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा ही वो साधन है, जिसके माध्यम से बच्चे का सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा के इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर छात्र के विस्तृत मूल्यांकन में निम्न तथ्य सम्मिलित होते हैं–

1. पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों का मूल्यांकन– इसमें विभिन्न पाठ्यविषयों में समय–समय पर लिये जाने वाले साप्ताहिक, मासिक एवं सत्रीय अर्द्धवाषिक तथा वार्षिक परीक्षाओं एवं परीक्षणों के परिणामों के आधार शामिल होता है।

टिप्पणी

2. मौखिक व लिखित परीक्षाओं, निष्पादन, परीक्षणों, साक्षात्कार तथा समूह चर्चा, रेटिंग इत्यादि मूल्यांकन तकनीकों से पाठ्य तथा पाठेयत्तर क्षेत्र से संबंधित छात्र उपलब्धियों का निष्पादन क्षेत्र।
3. व्यवहार में आने वाले अपेक्षित परिवर्तनों का मूल्यांकन व्यक्तित्व विकास के मूल्यांकन हेतु लिये जाने वाले बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, सृजनात्मक परीक्षण, अभिरुचि एवं अभिवृत्ति परीक्षण आदि से प्राप्त परिणाम
4. व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रोजेक्टों पर कार्य करने संबंधी मूल्यांकन– जो छात्र कक्षा में व्यक्तिगत व सामूहिक प्रोजेक्टस पर कार्य करते हैं उनके प्रगति के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।
5. पाठ्यसहगामी क्रियाओं के आधार पर मूल्यांकन– विभिन्न प्रकार की पाठ्य सहगामी क्रियाओं, खेलकूद, समाज सेवा, सामुदायिक कल्याण कार्य एन.सी. सी, स्काउटिंग आदि में प्राप्त उपलब्धियों एवं निष्पादन का विद्यालयों में उपलब्ध व्यक्तिगत एवं सामूहिक रिकार्ड आदि।
6. जिला, राज्य, अन्तर्राज्यीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित प्रतियोगिताओं में विद्यार्थियों द्वारा अर्जित व्यक्तिगत एवं सामूहिक पुरस्कार, प्रशंसा पत्र तथा उपलब्धियों का रिकार्ड आदि।

छात्र मूल्यांकन के उद्देश्य (Objectives of Puple Evaluation)

छात्र मूल्यांकन निम्नांकित प्रयोजनों हेतु किया जाता है–

1. अध्यापकों को छात्र मूल्यांकन की योजना बनाने हेतु।
2. छात्रों की आवश्यकताओं और क्षमताओं का ज्ञान प्राप्ति हेतु।
3. छात्रों के व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों को ज्ञात करने हेतु।
4. शिक्षण उद्देश्यों का ज्ञान प्राप्ति हेतु।
5. शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति का पता लगाने हेतु।
6. छात्रों के अध्ययन, विकास और उन्नति की जानकारी हेतु।
7. छात्रों की स्वःउन्नति की जानकारी हेतु।
8. अध्यापक की योग्यता और क्षमता की जांच हेतु।
9. मूल्यांकन द्वारा मानदण्ड को विश्वसनीयता वैधता की जांच करने हेतु।

छात्र मूल्यांकन की विधियां (Methods of Pupil Evaluation)

छात्र उपलब्धि एवं निष्पादन की मुख्यतः पांच विधियां हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

1. रचनात्मक मूल्यांकन विधि
2. संकलित मूल्यांकन विधि
3. मानदण्ड संदर्भित मूल्यांकन विधि
4. मानक संदर्भित मूल्यांकन विधि
5. निरन्तर एवं व्यापक मूल्यांकन विधि

टिप्पणी

1. रचनात्मक मूल्यांकन विधि (Formative Evaluation Test Method)

रचनात्मक मूल्यांकन शिक्षण तथा अनुदेशन के प्रस्तुतीकरण का पाठ्य पुस्तक को इकाइयों में बांटकर शिक्षण किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण रचनात्मक मानदण्ड परीक्षणों की तरह ही बनाये जाते हैं। परन्तु इनकी रचना प्रत्येक इकाई के लिए की जाती है, जिससे छात्रों को पाठ्यपुस्तक के स्वामित्व का अवसर दिया जाता है। रचनात्मक मूल्यांकन विधि का प्रयोग अधिगम शिक्षण को प्रभावशाली बनाने तथा छात्रों को पाठ्यवस्तु की इकाई के रूप में स्वामित्व एवं उद्देश्यों की प्राप्ति करने में किया जाता है।

2. संकलित मूल्यांकन विधि (Summative Evaluation Test Method)

इस परीक्षण विधि में पाठ्यवस्तु की सभी इकाईयों के शिक्षण के अन्त में छात्रों को परीक्षण दिया जाता है। जब छात्र सभी इकाइयों को अलग–अलग रूप रचनात्मक मूल्यांकन विधि से पास कर लेते हैं उसके बाद वर्ष के अन्त में संकलित मूल्यांकन परीक्षण छात्रों को करने के लिए दिया जाता हे। जिसके द्वारा छात्रों के सामान्य स्तर का पता लगता है। और छात्रों की सफलता के आधार पर शिक्षण व अनुदेशन की प्रभावशीलता का मूल्यांकन होता है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रभावशीलता का पता चलता है। ये दोनों प्रकार के परीक्षण एक दूसरे के पूरक है। रचनात्मक मूल्यांकन छात्रों की अधिगम कठिनाइयों का पता लगाता है तो संकलित मूल्यांकन परीक्षण से शिक्षण की प्रभावशीलता का मापन करता है।

3. मानदण्ड संदर्भित मूल्यांकन विधि (Criterion Referenced Test)

मापन के क्षेत्र में इस नवीन शब्दावली का विकास हुआ जिसे 'मानदण्ड संबंधित परीक्षण (Criterion Test) तथा मानक संबंधित परीक्षण (Norm Referenced Tast) कहते हैं। शैक्षिक मापन में इन नवीन परीक्षणों का विकास हुआ। जो कि परम्परागत परीक्षणों के भिन्न है। तथा इनके उद्देश्य केन्द्रित परीक्षण (Objective Centred Test) भी कहा जाता है। इनकी रचना तथा उपयोग मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक सिद्धानतों पर आधारित है। इनका उपयोग विशिष्ट परस्थितियों में ही किया जाता है। मानदण्ड परीक्षणों के माध्यम से छात्र की सामान्य स्तर का बोध होता है।

4. मानक सन्दर्भित मूल्यांकन विधि (Norm Centered Method)

ये परीक्षण परम्परागत ढंग से जो 'प्रमाणिक–निष्पादन परीक्षा' तथा शिक्षक द्वारा निर्मित किये जाते हैं उन्हें मानक संदर्भित परीक्षण की संज्ञा दी है। इनका उद्देश्य पाठ्यक्रम संबंधी उपलब्धियों का मापन करना है और छात्रों की उपलब्धि स्तर पर मूल्यांकन समूह में स्तरीकरण (मानक) के रूप में किया जाता है। ये परीक्षण का उद्देश्य पाठ्यवस्तु पर स्वामित्व प्राप्त करना होता है। इन परीक्षणें की पाठ्य वैधता (Content validity) होती है। परीक्षण में सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु पर प्रश्न सम्मिलित किये किये जाते हैं।

टिप्पणी

5. निरन्तर एवं व्यापक मूल्यांकन विधि (Continuous and Comprehensive Test)

मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है तथा शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है जिसका सीधा सम्बन्ध मूल्यांकन से है। मूल्यांकन छात्रों के अध्ययन एवं अध्यापकों की शिक्षण प्रणाली को प्रभावित करता है। इस प्रकार का मूल्यांकन शिक्षण व शिक्षार्थियों की सफलता एवं असफलता की ही जांच नहीं करता है, अपितु शिक्षा में सुधार लाने में भी सहायता प्रदान करता है। इस मूल्यांकन परीक्षण से ऐसये प्रमाण एकत्रित किये जाते हैं, जिनसे यह प्रमाणित किया जाता है कि छात्रों के व्यवहार में परीवर्तन वांछित दिशा में हो रहा है या नहीं।

विभिन्न माध्यमों के उपयोग के बाद शिक्षण का विश्लेषण

शैक्षिक मल्टीमीडिया के मूल्यांकन के मुद्दों को दो स्तरों पर देखा जा सकता है–

(अ) वैचारिक मुद्दा– इस क्षेत्र में डिजाइन के लिए चयनित क्षेत्र/विषय पर बिखरे हुए ज्ञान को एकीकृत करता है।

(ब) प्रस्तुतीकरण का स्तर– यह एक मल्टीमीडिया प्रोग्राम वैचारिक ढांचे की प्राप्ति से संबंधित है। जो कम्प्यूटर पर चलता है।

पाठ्यवस्तु को प्रस्तुत करने के लिए शिक्षक विभिन्न प्रकार के शिक्षण साधनों का प्रयोग करता है। जैसे चलती–फिरती तस्वीरों, रेडियो, ऑडियो, टैक्सट आदि। शिक्षण प्रक्रिया में इसका उद्देश्य मल्टीमीडिया के तत्वों को एक विशिष्ट वास्तुकला में एकीकृत करना है। तथा ये डिजाइन शिक्षण की अंतःक्रिया में मल्टीमीडिया सामग्री का डिजाइन सीखने और सिखाने दोनों सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए। शिक्षण की प्रभावशाली अंतःक्रिया के लिए शिक्षण सामग्री का एठन करने के लिए एक विस्तृत श्रृंखला का निर्माण किया जाना चाहिए, जिसका आधार व्यक्ति का निर्णय होगा।

रचनात्मकता तथा नवीनता के लिए पाठ्य सामग्री की प्रस्तुति एवं अंतःक्रिया को डिजाइन करने के लिए इस प्रक्रिया में शामिल मुद्दों पर विचार करना चाहिए, जो निम्न हैं–

1. **शैक्षिक प्रभावशीलता**– शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए मीडिया के साधनों का बहुत महत्व है। यदि मल्टीमीडिया का प्रयोग उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है व छात्रों की उपलब्धि में सकारात्मक परिवर्तन हो रहा है तब ही शिक्षण सामग्री प्रभावशाली माना जाती है अन्यथा नहीं।
2. **मनोरंजन का मूल्य**– जिस मीडिया का उपयोग शिक्षक यदि छात्रों को खेल–खेल में तथा मनोरंजक तरीके से करता है तो ही शिक्षण प्रभावशाली माना जायेगा क्योंकि तभी शैक्षिक लक्ष्यों की पूर्ति शिक्षक कर सकेगा।
3. **शिक्षण से प्रयुक्त प्रायौगिकी का छात्रों के स्तर के आधार पर प्रस्तुतीकरण** – एक शिक्षक अपने शिक्षण में जब प्रायौगिकी को प्रयुक्त करता है तो उसे ये ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वारा प्रयुक्त प्रायौगिकी

टिप्पणी

छात्रों के मानसिक स्तर, आवश्यकताओं एवं योग्यता के आधार पर हो। यदि प्रयुक्त शिक्षण साधनों को उपयोग करते समय शिक्षक छात्रों के स्तर का ध्यान नहीं रखता तो वह अपने शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पायेगा।

4. **डिजाइन सुविधाएं**– पाठ्यवस्तु को प्रस्तुत करते समय एक शिक्षक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किस पाठ्यसामग्री को प्रस्तुत करते समय किस साधन को प्रयुक्त करना है, जिससे शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। जैसे भूगोल पढ़ाते समय उसे, एटलस, नक्शे, ग्लोब आदि की व्यवस्था करनी चाहिए।

उपयुक्त माध्यमों का सही समय पर प्रयोग करके शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावशाली बना सकता है। शिक्षण सामग्री का चयन, प्रस्तुतीकरण व डिजाइन सुविधाएं ही शिक्षण को प्रभावशाली बनाने में सहायक है। शिक्षण सामग्री को यदि शिक्षक मनोरंजक तरीके से प्रस्तुत करेगा तो ही शिक्षण प्रभावशीलता से युक्त होगा।

अपनी प्रगति जांचिए

3. बहु–बुद्धि का सिद्धांत किसके द्वारा प्रस्तुत किया गया?

(क) एच.ई. गोन्स (ख) आर.आर. ब्राउन

(ग) राबर्ट स्टर्नबर्ग (घ) हावर्ड गार्डनर

4. राबर्ट स्टर्नबर्ग ने बुद्धि का त्रिचापीय सिद्धांत किस सन् में प्रस्तुत किया?

(क) सन् 1983 (ख) सन् 1985

(ग) सन् 1987 (घ) सन् 1989

3.4 रचनात्मकता की अवधारणा

रचनात्मकता एक व्यक्ति का बहुत ही अमूल्य और अद्वितीय गुण है जो उसे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में जटिल समस्याओं का समाधान करने के योग्य बनाता है। 1980 में गुलफोर्ड ने कहा था कि मनुष्य के सभी गुणों में, उसकी रचनात्मक सोच में योगदान देने वाले गुण उसकी अच्छाई और विकास के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। न्यूटन ने बहुत ही कम उम्र में गुरुत्वाकर्षण और गति के नियमों का प्रतिपादन किया था। गैलीलियो और आइंस्टीन की प्रतिभा को बचपन में ही पहचान लिया गया था। इसलिए, रचनात्मकता के उपहार को बचपन से ही विकसित करने और युवा होने तक बनाए रखने की आवश्यकता होती है।

एक प्रख्यात व्यक्ति के आकलन के अनुसार, 'प्रत्येक अविकसित देश में संभावित आइंस्टीन और न्यूटन पशु चरा रहे हैं या पत्थर तोड़ रहे हैं।' इस कथन में बहुत बड़ी सच्चाई है क्योंकि यह दर्शाता है कि विकासशील या अविकसित देशों में कैसे मानव संसाधन अपरिष्कृत बने हुए हैं। किसी राष्ट्र की प्रगति और सम्पन्नता उसके लोगों के सम्भावित रचनात्मकता विकास पर निर्भर करती है।

टिप्पणी

टोरेंस ने कहा कि "समाज रचनात्मक विचारकों के प्रति सर्वथा बर्बर होता है, खासकर तब जब वह युवा अवस्था में होता है"। किसी बच्चे की रचनात्मकता को दबाने का मतलब होता है, अयोग्यता को सीखना, व्यावहारिक समस्या, सामाजिक विमुखता और मानसिक प्रतिकूलता और इन सबसे ऊपर मानवजाति का नुकसान।

रचनात्मकता : अर्थ और परिभाषा

रचनात्मकता के अर्थ की व्याख्या करने वाली कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं नीचे दी गई हैं

1. जे.ई. द्रेवदहल के अनुसार, "रचनात्मकता किसी व्यक्ति की किसी कृति, उत्पाद या विचार उत्पादन या निर्माण की क्षमता होती है, जो अनिवार्य रूप से नया हो और पूर्व में कोई उसके बारे में नहीं जानता हो।"
2. जंग के अनुसार, "रचनात्मक लोग या तो विचार करने वाले या आकलन करने वाले होते हैं। गणितज्ञ और वैज्ञानिक आमतौर पर आकलन करने वाले होते हैं, जबकि लेखक आमतौर पर विचारक होते हैं। अवधारणा या तो ऐंद्रिक अवधारणा या फिर अंतर्ज्ञानी अवधारणा होती है। बहुत सारे लोग विचारक होते हैं लेकिन कुछ रचनात्मक लोग ही अंतर्ज्ञानी होते हैं।"
3. सी.ई. स्किन के अनुसार, "रचनात्मक सोच का अर्थ होता है कि व्यक्ति के लिए भविष्यवाणी या अनुमान नया, मौलिक, सरल और असामान्य हो। रचनात्मक विचारक वे हैं जो नए क्षेत्रों को बढ़ाते हैं और नई समीक्षा, नई भविष्यवाणी, नए अनुमान लगाते हैं।"
4. आर. स्टैगनर और टी.एफ. कारवोस्की ने कहा है रचनात्मकता का अर्थ है, नवीन पहचान की पूर्णतः या आंशिक कृति।"
5. टौरेंस ने रचनात्मकता की इस प्रकार व्याख्या की है, "समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनने, दोष, ज्ञान का अंतराल, छूटा हुआ तत्व, असामंजस्य और इसी प्रकार, कठिनाइयों को पहचानना, समाधान की तलाश करना, अनुमान लगाना या दोष के बारे में अवधारणा बनाना, अवधारणा की जांच और पुनर्जांच करना तथा संभावित बदलाव और पुनर्जांच करना और परिणाम को व्यक्त करना है।
6. बिसवर्ग और स्प्रिंगर ने रचनात्मक मस्तिष्क की व्याख्या इस प्रकार की है, "वह जिसमें किसी समस्या का उद्दीपन आसानी से विभिन्न प्रयोगात्मक क्षेत्रों से पदार्थ का विकास करती है।"
7. आर.सी. विलसन, जे. पी. गुलफोर्ड और पी. आर. क्रिसटेनसन ने रचनात्मकता की व्याख्या इस प्रकार की है, "कोई भी वह प्रक्रिया जिससे पुराने तत्वों के नये रूपांतरण वाली कोई नई कृति, कोई विचार या वस्तु बनाई जाती है, रचनात्मक प्रक्रिया कहलाती है। यह नवीन सर्जना कुछ समस्याओं के समाधान में अवश्य योगदान करती है।"
8. एक रूसी मनोवैज्ञानिक बिगनीव पाइट्रासइनस्की के अनुसार, "रचनात्मकता एक गतिविधि है जिसका परिणाम निश्चित सामाजिक मूल्य के नए उत्पाद होते हैं।"

टिप्पणी

रचनात्मकता के सिद्धांत

रचनात्मकता के सिद्धांत इस प्रकार हैं–

1. **दैवीय प्रेरणा के रूप में रचनात्मकता** : प्लेटो के अनुसार, रचनात्मक लेखक दैवीय शक्ति का कर्ता है।
2. **रचनात्मकता पागलपन के रूप में** : रचनात्मकता को कभी–कभी कुछ हद तक भावनात्मक शोध के रूप में लिया जाता है जो कि इंसान को उन्मत्त बनाए रखता है। महान चित्रकार वैन गौग को आधा पागल कहा जाता था। फ्रॉयड का कहना है कि, "पागल एक कलाकार की कला है"।
3. **रचनात्मकता और अंतर्ज्ञानी** : इस बिन्दु के अनुसार, एक कलात्मक व्यक्ति सीधे और जल्द सहज ज्ञान प्राप्त करता है।
4. **रचनात्मकता समूह के रूप में** : ऐसा कहा गया है कि नए विचार, पुराने विचारों से बनते हैं। इस तरह, अधिक समूह से और अधिक विचार पैदा होते हैं तथा और अधिक रचना होती है।
5. **समष्टि सिद्धांत और रचनात्मकता** : दोबारा पैटर्न या समष्टि का निर्माण करना जिसकी संरचना में कमी हो, रचनात्मकता कहलाती है।
6. **मनोविश्लेषण और रचनात्मकता** : फ्रायड के अनुसार, रचनात्मकता की उत्पत्ति अचेतन दिमाग में गतिरोध से होती है। रचनात्मकता तनाव कम करने की एक प्रक्रिया है।

रचनात्मक प्रक्रिया

विलसन, गुलफोर्ड और क्रिसटेनसन ने पाया कि रचनात्मक प्रक्रिया कोई भी ऐसी प्रक्रिया है जो कुछ नया उत्पन्न करती है–एक वस्तु या एक विचार जिसमें नया स्वरूप या पुराने तत्वों का रूपांतरण शामिल है। इस नई रचना से समस्या के समाधान में जरूर योगदान मिलना चाहिए।

टौरेंस का मानना था कि रचनात्मकता की प्रक्रिया वैज्ञानिक पद्धति के चरणों के समान है। इन दोनों का जो मुख्य तत्व है वह है कुछ नए की उत्पत्ति करना।

रचनात्मकता का स्वभाव और गुण

1. रचनात्मकता कुछ पारस्परिक प्रभावों का अंतिम परिणाम है।
2. रचनात्मकता विचारों या वस्तुओं के संश्लेषण करने की योग्यता है।
3. रचनात्मकता नए विचारों, सिद्धांतों या वस्तुओं को बनाने की योग्यता है।
4. रचनात्मकता कुछ मूल चीजों के विकास करने की योग्यता है।
5. रचनात्मकता के कई आयाम होते हैं।
6. रचनात्मकता एक प्रक्रिया होने के साथ–साथ एक उत्पादन भी है।
7. रचनात्मकता एक जटिल, परिवर्तनशील और गम्भीर प्रक्रिया है।

टिप्पणी

8. रचनात्मकता किसी विशेष माध्यम, स्थान, व्यक्ति या समय को नहीं पहचानती है।
9. रचनात्मकता चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता है।
10. रचनात्मकता पसंद के अभ्यास करने की स्वतंत्रता है।
11. रचनात्मकता स्वयं और पर्यावरण में बदलाव करने की इच्छा है।

विभिन्न व्यवसायों में रचनात्मकता भिन्न होती है

1. कलाकार के लिए, रचनात्मकता एक भावनात्मक मनोदशा को जगाने की योग्यता है।
2. शिल्पकार के लिए, रचनात्मकता नए प्रस्तावों, स्वरूप और नए भौतिकों की उत्पत्ति करने की योग्यता है।
3. वैज्ञानिक के लिए, रचनात्मकता ज्ञान का विस्तार करने के लिए नए तरीकों के विस्तार करने की योग्यता है।
4. शिक्षक के लिए, रचनात्मकता पढ़ने–पढ़ाने के परिवर्तनशील तरीकों की खोज और लागू करने की योग्यता है।
5. छात्र के लिए, रचनात्मकता शब्दों और वाक्यांश का नई स्थिति में प्रयोग करने, सवालों को जल्दी हल करने, नए प्रकार के चार्ट और प्रोजेक्ट बनाने, निबंध या नए विचारों को लेकर कहानियां लिखने और इसी तरह की योग्यता है।

एक रचनात्मक चरित्र के गुण

टौरेंस ने 84 गुणों की एक सूची तैयार की है जो कि एक रचनात्मक चरित्र के गुणों की व्याख्या करते हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं:

1. साहसिक।
2. स्वभाव से जिज्ञासु।
3. कुछ बेहतर करने की इच्छा।
4. अपने विचार, एहसास और काम करने के प्रति लचीलापन होना।
5. अंतर्ज्ञानी।
6. विस्तार करने और सृजन करने की चाहना।
7. परंपरा विरोधी।
8. स्वयं अनुशासित।
9. कल्पना करने वाला।
10. जोखिम उठाने के लिए इच्छुक।

रचनात्मक बच्चे हमेशा, पूछ–ताछ, खोज, कल्पना, सपना, प्रश्न, अनुमान लगाते और आश्चर्य करते रहते हैं। इसलिए उन्हें असाधारण प्रश्न करने के लिए, सोचने के नए

टिप्पणी

तरीकों का विस्तार करने के लिए, समस्या का समाधान करने के लिए, नवीन प्रस्तावों का प्रयोग करने के लिए, विचारों और वस्तुओं से खेलने के लिए और पौराणिक विषयों के लिए सम्बोधन के विभिन्न तरीकों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

रचनात्मकता को प्रभावित करने वाले कारक

बहुत सारे ऐसे कारक हैं जो बचपन में रचनात्मकता के विकास को प्रभावित करते हैं, जिसमें उम्र और पालन–पोषण शामिल हैं। बचपन में रचनात्मक विकास का आशय मुख्यतया बच्चे द्वारा रचनात्मक सोच का प्रयोग करके खोज करने से है, न कि किसी निश्चित रचनात्मक कला का विकास है। रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए अवसर और प्रशंसा से अग्रिम जीवन में कलात्मक प्रयासों के लिए और अधिक रुचि उत्पन्न होती है। हालांकि यह एक बच्चे की कलात्मक प्रतिभाओं का एक निश्चित दृढ़निश्चय नहीं होता है।

छोटे बच्चों के लिए, रचनात्मक विकास का आशय कला से जुड़े क्रियाकलापों द्वारा व्यक्त कल्पना क्षमता का विकास होता है। इसमें दृश्य कला, गाना, और कहानी कहना शामिल है। कुछ मामलों में, युवा दिमाग का दुनिया को देखने का नजरिया विकास को प्रभावित करता है, जिसका परिणाम निश्चित उम्र समूह के बीच विशेष पैटर्न का खेल है।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक जो बचपन में रचनात्मक विकास को प्रभावित करता है वह उम्र है। अलग–अलग उम्र के बच्चों में भिन्न रचनात्मक क्षमता और दुनिया के प्रति सोचने का नजरिया होता है। उदाहरण के लिए, विकास के एक निश्चित चरण में, बच्चे चित्र बनाने वाले उपकरण और बन रहे चित्र में अंतर नहीं कर पाते हैं, इसलिए वे चित्र बनाने वाले उपकरण से भी खेलने लगते हैं जबकि वह प्रदर्शित करने वाली एक वस्तु है। छोटे बच्चे हमेशा चित्र सतह और अन्य सतह में भी अंतर नहीं कर पाते हैं, यह भी उम्र के ही कारण होता है।

अन्य कारक जो शुरुआती बचपन में रचनात्मक विकास को प्रभावित करता है वह अवसर है। अक्सर जिन बच्चों को रचनात्मक खेल खेलने के लिए प्रोत्साहन मिलता है वे इन क्षेत्रों में प्रोत्साहन नहीं मिलने वाले बच्चों की अपेक्षा जल्दी विकास करते हैं।

यह ध्यान देना आवश्यक है हालांकि इस चरण में प्रतिभा और रचनात्मकता सीधे संबंधित नहीं होती है। एक बच्चा जो कि अपने विचारों को सही ढंग से चित्र में प्रदर्शित नहीं कर पाता है, वह बहुत रचनात्मक होगा लेकिन उसमें समन्वय प्रतिभा की कमी हो सकती है। रचनात्मक खेल के विभिन्न क्षेत्रों में बेहतर करना बच्चों के लिए यह समान्य बात है।

रचनात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में सीखने की असमर्थता भी शामिल है। कुछ बच्चे जिनमें सीखने सबंधी कमी होती है, अन्य बच्चों के जैसे रचनात्मक विकास नहीं दर्शाते हैं। कुछ निश्चित मामलों में, एक शारीरिक विकलांगता सीखने की असमर्थता का कारण हो सकता है जैसा कि बधिर बच्चों के मामले में होता है जो कि सरलता से बोलना और गाना नहीं सीख पाते हैं।

टिप्पणी

शुरुआती बचपन में प्रशंसा रचनात्मक विकास में एक अहम भूमिका निभा सकती है, क्योंकि प्रशंसा उन तरीकों की संरचना करती है जिनसे बच्चे रचनात्मक कार्य को समझते हैं। उदाहरण के लिए बच्चों से यह पूछना कि वे क्या चित्र बनाने का प्रयास कर रहे हैं, इसकी नींव रखता है कि दुनिया की वास्तविक वस्तुएं कैसी दिखाई देती हैं। बच्चों को निश्चित तरीकों से गायन उपकरण चलाने के लिए प्रेरित करना विशेष दिशा में परिणाम दिला सकता है। रचनात्मक विकास में युवा प्रभाव एक भूमिका निभा सकती है, लेकिन विशेष प्रकार के खेल पर जोर देने से प्रगति रुक सकती है।

3.4.1 रचनात्मकता का मापदंड

रचनात्मकता की जांच में भिन्न सोच की परख होती है (गुलफोर्ड, 1967)। भिन्न सोच का आशय मानसिक प्रक्रिया के उस पहलू से होता है जिसमें एक छोटी–सी जानकारी के आधार पर व्यक्ति समस्याओं के कई सही समाधान देता है। इस प्रकार, भिन्न सोच अभिसारी सोच से अलग है जिसमें व्यक्ति समक्रमित करने या जानकारी के कई हिस्सों को घटाकर एक सही उत्तर देने की कोशिश करता है। अभिसारी सोच को अधिकतर सामान्य मानसिक परीक्षा या फिर दी गई परिस्थिति में सही और उचित प्रति उत्तर के द्वारा जांचा जाता है। निम्न उपवर्ग में दो मुख्य महत्वपूर्ण जांचों की चर्चा की गई है।

रचनात्मकता की टौरेंस जांच

रचनात्मकता की टौरेंस जांच को टौरेंस के द्वारा विकसित किया गया था (1959, 1962)। इस जांच में वर्ग होते हैं–मौखिक और सांकेतिक। मौखिक वर्ग में (i) पूछना और अनुमान लगाना (ii) उत्पाद की उन्नति (iii) असामान्य प्रयोग शामिल हैं। पूछने और अनुमान लगाने वाले वर्ग में, परीक्षार्थी को एक चित्र दिया जाता है और चित्र में दिखाए गए दृश्य के पीछे कारण की व्याख्या करने को और इससे आगे क्या हो सकता है, यह बताने के लिए कहा जाता है। उत्पाद उन्नति वर्ग में, परीक्षार्थी को खिलौने का एक चित्र दिया जाता है और उससे खेलने में और अधिक आनंद आए, ऐसे सुझाव देने के लिए कहा जाता है, और असामान्य प्रयोगों के वर्ग में, परीक्षार्थी को एक सामान्य वस्तु के उतने प्रयोग बताने के लिए कहा जाता है जितना कि उससे वह कर सकती/सकता है। सांकेतिक वर्ग में परीक्षार्थी को एक वस्तु प्रदर्शित करते हुए एक चित्र बनाने और एक चित्र के साथ रुचिपूर्ण तथा उत्साहवर्धक कहानी कहने के लिए कहा जाता है। सांकेतिक वर्ग का प्रत्येक उपवर्ग परीक्षार्थी को नई शुरुआत करने के लिए कुछ देता है। उदाहरण के लिए, उसे एक वृत्त दिया जा सकता है जिसमें प्रत्येक आकृति के मुख्य भाग के रूप में वृत्त के साथ संभावित अधिक से अधिक आकृति बनाने का आदेश दिया जा सकता है। टौरेंस जांच छोटे बच्चों और युवा दोनों पर किया जा सकता है। यह जांच व्यक्तिगत और मौखिक रूप से चौथे ग्रेड के बच्चों पर किया जाता है। इस जांच के आधार पर, प्रत्येक परीक्षार्थी को तीन स्कोर दिए जाते हैं– प्रवाह (जो कि स्वीकार की जा सकने वाली कुल उत्तर की संख्या को दर्शाती है, लचकता (जो कि परीक्षार्थी द्वारा प्रयोग किए गए पुस्तिका के वर्ग को दर्शाती है) और वास्तविकता (जो कि अक्सर दिए जाने वाले उत्तर की सूची में नहीं पाए जाने वाले उत्तर की संख्या को दर्शाती है)। इसके लिए कोई नियम नहीं

है और इसलिए प्रत्येक परीक्षार्थियों के कुल स्कोर को रचनात्मक उपलब्धि के एक सामान्य मापदंड में आकलन किया जाता है।

रिमोट से जुड़ी जांच (रैट)

टिप्पणी

रिमोट से जुड़ी जांच रचनात्मकता की एक अन्य जांच है, जिसकी खोज मैडनिक एण्ड मैडनिक ने 1971 में की थी। यह जांच हाईस्कूल के छात्रों के लिए है और इसमें चालीस पद शामिल हैं। इस जांच के चरण ऐसे हैं जिसमें परीक्षार्थी के सामने तीन शब्द दिए जाते हैं और उन्हें ऐसा चौथा शब्द देने के लिए कहा जाता है जो प्रत्येक तीन शब्दों से संबंधित हो। उन तीन शब्दों को रिमोट साहचर्य समूह दर्शाने के लिए तथा चौथे शब्द को मध्यवर्ती लिंक समझा जाता है। प्रत्येक विषय के लिए एक मिनट का समय दिया जाता है और इस प्रकार पूरी जांच में चालीस मिनट लगते हैं।

रैट की गंभीर आलोचना यह है कि इसकी वैधता को स्थापित नहीं किया गया है। वैधता के अभाव में वर्दैन और क्लार्क (1971) ने तर्क दिया कि रैट रचनात्मक उपलब्धि के मापदंड की अपेक्षा भाषा संरचना की संवेदनशीलता का बेहतर मापदंड था।

बुद्धिमता और रचनात्मकता काफी संबंधित हैं। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति रचनात्मक नहीं हो सकता है, लेकिन प्रत्येक रचनात्मक व्यक्ति बुद्धिमान होता है। बुद्धिमानी में निश्चित मानसिक प्रक्रियाएं होती हैं जो कि किसी व्यक्ति के बुद्धिमत क्रियाकलाप को तीन प्रकार से प्रभावित करती हैं–

मौलिक – इसका संदर्भ विश्लेषणात्मक सोच से है।

अनुभवी – इसका संदर्भ रचनात्मक सोच से है।

सांदर्भिक – इसका संदर्भ शहरी समस्याओं से परिचय से है। शहरी समस्याओं से परिचित व्यक्ति दिनचर्चा के मामलों से निपटने में कुशल होते हैं और जानते हैं कि वातावरण का अपने फायदे के लिए कैसे बेहतर प्रयोग किया जाए।

बुद्धिमानी के ये तीन पहलू किसी व्यक्ति के प्रदर्शन को शासित एवं निश्चित करते हैं।

शब्दकोष के अनुसार, बुद्धिमानी "ज्ञान हासिल करने और लागू करने की क्षमता है"। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा अपने सिद्धांत के अनुसार बुद्धिमानी की अनेक परिभाषाएं दी गई हैं।

अनेक परिभाषाओं और उनकी व्याख्याओं से असंतुष्ट होकर, बोरिंग ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है," बुद्धिमान वह है जो कि बुद्धिमानी की जांच की जांच करता है"। सभी परिभाषाओं को वेरनॉन और फ्रिमैन ने व्यवस्थित किया है। इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गई बुद्धिमानी की परिभाषाओं के वर्गीकरण की आइए समीक्षा करते हैं। वेरनॉन ने परिभाषाओं को तीन विस्तृत वर्गों में सूचीबद्ध किया है जैसे कि जीव वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और क्रियाशील। फ्रिमैन ने भी बुद्धिमानी की परिभाषाओं को तीन वर्गों में सूचीबद्ध किया है लेकिन इसका प्रस्ताव वेरनॉन से भिन्न है।

टिप्पणी

3.4.2 शिक्षार्थियों में रचनात्मकता को बढ़ावा देने की रणनीतियां

गुलफोर्ड (1959) के अनुसार, रचनात्मक सोच का अर्थ भिन्न सोच होता है और अरचनात्मक सोच का अर्थ अभिसारी सोच होता है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा।

मान लीजिए एक शिक्षक जंगलों के बारे में पढ़ा रहा है। वह लोगों को जंगल से मिलने वाले विभिन्न लाभों के बारे में पूछ सकता है। यहां भिन्न सोच की आवश्यकता है। शिक्षक यहां किसी विशेष लाभ के बारे में नहीं पूछ रहा है बल्कि विभिन्न लाभों के बारे में पूछ रहा है। छात्र अनेक लाभों के बारे में सोच सकते हैं।

प्राथमिक कक्षा के लिए तैयार किए गए पाठ्क्रम में, एक बच्चे को अलग–अलग समय में विभिन्न प्रकार की भूमिकाएं निभाने को कहा जा सकता है जैसे कि हास्यास्पद भूमिका, राक्षस की भूमिका, राजा की भूमिका आदि। इससे उसकी रचनात्मकता को बढ़ावा मिलेगा।

नीचे दिया गया दृश्य भिन्न सोच और अभिसारी सोच के बीच अन्तर को स्पष्ट करेगा।

सोचने की प्रक्रिया की समीक्षा

प्रेरणा	अनुभूति	अवधारणा	गणना	सोचना
अभिसारी				भिन्न
बुद्धिमता				रचनात्मकता
प्रकाश डालना	प्रवाह	लोच	मौलिकता	

रचनात्मकता और बुद्धिमता

जे.पी. गुलफोर्ड ने 'भिन्न सोच' (रचनात्मक प्रक्रिया) और 'अभिसारी सोच' (जो ज्ञान को प्रदर्शित करता है) की बौद्धिक संक्रिया का स्पष्ट रूप से अंतर बताया है। उनके अनुसार, हर बुद्धिमान व्यक्ति रचनाकार नहीं हो सकता है लेकिन अधिकतर रचनात्मक व्यक्तियों के पास ज्ञान की महान डिग्री होती है।

काफी सारे सह–संबंधीय अध्ययन दर्शाते हैं कि ज्ञान और रचनात्मकता एक निश्चित सीमा तक साथ–साथ आगे बढ़ते हैं और उस सीमा के बाद अलग हो जाते हैं। हालांकि यह समझना गलत होगा कि बुद्धिमता और रचनात्मकता दो अलग–अलग मूल्य हैं या फिर यह कि एक हमेशा दूसरे की कीमत पर विकसित होता है।

यह पाया जाता है कि जहां बुद्धिमता और रचनात्मकता एक–दूसरे से सकारात्मक रूप से संबंधित हैं वहीं इन दोनों के बीच का संबंध पूर्णतः रेखागत नहीं है।

अत्यधिक बुद्धिमान और रचनात्मक छात्रों की उपलब्धि और पृष्ठभूमि में अन्तरः गैटजैल्स जैकसन के शिकागो के एक निजी स्कूल के छात्रों पर किए गए अनुसंधान से पता चलता है कि स्टैंडर्ड अचीवमेंट टेस्ट के आकलन में दो समूहों जैसे

टिप्पणी

कि रचनात्मक और बुद्धिमान, के बच्चों ने पढ़ाई में समान रूप से अच्छा प्रदर्शन किया था। उच्च स्तर के रचनात्मक छात्र कम पढ़े–लिखे घरों से आते थे और अपनी मां से उन्हें बहुत ज्यादा आजादी प्राप्त होती थी।

इन अन्तरों का एक वाक्य में सारांश निकाला जा सकता है। "ज्यादा आईक्यू वाले बच्चे सुरक्षा की उत्सुकता वाले और प्रसन्नता को प्राथमिकता देते देखे जाते हैं, जबकि ज्यादा रचनात्मकता वाले बच्चे विकास की उत्सुकता और प्रसन्नता को प्राथमिकता देते दिखते हैं।"

रचनात्मकता और आयु

लेहमान ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि आधुनिक काल में हालांकि कुछ उत्कृष्ट रचनाएं पूरी की गई हैं, तीसरी सदी में उत्कृष्ट रचना सामान्यतया तीव्र गति से ऊंचाई या ऊंचाई की चोटी पर पहुंचती है और उसके बाद धीरे–धीरे नीचे की तरफ कम होती जाती है। लेहमान ने यह भी अंकित किया कि काल के अलावा भी कई सामाजिक, भावनात्मक और भौतिक कारक हैं जो रचनात्मकता की गति को धीमा करते हैं।

रचनात्मकता और मानसिक योग्यता : गुलफोर्ड ने निम्न मानसिक योग्याताओं का उल्लेख किया है:

1. प्रवाह (बड़े विचार देने की योग्यता)
2. लचीलापन (विभिन्न प्रकार के विचार और प्रस्ताव देने की क्षमता)
3. वास्तविकता (असामान्य प्रतिक्रियाएं देने की क्षमता)
4. पुनर्परिभाषित करने (आम तरीके से अलग हटकर परिभाषित करने या सोचने) की योग्यता
5. समस्याओं के प्रति संवेदनशील (कठिनाइयों का मूल्यांकन करने की योग्यता)

बच्चों में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने में शिक्षक और स्कूल की भूमिका

वास्तव में स्कूल वह उचित स्थान है जहां बच्चों में रचनात्मकता के मूल आधार के विकास के लिए व्यवस्थित प्रयास करना चाहिए। उनके बीच रचनात्मकता का माहौल उत्पन्न करने के लिए आवश्यक प्रयास करने चाहिए। रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने के कुछ उपयोगी तरीके निम्न हैं:

1. रचनात्मक बच्चे की पहचान करना : रचनात्मक बच्चे की पहचान के लिए जांच तकनीक और बिना जांच तकनीक दोनों का प्रयोग किया जा सकता है। गुलफोर्ड और मेरीफिल्ड ने जांच तकनीक का आविष्कार किया है जो प्रवाह, लचीलापन, वास्तविकता, पुनर्परिभाषा और समस्या के प्रति संवेदनशीलता का आकलन करती है।

(क) शब्दों से जुड़ी जांचें – छात्रों को विभिन्न वर्गों की उतनी परिभाषा और संख्या देने के लिए कहा जाता है जिसमें उन्हें वर्गीकृत किया जा सकता है।

टिप्पणी

(ख) वस्तुओं के प्रयोगों से जांचें – एक छात्र को सामान्य वस्तु के लिए उतने उपयोग बताने के लिए कहा जाता है जितने कि उस वस्तु से वह कर सकता है।

(ग) छिपी हुई आकृतियों से जांचें– एक छात्र को उसके समक्ष साधारण तरीके से रखे गए कार्ड में से और अधिक जटिल आकृति और आकार खोजने के लिए कहा जाता है।

(घ) तीन विभिन्न समापन– एक छात्र को छोटी सी अधूरी कहानी के लिए तीन अलग–अलग अंत बताने के लिए कहा जाता है।

(ङ) समस्याओं का निर्माण करना– एक छात्र को उतने अधिक सवालों को पूरा करने या बनाने के लिए कहा जाता है जितना कि वह एक जटिल अनुच्छेद में दी गई जानकारी के आधार पर कर सकता है।

इन सबके अलावा, रचनात्मक सोच की मिनीसोटा जांचों में सांकेतिक कार्य जैसे कि चित्र बनाना, रचनात्मक डिजाइन, गोला और वर्ग आदि शामिल होते हैं और टौरेंस की जांच सूची जिसमें 84 गुण हैं, बच्चों में रचनात्मकता की पहचान करने के लिए वह भी काफी उपयोगी है।

1. वह कारक जो स्कूल में बच्चों की रचनात्मकता के अवरोधक हैं : वर्तमान में पढ़ाने का पाठ्यक्रम और तरीका सख्त और परंपरागत है। वर्तमान शिक्षण प्रणाली ज्ञानार्जन को प्रोत्साहित करती है और रट कर याद करने पर बल देती है। यह बच्चों को सोचने और अपनी रचनात्मकता का प्रयोग करने के लिए मुश्किल से प्रोत्साहित करती है। स्कूल की बहुत सारी गतिविधियां और पाठ्यक्रम सामान्यतः शिक्षक पर केंद्रित होते हैं।

2. रचनात्मकता का विकास करने की रणनीति : अक्सर यह कहा गया है कि रचनात्मकता को पहचानने और जन्म से ही गाइड करने की आवश्यकता होती है। अनुसंधान के परिणाम सलाह देते हैं कि रचनात्मकता के विकास को अवसर पर नहीं छोड़ा जा सकता है। रचनात्मकता एक ऐसे वातावरण में फल–फूल सकती है जिसमें स्वतंत्र और स्वच्छन्द विचारों की कीमत हो।

3. रचनात्मक बच्चों की शिक्षा के लिए कार्यक्रम के प्रकार : रचनात्मक बच्चों की शिक्षा और मार्गदर्शन के लिए निम्न कार्यक्रम हैं–

- स्कूल में रचनात्मक बच्चों की पहचान करना।
- रचनात्मक प्रतिभा के मार्गदर्शन के लिए सामान्य और विशेष उद्देश्य बनाना।
- पढ़ाई के लिए उचित वातावरण उपलब्ध कराना।
- उन बच्चों में रचनात्मकता का प्रेरित करना जो इसे दर्शाते नहीं हैं।

टिप्पणी

4. क्लासरूम में रचनात्मक पढ़ाई का माहौल और अनुभव प्रदान करना : बच्चों में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षकों को निम्न दिए गए मार्गदर्शनों का पालन करना चाहिए–

- छात्रों को भिन्न समीक्षक की तरह सीखने के लिए प्रेरित करना।
- छात्रों को रचनात्मक व्यक्तियों का अनुकरण करने के लिए प्रेरित करना।
- छात्रों को उत्साह पूर्ण अनुभव प्रदान करना।
- एक सुरक्षित, आज्ञात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना।
- छात्रों के विचारों को समर्थ आज्ञा के लिए समीक्षा और परामर्श के जरिए विकसित करना।
- प्रेरणा के विकास और भावनात्मक डर को जीतने के लिए आवश्यक मार्गदर्शन और सलाह देना ।
- छात्रों को असमान्य प्रश्नों को पूछने की अनुमति देना।
- छात्रों की कल्पना और असमान्य विचारों को प्रोत्साहित करें।
- छात्रों को आश्वासन दें कि उनके विचारों का मूल्य है।
- सोच में वास्तविकता लाएं।
- छात्रों को स्वयं सीखने की पहल करने के लिए अवसर दें।
- ऐसी सामग्री दें जिससे बच्चों में कल्पना का विकास हो।
- चुनौतीपूर्ण एवं विचार करने वाले प्रश्नों को पूछें।
- बच्चों या छात्रों में रचनात्मकता बढ़ाने के लिए सजा से अधिक इनाम मददगार होते हैं।
- उन पर प्यार बरसाएं और उन्हें यह मालूम होने दें।
- क्रियाकलाप जैसे कि नाटक, नृत्य, गाना आदि प्रदान करें।
- वाद–विवाद, चर्चा, प्रश्नोत्तर आदि को बढ़ावा देना।
- क्लासरूम में वाकपटुता तथा हाजिरजवाबी दिखाएं।
- उन्हें गहन एवं व्यापक अध्ययन करने के लिए प्रेरित करना।
- रचनात्मक व्यक्तित्वों के लैक्चरों का प्रबंधन करना।
- छात्रों को स्वयं की समीक्षा करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- खेल तकनीक का पालन करना।
- विचारावेश तकनीक का पालन करना।

टिप्पणी

रचनात्मकता का विकास करने की तकनीक

यह एक तकनीक है जो भिन्न सोच के महत्व पर बल देती है। एक समूह में किसी समस्या के संबोधन में विचारों की उत्पत्ति इसमें शामिल है। यह बच्चों को आक्रमण करने और एक समस्या को बिना किसी संकोच या रोक टोक के हल करने की अनुमति देता है। वास्तव में कहना है कि यह एक समस्या पर अनगिनत सम्भावित विचारों और समाधानों के जरिए हमला करना है।

इसकी शुरुआत के लिए, छात्रों को एक केंद्र दिया जा सकता है, उदाहरण के लिए एक निश्चित समस्या जैसे कि 'स्कूल में छात्रों द्वारा स्वयं संचालन,' 'देर से आने वालों की जांच करना', 'परीक्षा प्रणाली में बेहतरी', 'वार्षिक समारोह का आयोजन करना', आदि। उसके बाद छात्रों को सुझाव देने के लिए कहना। इस संदर्भ में, निम्न उपयोगी बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

- छात्रों को संभावित अधिक से अधिक विचार देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, हालांकि ये अस्वाभाविक हो सकते हैं।
- छात्रों को अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त करने की अनुमति होती है।
- छात्रों के विचारों की आलोचना नहीं होनी चाहिए।
- सह–छात्र द्वारा दिए गए विचार के आधार पर छात्रों को नए विचार बनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।
- सभी विचारों के मुख्य बिंदुओं को ब्लैकबोर्ड पर लिखा जाना चाहिए।
- अंत में, एक सार्थक समाधान खोजने की कोशिश करनी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

5. "रचनात्मकता का अर्थ है, नवीन पहचान की पूर्णतः या आंशिक कृत्ति।" यह किसका कथन है?
   (क) सी.ई. स्किन
   (ख) टौरेंस
   (ग) आर. स्टैगनर व टी.एफ. कारवोस्की
   (घ) इनमें से कोई नहीं
6. गुलफोर्ड ने यह कब कहा था कि मनुष्य के सभी गुणों में, उसकी रचनात्मक सोच में योगदान देने वाले गुण उसके विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण होते हैं?
   (क) 1970 (ख) 1980
   (ग) 1985 (घ) 1990

टिप्पणी

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (घ)
4. (ख)
5. (ग)
6. (ख)

3.6 सारांश

अभिप्रेरणा शिक्षण एवं अधिगम का एक आधार एवं केन्द्र बिन्दु है। कैली महोदय ने अभिप्रेरणा को अधिगम प्रक्रिया के कुशल एवं सुचारू रूप से व्यवस्था करने में एक केन्द्रीय कारक माना है। जैसे–अभिप्रेरणा अधिगम का अवश्य अंग नहीं है। परन्तु सहायक अंग है सभी प्रकार के अधिगमों में किसी न किसी प्रकार का अभिप्रेरक आवश्यक होता है। गेट्स (Gates) के अनुसार, ''मौलिक रूप से अनुप्रेरित सीखना जैसी कोई वस्तु नहीं है अभिप्रेरणा अधिगम या सीखने की अनिवार्य स्थिति है।"

अभिप्रेरणा का प्रयोग छात्रों को ध्यान (Attention) में रखकर किया जाता है। छात्रों का ध्यान कुछ वस्तुओं, लोगों, स्वयं के विचारों तथा संवेगों के ओर निर्देशित किया जा सकता है। ध्यान देने का अर्थ है छात्रों को मानसिक क्रियाओं में व्यस्त रखना। शिक्षक छात्रों को अभिप्रेरित करके उनका ध्यान पाठ्यवस्तु पर केन्द्रित करने में सहायता कर सकता है। इसके अलावा अभिप्रेरकों द्वारा छात्रों का मानसिक विकास, सामाजिक गुणों का विकास, चारित्रिक विकास आदि के लिए छात्रों को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरकों का बड़ा महत्व है। साथ ही शिक्षक का कक्षा शिक्षण में अभिप्रेरणा का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। वास्तव में शिक्षा की समस्या छात्र को अभिप्रेरणा प्रदान करने की ही समस्या है। छात्र को इस प्रकार अभिप्रेरित किया जाये कि वह स्वयं सीखने के लिये अभिप्रेरित हो जाये। इसके लिए शिक्षक को छात्रों का परिपक्वता, उनके लक्ष्य एवं आवश्यकतायें, पाठ्यवस्तु अधिगम का स्वरूप एवं बाल मनोविज्ञान आदि बातों का अनुभव एवं ज्ञान होता है।

सामान्य रूप से, बुद्धिमत्ता अर्थात वह तरीका जिसके द्वारा एक व्यक्ति तथ्यों एवं परिस्थितियों के साथ बरतता है। बुद्धिमत्ता उद्देश्यपूर्ण रूप से कार्य करने, तर्कसंगत ढंग से विचारने तथा परिवेश के साथ प्रभावकारी ढंग से बरतने की एक व्यक्ति की समग्र या वैश्विक क्षमता है। प्राध्यापक आर. आर. कुमरिया के अनुसार, ''यह विभिन्न नामों एवं श्रेणियों में एक समान ही है– चाहे आप इसे व्यावहारिक ज्ञान कहें इसे सामान्य ज्ञान कहें, या फिर प्रवीणता कहें।''

टिप्पणी

राजसी प्रवृत्ति के अनुसार, बुद्धिमत्ता एक सामंजस्यता के रूप में मानी जाती है जो कि किसी व्यक्ति को परिवर्तनीय परिवेश के साथ स्वयं का सामंजस्य बैठाने के योग्य बनाती है। यह एक आम मत है, जो बुद्धिमत्ता को एक एकल (राजसी) शक्ति समझता है, जो व्यक्ति की किसी बौद्धिक उद्यम को करने में उसकी उपलब्धि के स्तर को निर्धारित करता है। यही जन्मजात सर्वांगीण मानसिक दक्षता बुद्धिमत्ता का एक प्रतीक है। यही वजह है, अगर न्यूटन ने अपने ध्यान को हटाकर काव्य की तरफ कर लिया होता तो, वह एक अच्छे कवि भी हो सकते थे।

बहु–बुद्धि का सिद्धांत हावर्ड गार्डनर (Howard Gardner) के द्वारा प्रस्तुत किया गया। उनके अनुसार, बुद्धि कोई एक तत्व नहीं है अपितु कई विभिन्न प्रकार की बुद्धियों का अस्तित्व होता है। प्रत्येक बुद्धि एक दूसरे में स्वतंत्र रहकर कार्य करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति में किसी एक बुद्धि की मात्रा अधिक है तो यह जरूरी नहीं कि उस व्यक्ति में किसी अन्य प्रकार की बुद्धि की मात्रा अधिक होगी, कम होगी या कितनी होगी।

शिक्षण की अन्तिम अवस्था मूल्यांकन से सबंधित है। इस अवस्था में शिक्षण की वो सभी क्रियाएं सम्मिलित होती हैं, जो छात्रों की निष्पत्तियों के मूल्यांकन तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के निर्णय के संबंध में प्रयुक्त की जाती है। शिक्षण के अन्त में छात्रों के व्यवहार परिवर्तन का मापन किया जाता है। शिक्षक छात्रों के मापन के लिए उनके मौखिक व लिखित प्रश्न पूछता है ताकि छात्रों की उपलब्धियों का सही मूल्यांकन कर सके।

रचनात्मकता एक व्यक्ति का बहुत ही अमूल्य और अद्वितीय गुण है जो उसे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में जटिल समस्याओं का समाधान करने के योग्य बनाता है। 1980 में गुलफोर्ड ने कहा था कि मनुष्य के सभी गुणों में, उसकी रचनात्मक सोच में योगदान देने वाले गुण उसकी अच्छाई और विकास के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। न्यूटन ने बहुत ही कम उम्र में गुरुत्वाकर्षण और गति के नियमों का प्रतिपादन किया था। गैलीलियो और आइंस्टीन की प्रतिभा को बचपन में ही पहचान लिया गया था। इसलिए, रचनात्मकता के उपहार को बचपन से ही विकसित करने और युवा होने तक बनाए रखने की आवश्यकता होती है।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **अभिप्रेरणा** – किसी कार्य को आरंभ करने, जारी रखने और नियमित बनाने की प्रक्रिया अभिप्रेरणा कहलाती है।
- **धनात्मक प्रोत्साहन** – जिन्हें व्यक्ति स्वेच्छा से प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है, धनात्मक प्रोत्साहन होते हैं।
- **उपलब्धि अभिप्रेरक** – किसी क्षेत्र विशेष में अधिक से अधिक सफलता प्राप्ति के लिए उसी के अनुरूप कार्य करने की प्रवृत्ति उपलब्धि अभिप्रेरक होती है।

टिप्पणी

- **मानक संदर्भित मूल्यांकन** – जो परीक्षण परंपरागत ढंग से शिक्षक द्वारा निर्मित किए जाते हैं उन्हें मानक संदर्भित मूल्यांकन कहा जाता है।
- **रचनात्मकता** – रचनात्मकता का अर्थ है नवीन पहचान की पूर्णतः या आंशिक वृत्ति।

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अभिप्रेरणा से क्या अभिप्राय है? परिभाषित कीजिए।
2. बुद्धिमता से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. अधिगम में सहयोग और प्रतिस्पर्धा की क्या भूमिका है? बताइए।
4. रचनात्मकता का अर्थ बताते हुए उसकी परिभाषा लिखिए।
5. आंतरिक और बाह्य अभिप्रेरणा में क्या अंतर है? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अभिप्रेरणा की अवधारणा को विस्तार से समझाइए।
2. थर्स्टन के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उस पर अपनी टिप्पणी लिखिए।
3. बुद्धिमत्ता की अवधारणा स्पष्ट करते हुए उसके सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।
4. रचनात्मकता को प्रभावित करने वाले कारकों को वर्णित करते हुए रचनात्मकता की अवधारणा को समझाइए।
5. निम्न पर टिप्पणी कीजिए–
   (क) शिक्षण अधिगम के लिए आकलन
   (ख) रचनात्मकता एवं बुद्धिमता

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

ओर्मरॉड, जीन एलिस, *ह्यूमैन लर्निंग : थिअरीज, प्रिंसिप्ल्स एंड एजुकेशन ऐप्लिकेशंस,* न्यू यॉर्क : मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी।

सैंट्रॉक, जॉन डब्ल्यू., 2001, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* न्यू यॉर्क : मैकग्रॉ हिल्स।

अनीता ई., 1998, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* मेसाच्युसेट्स : एलिन एंड बेकन।

ड्रिस्कॉल, एम.पी., 2005, *साइकॉलॉजी ऑफ लर्निंग फॉर इन्स्ट्रक्शन,* टोरंटो : पीयर्सन।

इकाई 4 अधिगम की विविधता और शिक्षण

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 कक्षा के अंदर वैयक्तिक अंतर और अनौपचारिक व्यवस्था
  4.2.1 सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर शिक्षार्थियों में विविधता
  4.2.2 शिक्षार्थियों की मातृभाषा और अनुदेशन की भाषा
4.3 छात्रों की शिक्षण शैली और सीखने की शैली के संदर्भ में शिक्षक की जटिल भूमिका
  4.3.1 शिक्षक के निजी और व्यावसायिक गुण
  4.3.2 शिक्षण अध्ययन में शिक्षक की ज्ञान–संचारक, प्रतिमान, सुविधाकारक, वार्ताकारक एवं सह–शिक्षार्थी के रूप में भूमिका
4.4 शिक्षक केंद्रित शिक्षण और शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षण के दृष्टिकोण
4.5 वर्तमान शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण और प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग
  4.5.1 वर्तमान शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का परिचय
  4.5.2 प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

प्रकृति का नियम है कि सम्पूर्ण संसार में कोई भी दो व्यक्ति पूर्णतया एक जैसे नहीं हो सकते उनमें कुछ न कुछ भिन्नता (विविधता) अवश्य होगी। यहां तक कि जुड़वां बच्चे शक्ल–सूरत से तो हू–ब–हू एक दिख सकते हैं लेकिन उनके स्वभाव, बुद्धि, शारीरिक मानसिक संवेगात्मक विकास में पर्याप्त भिन्नता होती है। ये विभिन्नताएं कई प्रकार की हो सकती हैं। रंग, रूप, आकार, बुद्धि आदि अनेक बातें वैयक्तिक भिन्नता को स्पष्ट करने में सहायक होती हैं। वर्तमान युग में वैयक्तिक विभिन्नताओं का बहुत महत्व है तथा इस प्रत्यय का सबसे पहले प्रयोग फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक गाल्टन ने किया।

हमारे विद्यालयों में छात्र व्यापक रूप से क्षमताओं और अभिरुचियों में भिन्न होते हैं फिर भी हम उनके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे वे सभी समान हैं। शरीर के रूप–रंग आकार, कार्य, गति, बुद्धि, ज्ञान, उपलब्धि, रुचि, अभिरुचि आदि लक्षणों में पायी जाने वाली भिन्नता को वैयक्तिक भिन्नता या विविधता कहा जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण सबसे प्रमुख गतिविधि है। शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है जो प्राचीनकाल से अनौपचारिक रूप से चली आ रही है। शिक्षण शब्द शिक्षा से बना है जिसका अर्थ है शिक्षा प्रदान करना। शिक्षण की प्रक्रिया मानव व्यवहार को परिवर्तित करती है अर्थात् शिक्षण का उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन है। शिक्षक जब सुनिश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कक्षा में बालकों को पढ़ाता है तो वह शिक्षण सार्थक है।

टिप्पणी

प्रस्तुत इकाई में अधिगम की विविधता और शिक्षण के अंतर्गत कक्षा में वैयक्तिक अंतर एवं अनौपचारिक व्यवस्था, छात्रों की शिक्षण शैली और सीखने की शैली के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका, शिक्षक व शिक्षार्थी केंद्रित दृष्टिकोण तथा वर्तमान शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग जैसे तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कक्षा के अंदर वैयक्तिक अंतर और अनौपचारिक व्यवस्था को समझ पाएंगे;
- छात्रों की शिक्षण शैली के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका को जान पाएंगे;
- शिक्षक और शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षण के दृष्टिकोणों से अवगत हो पाएंगे;
- वर्तमान में शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के बारे में जान पाएंगे;
- प्रवेश परीक्षाओं में कोचिंग संस्थानों की महत्ता को समझ पाएंगे।

4.2 कक्षा के अंदर वैयक्तिक अंतर और अनौपचारिक व्यवस्था

बालकों में शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक आदि कई प्रकार के भेद पाये जाते हैं। संसार में कोई भी व्यक्ति एक–दूसरे से मिलता जुलता नहीं होता है। शारीरिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि मानसिक दृष्टि से भी उनमें काफी भेद पाये जाते हैं। वास्तव में कोई भी दो व्यक्तियों का एक–सा न होना वैयक्तिक विविधता (विभिन्नता) कहलाता है। प्राचीनकाल एवं मध्यकाल में वैयक्तिक विभिन्नताओं का अर्थ किसी विषय पर अधिकार करने की योग्यता से लिया जाता था। वर्तमान काल में शैक्षिक योग्यता के अतिरिक्त वंशानुक्रम, वैयक्तिक विकास, मानसिक विकास, चारित्रिक विकास, रुचि, व्यक्तित्व की विशेषताओं एवं अन्य योग्यताओं पर भी ध्यान दिया जाता है। वास्तव में वैयक्तिक विभिन्नताएं परिणामात्मक तथ्य हैं और वे एक सातत्व के अनुसार वितरित होती हैं।

अगर हम 10 और 11 वर्ष के बच्चों के एक बड़े समूह की बुद्धि के बारे में विचार करें तो हमें पता चलेगा कि अधिकांश बच्चों की बुद्धि–लब्धि 90 से 110 के बीच में, कुछ बच्चों की बुद्धि–लबिध 110 से 120 तक (एक तरफ) समान संख्या में बच्चों की बुद्धिलब्धि 80 से 90 के बीच में दूसरी (दूसरी तरफ) मिलती है। बहुत कम संख्या में बुद्धिलब्धि 120 से 140 के बीच में (एक तरफ) समान संख्या में बच्चों की बुद्धि–लब्धि 60 से 80 तक (दूसरी तरफ) मिलती है। बुद्धि–लब्धि को हम निम्न वक्र रेखा–चित्र द्वारा भी प्रदर्शित कर सकते हैं–

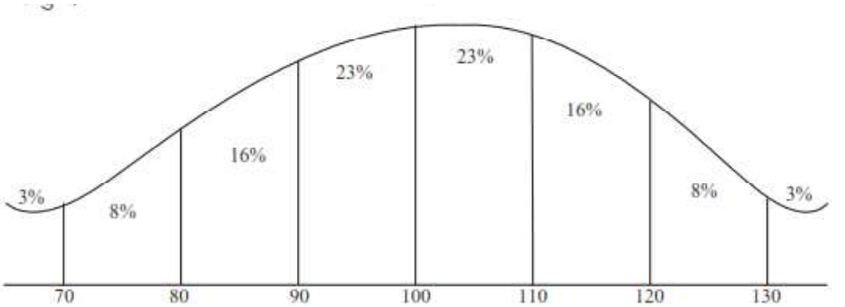

Distribution of I.Q. in the general population

आन्तरिक वैयक्तिक विभिन्नता –एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि व्यक्ति–व्यक्ति में ही अन्तर या विभिन्नताएं नहीं मिलती हैं, वरन् एक व्यक्ति में भी बहुत सी विभिन्नताएं देखने को मिलती हैं। राम और श्याम एक–दूसरे से शारीरिक शक्ति, बुद्धि–लब्धि, निष्पत्ति, रुचि एवं अन्य क्षमताओं में अंतर रखते हैं। साथ ही उनमें स्वयं में भी विभिन्नताएं मिलती हैं। श्याम की क्षमताएं एवं योग्यताएं समान रूप से विकसित नहीं है। वह खेलों में अच्छा है, परन्तु शैक्षिक योग्यताओं में निम्न है। शैक्षिक निष्पत्तियों में भी गणित में श्रेष्ठ है परन्तु भाषा में उसके अंक बहुत निम्न हैं। वह किसी एक विषय कला को पसंद करता है परन्तु इतिहास में बिल्कुल रुचि नहीं है। एक व्यक्ति के अन्दर पायी जाने वाली विभिन्नताएं आन्तरिक वैयक्तिक विभिन्नताएं कहलाती हैं।

वैयक्तिक विभिन्नताओं के प्रकार : वैयक्तिक विभिन्नताएं निम्नलिखित प्रकार की होती हैं–

1. **शारीरिक**–विभिन्नता शारीरिक दृष्टि से व्यक्तियों में अनेक प्रकार की विभिन्नताएं देखने को मिलती हैं। यह भिन्नता रंग, रूप, भार, कद शारीरिक गठन, यौन–भेद, शारीरिक परिपक्वता आदि के कारण होती है। कुछ व्यक्ति काले–गोरे, कुछ लम्बे, कुछ मोटे, कुछ नाटे, कुछ दुबले कुछ सुन्दर तथा कुछ कुरूप होते हैं।

   अध्यापक का कर्तव्य है कि बालकों द्वारा कार्य सम्पादन कराने में उनके शारीरिक विकास को ध्यान में रखें। बालकों में यदि शारीरिक भिन्नता अध्यमान से बहुत अधिक हो तो ऐसे बालकों को उचित निर्देशन दें।

2. **बुद्धि स्तर की विभिन्नताएं** –व्यक्ति मानसिक दृष्टि से भी भिन्न होते हैं। कोई व्यक्ति प्रतिभाशाली, कोई अधिक बुद्धिमान, कोई कम बुद्धिमान और कोई मूर्ख होता है। मानसिक विभिन्नता को समझने के लिए बुद्धि परीक्षाओं की सहायता से बुद्धि–लब्धि निकालते हैं। यह देखा गया कि इसके अनुसार व्यक्ति मूढ से लेकर अत्यंत प्रतिभाशाली तक होते हैं।

   एक अध्यापक को शिक्षा हर एक बालक की बौद्धिक योग्यता के अनुसार देनी चाहिए। बहुधा अध्यापक अपने शिक्षण को मध्य वर्ग के (बुद्धि–लब्धि के अनुसार) बालकों के अनुसार बना लेते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शेष बालकों की, जो उच्च या निम्न श्रेणी में आते हैं, उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। अतएव ऐसे बालक जो साधारण बालकों की श्रेणी में नहीं आते असफलता अनुभव करने लगते हैं।

टिप्पणी

यदि एक कक्षा की बुद्धि–लब्धि की माप की जाय तो अधिकतर बालकों की बुद्धि–लब्धि लगभग 100 होगी, कुछ की 130 या अधिक हो सकती है। कुछ की 80 या उससे भी कम। टरमैन के अनुसार जो वक्ररेखा इस प्रकार के माप द्वारा बनेगी, वह घंटाकार होगी।

3. **अभिवृत्ति में विभिन्नता** –अभिवृत्ति से तात्पर्य है एक सामान्य स्ववृत्ति जो एक समूह अथवा एक संस्था के प्रति होती है। व्यक्तियों के विभिन्न संस्था या समूह के सम्बन्ध में विभिन्न रुझान होते हैं। कुछ व्यक्ति शिक्षा या समाज के नियमों को अच्छा समझते हैं, कुछ बुरा।

   शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति बुद्धि के स्तर पर निर्भर नहीं है यह घर के वातावरण पर बहुत अधिक निर्भर रहती है। यदि माता–पिता के शिक्षा की ओर झुकाव अच्छे तथा उचित हैं तो बालकों के झुकाव भी उसी प्रकार विकसित होंगे। भारत में ग्रामवासी शिक्षा की ओर से उदासीन रहते हैं और यह उनकी अशिक्षा का एक बहुत बड़ा कारण है।

   बालकों की अधिकारियों के प्रति अभिवृत्ति विभिन्नताएं लिये होती है। यह अभिवृत्ति बाल्यकाल में ही बालक सीख लेता है। अधिकारियों के प्रति अभिवृत्ति में अन्तर घर के वातावरण के कारण भी हो सकता है।

   एक अच्छा शिक्षक उचित प्रकार से अभिवृत्ति को बालकों में विकसित कर सकता है।

4. **उपलब्धि में भिन्नता** –उपलब्धि परीक्षाओं द्वारा यह पता चलता है कि बालकों की ज्ञानोपार्जन क्षमता में भी विभिन्नता पाई जाती है। यह विभिन्नता गणित तथा अंग्रेजी पढ़ने में बहुत अधिक होती है।

   उपलब्धि में विभिन्नता उन बालकों में भी पाई जाती है जिनकी बुद्धि का स्तर समान है। ऐसा बुद्धि के विभिन्न खण्डों की योग्यता में विभिन्नता तथा पूर्व–अनुभव या निर्देशन या रुचि के कारण होता है।

   उपलब्धि की क्षमता में विभिन्नता होने के कारण एक अध्यापक को चाहिए कि वह शिक्षा देने में वैयक्तिक तथा कक्षा–शिक्षण विधियों के मिश्रण को अपनाएं विभिन्न बालकों को विभिन्न प्रकार के गृह–कार्य देने चाहिए और उन्हें विभिन्न क्रियाओं या कार्य–कलापों को करने को देना चाहिए।

   उपलब्धि यदि बौद्धिक योग्यतानुसार नहीं है तो शिक्षक को चाहिए कि बालक की कठिनाई को मालूम करे। बहुधा ऐसा रुचि की कमी के कारण या संवेगात्मक समस्याओं के कारण या अवसर न मिलने के कारण होता है।

   कुछ ऐसे भी बालक होते हैं जो अपनी बुद्धि–योग्यता से भी अधिक ज्ञानोपार्जन करने में सफल होते हैं। ये बालक पढ़ने में बहुत समय तथा शक्ति लगाते हैं और अधिक ज्ञानोपार्जन करने में सफल होते हैं। उनको ऐसा करने की प्रेरणा बहुधा अपने माता–पिता से मिलती है। कभी–कभी ऐसे बालक अधिक मेहनत करते हैं क्योंकि वे किसी और दिशा में अपनी कमी की पूर्ति करना चाहते है। यहां पर आइजक न्यूटन का उदाहरण उल्लेखनीय है। न्यूटन ने उस कमी की

पूर्ति करने के लिए, जो उन्हें अपने एक सहयोगी को, जो उदण्ड था, पीटने में असफलता के कारण अनुभव हुई, गणित की ओर ध्यान लगाया।

एक कुशल अध्यापक को चाहिए कि वह देखे किस प्रकार से अधिक ज्ञानोपार्जन करने वाला बालक असंतुष्टि की भावना से सदैव के लिए ओतप्रोत न हो जाये।

टिप्पणी

5. **व्यक्तित्व विभिन्नता** –प्रत्येक व्यक्ति और बालक के व्यक्तित्व में कुछ न कुछ विभिन्नता अवश्य पाई जाती है। कुछ लोग अन्तर्मुखी होते हैं और कुछ बहिर्मुखी। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मिलने पर उसकी योग्यता से प्रभावित हो या ना हो परन्तु उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह प्रभाव ऋणात्मक भी हो सकता है और धनात्मक भी हो सकता है।
6. **लिंग–विभिन्नता के कारण भेद** –स्त्री और पुरुषों में भी वैयक्तिक विभिन्नता देखने में आती है। स्त्रियां कोमलांगी होती है। परन्तु सीखने में बहुत से क्षेत्रों में बालक और बालिकाओं में बहुत अंतर नहीं होता है। लिंग सम्बन्धी अंतर के सम्बन्ध में किए गए अन्वेषण अभी विश्वासी परिणाम नहीं देते हैं। अतः इस सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता।

   वर्तमान बुद्धि–परीक्षणों के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि दोनों लिंगों के औसत अंक लगभग समान ही होंगे किन्तु यह भी देखा गया है कि विभिन्नताओं का फैलाव दोनों लिंगों में विभिन्न होता है। बुद्धि–परीक्षाओं पर कुल अंकों में जो दोनों लिंग प्राप्त करते हैं, यद्यपि समानता होती है किन्तु यह समानता परीक्षा के विभिन्न भागों पर ही हो ऐसा नहीं है। यह लगभग सामान्य रूप से देखा गया है कि भाषा भाग पर लड़कियों के प्राप्तांक लड़कों के प्राप्तांकों से अधिक होते हैं और लड़कों के प्राप्तांक गणित वाले भाग पर अधिक होते हैं। स्मृति के परीक्षणों में लड़कियां अधिक प्राप्तांक प्राप्त करती हैं।

   इसी प्रकार सामान्य ज्ञानोपर्जन में प्राथमिक स्तर पर अधिकतर यही पाया गया है कि बालिकाओं का स्तर बालकों से अधिक उच्च था। इस सम्बन्ध में फिफर का अध्ययन महत्वपूर्ण है। पॉली का तो यह कहना है कि बालकों को शिक्षा बालिकाओं की शिक्षा प्रारम्भ करने के 6 माह उपरान्त प्रारम्भ करनी चाहिए। बालकों के निम्न स्तर का कारण उनमें हकलाना तथा अन्य दोषों का होना दिया जाता है।

   बालिकाओं की श्रेष्ठता का कारण वास्तव में उनका भाषा पर अधिकार होता है। वह बालकों से भाषा में श्रेष्ठता बहुत कम आयु से प्रकट करने लगती हैं। वह उससे पहले बातें करने लगती है और स्पष्ट बोलती है। विद्यालय में आने पर बालकों का विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान अधिक श्रेष्ठ दिखाई पड़ता है। शीघ्र ही वह गणित में भी श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते हैं।

   कार्टन के अध्ययन बताते हैं कि बालिकाओं को अध्यापक अपने परीक्षणों में उन प्राप्तांकों से अधिक अंक प्रदान करते हैं जो एक प्रमापीकरण किए हुए ज्ञानोपार्जन परीक्षण पर प्राप्त करेंगे। बालकों को अध्यापक अपने परीक्षणों में तुलनात्मक कम अंक प्रदान करते हैं। सोबेल महोदय के अनुसार दोनों लिंगों के

टिप्पणी

प्राथमिक स्तर पर अध्यापक बालिकाओं को ही अधिक अंक प्रदान करते हैं। माध्यमिक स्तर पर स्त्रियां तो सदैव बालिकाओं को ही अधिक अंक देती हैं, किन्तु पुरुषों के सम्बन्ध में प्रदत्त सामग्री इतनी निश्चित नहीं कि कुछ विश्वास के साथ कहा जा सके।

7. **गत्यात्मक योग्यताओं में विभिन्नता** – कुछ व्यक्ति किसी कार्य को अधिक कुशलता से करते हैं कुछ कम कुशलता से। इसका कारण इनमें गत्यात्मक योग्यताओं में विभिन्नता होती है। इस सम्बन्ध में क्रो व क्रो न लिखा है–''शारीरिक क्रियाओं में सफल होने की योग्यता में एक समूह के व्यक्तियों में भी बहुत अधिक विभिन्नता होती है।''

8. **जाति या राष्ट्र सम्बन्धी विभिन्नता** – जाति या राष्ट्र सम्बन्धी विभिन्नता के सम्बन्ध में किए गए अन्वेषक भी अभी अपूर्ण है। इस कारण विश्वासी रूप से इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकते। परन्तु फिर भी विभिन्न राष्ट्र के नागरिकों में विभिन्न प्रकार की योग्यताओं में विभिन्नता पाई जा सकती है।

9. **सामाजिक विभिन्नता** –व्यक्तियों में स्पष्ट रूप से सामाजिक विकास में विभिन्नता पाई जाती है। यह विभिन्नता जब बालक एक ही वर्ष का होता है तभी से दृष्टिगोचर होने लगती है। कुछ बालक इतने भीरु होते हैं कि जैसे ही किसी दूसरे परिवार का सदस्य आता है वे अपना मुंह छुपा लेते हैं परन्तु दूसरे प्रकार के बालक उसकी ओर बिना झिझक के बढ़ जाते हैं।

   वैयक्तिक बालक में चेहरे के भाव को समझने की योग्यता होती है। बालक पढ़ने में भी विभिन्नता प्रकट करते हैं। उनकी लड़ाइयां मौखिक गाली–गलौज से लेकर मारपीट, नोंच–खसोट, काटना आदि तक होती हैं। बालकों में अपने मित्र बनाने के सम्बन्ध में भी विभिन्नता पाई जाती है।

   मैरडिश के अध्ययन के आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि सामान्य रूप से उन परिवारों के बालक अधिक स्वस्थ एवं विकसित होते हैं तो सामाजिक स्तर से ऊंचे होते हैं। बहुत से शारीरिक दोष; जैसे–टेढ़े–मेढ़े दांत, लंगड़ाना, क्षय रोग इत्यादि; निम्न आय वाले परिवारों के बालकों में अधिक पाये जाते हैं।

   अच्छे परिवारों के बालक न केवल स्वास्थ्य में ही श्रेष्ठता लिए होते हैं वरन् बुद्धि एवं ज्ञानोपार्जन में भी उत्तम होते हैं। टरमैन व मौरिल के अनुसार जो बालक उच्च व्यवसाय वाले माता–पिता की सन्तान होते हैं, उनकी बुद्धिलब्धि 10 से 15 साल के बीच 118 होती है, जबकि क्लर्कों पेशे वाले समूह के बालकों की बुद्धि–लब्धि 107 होती है और मजदूरों के बालकों की सिर्फ 97।

   यहां तक यह कह देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि आर्थिक–सामाजिक स्तर तथा बुद्धि–लब्धि का सम्बन्ध तो है, किन्तु यह बहुत उच्च स्तर का नहीं है। सह–सम्बन्ध के आधार पर यह 3 या 4 ही पाया गया है। निम्न स्तर के आर्थिक एवं सामाजिक समूह में अनेक उच्च बुद्धि–लब्धि में बालक पाये जाते हैं और उच्च स्तर के आर्थिक एवं सामाजिक समूह में निम्न बुद्धि–लब्धि वाले बालक पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, क्योंकि साधारण आर्थिक, सामाजिक

समूह में व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है, इसलिए संख्या के आधार पर उच्च बुद्धि के बालकों की संख्या इस समूह में अधिक होगी।

एक और बात ध्यान देने की है कि उन परिवारों में जिनमें दो भाषाएं बोली जाती हैं या जिनके घर में बोली जाने वाली भाषा समाज में बोली जाने वाली भाषा से भिन्न होती है, के बालकों के प्राप्तांक निम्न होते हैं।

टिप्पणी

10. **विशिष्ट योग्यताओं में भिन्नता** –विशिष्ट योग्यताओं की दृष्टि से भी व्यक्तियों में भिन्नता पायी जाती है। कुछ बालक कला में तो कुछ विज्ञान में कुछ इतिहास में तो कुछ भूगोल में और कुछ गणित में अधिक योग्य होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि सभी व्यक्तियों में विशिष्ट योग्यताएं नहीं होती हैं और जिनमें होती हैं उनमें मात्रा में अंतर अवश्य होता है। उदाहरणार्थ, सभी खिलाड़ी एक स्तर के नहीं होते हैं, इसी प्रकार न तो सभी डॉक्टर एक जैसे होते हैं और न ही सभी अभियंता एक स्तर के होते हैं। व्यक्ति की विशिष्ट योग्यताओं को जानने के लिए विशिष्ट परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है।
11. **संवेगात्मक विभिन्नताएं** – संवेगात्मक विकास विभिन्न बालकों में विभिन्नता लिये हुए होता है जबकि यह भी सत्य है कि मोटे रूप से संवेगात्मक विशेषताएं बालकों में समान रूप से पाई जाती हैं। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोध का संवेग प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा अनुभव होता है। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति सरल और कुछ कठोर, कुछ दुखी, कुछ प्रसन्नचित रहते हैं। संयोगात्मक भिन्नताओं को संवेगात्मक परीक्षणों द्वारा मापा जा सकता है।

वैयक्तिक विभिन्नता के कारण

वैयक्तिक विभिन्नता के निम्न कारण हैं–

1. **वातावरण** (Environment)–बालक पर वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। बालक जैसे वातावरण में पलता है उसका व्यक्तित्व भी वैसा ही बनता है। दो जुड़वां बच्चों में से यदि एक का पालन पोषण झुग्गी–झोंपड़ी में हो और दूसरे का अमीर घटाने में तो दोनों के व्यक्तित्व में जमीन आसमान का अंतर दिखाई देगा। इसी प्रकार एक बालक को साधारण स्कूल में पढ़ाया जाए तथा दूसरे को कान्वेंट स्कूल में तो भी व्यक्तित्व में बहुत अंतर आयेगा। बालक पर सभी प्रकार के वातावरणों का प्रभाव पड़ता है। जैसे–आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक। इसीलिए ठण्डे वातावरण में रहने वाले लोग हृष्ट–पुष्ट, मेहनती तथा गोरे रंग के होते हैं जबकि गर्म वातावरण के लोग ठिगने, आलसी और काले रंग के होते हैं।
2. **वंशानुक्रम** (Heredity)–वंशानुक्रम वैयक्तिक विभिन्नता का प्रमुख कारण है। गर्भधान के समय ही वंशानुक्रम विशेषताएं बच्चे में प्रवेश कर जाती हैं। इन विशेषताओं में आधी मां के वेश से तथा आधी पिता के वेश से प्राप्त होती है। इसी प्रकार कुछ गुण दादी–दादा कुछ परबाबा–परदादी तथा कुछ परनाना–परनानी से प्राप्त होते हैं। इन सभी से कौन से गुण बालक को प्राप्त होंगे यह निश्चित नहीं होता। यह संयोग पर निर्भर करता है। वंशानुक्रम से बालक को गुण तथा अवगुण दोनों ही प्राप्त होते हैं इसलिए अच्छे मां–बाप की सन्तान भी अच्छी होती

टिप्पणी

है इसलिए रंग–रूप में भी बालक मां–बाप से मिलते हैं। मनोवैज्ञानिक मनन ने भी वंशानुक्रम को वैयक्तिक विभिन्नताओं के एक कारक के रूप में स्वीकार किया है। उनका विचार है–''हमारा सबका जीवन एक ही प्रकार से प्रारम्भ होता है फिर इसका क्या कारण है कि जैसे–जैसे हम बड़े होते जाते हैं हममें अंतर होता जाता है इसका कारण यह है कि हमारा सबका वंशानुक्रम भिन्न होता है।

3. **सृजनात्मक शक्ति** (Creative Power)–एडलर सृजनात्मकता को वैयक्तिक भिन्नताओं का मुख्य कारण मानता है। वह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वैयक्तिक भिन्नताओं के मुख्य कारक वंशानुक्र व वातावरण हैं, लेकिन वह इस बात का भी समर्थन करता है कि वैयक्तिक विकास में सृजनात्मकता एक विशेष भूमिका निभाती है। वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों ही व्यक्ति की सृजनात्मकता के विकास में योगदान देते हैं, लेकिन फिर भी जब किसी व्यक्ति में सृजनात्मकता विकसित हो जाती है तो यह स्वतंत्र रूप से कार्य करना आरम्भ कर देती है। वंशानुगत विशेषताओं, वातावरणीय परिस्थितियों तथा सृजनात्मकता के मध्य अन्तःक्रिया ये सब व्यक्ति की जीवनशैली का निर्माण करती हैं।

4. **जाति, प्रजाति व देश** (Caste, Race and Country)–जाति, प्रजाति एवं देश का भी वैयक्तिक विभिन्नताओं पर पर्याप्त असर पड़ता है, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि लोगों के आचार–विचार तथा रहन–सहन में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। इसी प्रकार एक क्षत्रिय युवक को साहसिक, कार्य करने अच्छे लगते हैं तो एक बनिये के पुत्र को व्यापार करना अच्छा लगता है। एक कायस्थ युवक बौद्धिक कार्य करने में रुचि रखता है। ठीक इसी प्रकार विभिन्न राष्ट्रों, चीन, भारत, अमेरिका, रूस आदि के लोगों में भी विभिन्नता आसानी से देखी जा सकती है। एक कश्मीरी एक गुजराती से बिल्कुल अलग दिखाई देगा।

5. **आयु एवं बुद्धि** (Age and intelligence)–बालक की आयु में वृद्धि होने के साथ–साथ उसका मानसिक, शारीरिक तथा संवेगात्मक विकास भी होता रहता है। इसी विकास के कारण उनमें वैयक्तिक भिन्नता आती रहती है। इसीलिए विभिन्न आय के बालकों में अंतर दिखाई देता है। इसी प्रकार बुद्धि के कारण भी बालकों में अंतर दिखाई देता है। कुछ बालक तेज बुद्धि के होते हैं, कुछ सामान्य बुद्धि के कुछ मंद बुद्धि के, अर्थात् सभी बालक समान बुद्धि के नहीं होते हैं। आयु में वृद्धि से बालक की रुचि तथा बुद्धि के अंतर बालक की शैक्षिक प्रगति में अंतर देखने को मिलता है।

6. **लिंग–भेद** (Sex-Differences)–लिंग–भेद के कारण लड़के–लड़कियों की शारीरिक बनावट में तो अंतर होता ही है। साथ ही उनके सोचने विचारने एवं कार्यशैली में भी अन्तर देखने को मिलता है। लड़कियां, लड़कों की तुलना में कम शक्तिशाली, स्नेहमयी, कोमल स्वभाव की लज्जाशील होती हैं जबकि लड़के साहसी, उदण्ड तथा कठोर स्वभाव के होते हैं, लड़कियों में सामान्य बुद्धि अधिक होती है जबकि लड़कों में विशिष्ट बुद्धि अधिक होती है। इसलिए लड़कियां जल्दी परिपक्व हो जाती हैं। लड़के देर से परिपक्व होते हैं।

टिप्पणी

वैयक्तिक विभिन्नताओं का शैक्षिक महत्व

वैयक्तिक विभिन्नताओं का शैक्षिक महत्व इस प्रकार है–

1. **कक्षा का वर्गीकरण** (Class Classification)–विद्यालय में प्रवेश लेने वाला प्रत्येक विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थी से पर्याप्त भिन्न होता है। अतः उनके सामाजिक विकास के लिये योग्यता के आधार पर उन्हें अलग–अलग सेक्शन में रखा जाये। इस विभाजन के आधार पर तीन प्रकार के वर्ग बन सकते हैं। तेज बुद्धि के बालक, सामान्य बुद्धि के बालक तथा मन्द बुद्धि के बालक। विद्यार्थियों के ये वर्ग उनके पिछली कक्षाओं के परिणाम के आधार पर भी बनाये जा सकते हैं। इन वर्गों में अध्यापक भी उसी श्रेणी में रखे जाने चाहिये।
2. **कक्षा का आकार** (Size of the Class)–आज कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक रखी जाती है जिससे अध्यापक सभी बालकों का ध्यान नहीं दे पाता और उनकी वैयक्तिक कठिनाइयों को भी हल नहीं कर पाता। इस दृष्टि से कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम रखी जाए ताकि अध्यापक प्रत्येक छात्र पर ध्यान दे सके तथा उसकी समस्याओं को हल कर सके। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि एक कक्षा में छात्रों की संख्या 20 से अधिक नहीं रखनी चाहिये।
3. **वैयक्तिक शिक्षण** (Individualized Instruction)–आज सभी विद्यालयों में सामूहिक शिक्षण की व्यवस्था है जो दोषपूर्ण है। मानसिक योग्यताओं में भिन्नता के कारण सभी छात्र इस व्यवस्था से लाभ नहीं उठा पाते। एक अध्यापक भी सामान्य छात्र को ध्यान में रखकर ही शिक्षण कार्य करता है जिससे तेज व मन्द बुद्धि बालकों को कोई लाभ नहीं होता। इसलिये प्रत्येक विद्यालय में वैयक्तिक शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये ताकि प्रत्येक छात्र को लाभ मिल सके। वैयक्तिक शिक्षण की व्यवस्था पर बल देते हुए क्रो एंड क्रो (Crow and Crow) ने लिखा है–''विद्यालय का यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक बालक के लिए उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था करे, भले ही वह अन्य सब बालकों से कितना ही भिन्न क्यों न हो। रॉस ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है–''कठिनाई का वास्तविक समाधान प्रकारों के अनुसार वर्गीकरण नहीं है वरन् वैयक्तिक शिक्षण है।''
4. **शारीरिक दोषों की ओर ध्यान** (Attention towards Physced Deptt)–एक समझदार और योग्य शिक्षक छात्रों के शारीरिक दोषों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण की व्यवस्था करता है। जो छात्र कम सुनते हैं या जिनकी दृष्टि कमजोर है या जो नाटे कद के हैं उन्हें शिक्षक कक्षा में आगे बैठाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्कूल में डॉक्टर की नियुक्ति की जाये जो प्रत्येक विद्यार्थी की नियमित रूप से जांच करे। कमजोर तथा अत्यन्त गरीब बालकों के लिये विश्राम के घंटे तथा नाश्ते की व्यवस्था की जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में स्किनर (Skinner) ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं–
   (i) जिन बालकों को कम सुनाई देता है, उन्हें कक्षा में सबसे आगे स्थान दिया जाये।
   (ii) निर्बल और कुपोषित बालकों के लिये विश्राम के घण्टे निश्चित किये जायें।
   (iii) प्रत्येक बालक की डाक्टरी जांच करायी जाये।

टिप्पणी

5. **लिंगभेद के अनुसार शिक्षा** (Sex-based Education)–लड़के तथा लड़कियां एक–दूसरे से भिन्न रुचियां तथा योग्यताएं रखते हैं। अतः इन्हीं के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिये। प्राइमरी स्तर तक लड़के–लड़कियां के लिए एक से विषय हो सकते हैं लेकिन माध्यमिक स्तर पर नहीं। उदाहरण के तौर पर लड़कियां भाषा, कला, संगीत, गृह विज्ञान जैसे विषयों में रुचि लेती हैं तो लड़के विज्ञान, गणित, दर्शन, तर्कशास्त्र आदि विषयों में रुचि रखते हैं। छात्रों पर विषय थोपने नहीं चाहिए बल्कि उन्हें उन्हीं विषयों के चयन की स्वतन्त्रता होनी चाहिये जिसमें उनकी रुचि हो।

6. **पाठ्यक्रम** (Curriculum)–पाठ्यक्रम में कठोरता नहीं होनी चाहिये बल्कि उसमें लचीलापन होना चाहिये। साथ ही पाठ्यक्रम में विषयों की इतनी भरमार होनी चाहिये ताकि छात्र अपनी रुचि के विषय को अपना सके। पाठ्यक्रम छात्र के मानसिक स्तर के अनुकूल बनाया जाना चाहिये, न तो अधिक सरल और न ही अधिक कठोर (जटिल)। ऐसा न होने पर मन्दबुद्धि बालक पिछड़ जाते हैं तथा मेधावी छात्र उद्दण्ड बन जाते हैं। इसके सम्बन्ध में स्किनर (Skinner) का विचार है–''बालकों की विभिन्नताओं के चाहे जो भी कारण हो वास्तविकता यह है कि विद्यालय को विभिन्न पाठ्यक्रमों के द्वारा उनका सामना करना चाहिए।''

7. **गृहकार्य** (Home Assignment)–शिक्षक की गृह कार्य देते समय भी वैयक्तिक भिन्नता का ध्यान रखना चाहिये। तीव्रबुद्धि बालकों को अधिक तथा कठिन कार्य देना चाहिये जबकि सामान्य तथा मन्द बुद्धि बालकों को उनकी मानसिक योग्यता के अनुसार कम तथा सरल कार्य देना चाहिये। ऐसा करने से भी छात्रों को लाभ पहुंचता है। गृहकार्य देते समय बच्चे की अवस्थाओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिये। जैसे–बाल्यावस्था में कम, किशोरावस्था में कुछ अधिक गृह कार्य तथा इससे अधिक उम्र के बालकों को स्व–अध्ययन के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये।

8. **शिक्षण–विधि** (Teaching-Mathods)–सभी छात्रों को एक ही शिक्षण विधि से नहीं पढ़ाया जा सकता। प्राचीन काल में गुरु अपने सभी विद्यार्थियों को एक ही ढंग से सामूहिक रूप से पढ़ाते थे। यदि किसी मन्द बुद्धि बालक को कोई बात समझ नहीं आती थी तो उसको पीटते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं है। मनोवैज्ञानिकों ने आधुनिकतम शिक्षण विधियों की खोज से शिक्षण कार्य को सरल बना दिया है। इसीलिए छोटे बालकों के लिये मोन्टेसरी तथा किण्डरगार्टन प्रणाली तथा किशोर विद्यार्थियों के लिए प्रोजेक्ट विधि तथा अनुदेशन प्रणाली को अपनाने की बात कही गई है।

9. **निर्देशन** (Guidance)–विद्यालय में प्रवेश लेने से पूर्व तथा विद्यालय छोड़ने के बाद बालक के सामने अनेक प्रकार की शैक्षिक, व्यावसायिक तथा वैयक्तिक समस्यायें आती हैं जिनका समाधान निर्देशन के माध्यम से आसानी से किया जा सकता है। वैयक्तिक भिन्नताओं के ज्ञान ने हमें यह समझने में मदद की है कि हमें छात्र की शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं, रूचियों, क्षमताओं, विशिष्ट योग्यताओं एवं अभियोग्यताओं आदि के सन्दर्भ में ही उसके हितार्थ विषयों व

क्षेत्र के चयन में मदद करनी चाहिये। इसी को हम शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन कहते हैं।

10. **सहायक सामग्री** (Teaching Aids)–हम इस तथ्य से भली–भांति अवगत हैं कि बच्चे एक जैसी शिक्षण सामग्री में रुचि नहीं लेते हैं। अतः यह आवश्यक है कि शैशवावस्था, बाल्यावस्था व किशोरावस्था में भिन्न प्रकार की शिक्षण सामग्री प्रयोग में लायी जाये। आज के समय में दृश्य–श्रव्य सामग्री जैसे–टेलीविजन, कम्प्यूटर, प्रक्षेपण आदि का अधिकांशतः प्रयोग किया जाता है लेकिन सभी बच्चे इनमें एक समान रुचि नहीं लेते। यही कारण है कि शिक्षक अपने शिक्षण को रुचिकर बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के चार्ट, मॉडलों, चित्रों व रेखाचित्रों का सहारा लेता है।

टिप्पणी

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि शिक्षा में वैयक्तिक विभिन्नताओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था करके ही बालकों के वैयक्तिक का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में स्किनर के विचार हैं–''यदि अध्यापक उस शिक्षा में सुधार करना चाहता है, जिसे सब बालक अपनी योग्यता का ध्यान किये बिना प्राप्त करते हैं तो उसके लिये वैयक्तिक विभिन्नताओं के स्वरूप का ज्ञान अनिवार्य है।

कक्षा में वैयक्तिक भिन्नताओं का समायोजन

आज के युग में हमारे देश में वैयक्तिक विभिन्नताओं के आधार पर सभी स्तरों के विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करना सम्भव नहीं है। यद्यपि कुछ स्कूल अन्धे, बहरे, गूंगे बालकों के लिये अलग–अलग प्रारम्भ किये जा चुके हैं जबकि अधिकांश बालक एक साथ सामान्य स्कूलों में ही शिक्षण ग्रहण करते हैं। ऐसी परिस्थिति में शिक्षकों को विशेष प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान करने की आवश्यकता होती है ताकि वे इन वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कर सकें। इस सन्दर्भ में यह जानना आवश्यक है कि हम कक्षाओं को किस प्रकार व्यवस्थित करें, बच्चों को साथ–साथ शिक्षा कैसे प्रदान करें तथा उनके साथ किस प्रकार व्यवहार करें। निम्न बिन्दुओं के माध्यम से इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है–

- **शारीरिक भिन्नताओं की ओर ध्यान** (Attention to Physical Differeness)–शारीरिक संरचना के आधार पर कुछ छात्र छोटे होते हैं, कुछ लम्बे होते हैं और अधिकांश औसत दर्जे के होते हैं। इस दृष्टि में अध्यापक को चाहिये कि वह सबसे छोटे बच्चों को सबसे पहली पंक्ति में बैठाये तथा सबसे लम्बे छात्रों को सबसे अन्तिम पंक्ति में बैठाये। यह भी हो सकता है कि कुछ छात्रों में दृष्टि सम्बन्धी या श्रवण सम्बन्धी विकार हो तो ऐसे छात्रों को भी प्रथम पंक्ति में बैठाने की व्यवस्था करनी चाहिये। कुछ छात्र अपंग भी हो सकते हैं तो ऐसे छात्रों को कमरे के दरवाजे के पास कुर्सी पर बिठाने की व्यवस्था करनी चाहिये। साथ ही, ऐसे बच्चों से स्नेह, सहानुभूति व सहयोगपूर्व व्यवहार करना चाहिये। किसी भी अवस्था में ऐसे छात्रों को यह अहसास नहीं होना चाहिये कि वे दया के पात्र हैं तथा शिक्षक उनसे दयाभाव रखते हैं अन्यथा ऐसे बच्चे हीनभावना के शिकार हो जाएंगे जो आगे चलकर उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक सिद्ध होगा। अपंग

टिप्पणी

बालकों को बैठे–बैठे ही प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति प्रदान की जारी चाहियें तथा प्रश्नों का सही उत्तर देने पर इनकी विशेष तौर पर भूरि–भूरि प्रशंसा की जानी चाहिये जिससे इनमें आत्म–विश्वास एवं आत्म–निर्भरता की इच्छा प्रबल हो सके।

- **मानसिक भिन्नताओं की ओर ध्यान** (Attention to Needed Differences)–इस दृष्टि से अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी कक्षा में ऐसे विद्यार्थियों की पहचान करे जो बुद्धि स्तर तथा शैक्षिक उपलब्धि की दृष्टि से निम्न, मध्यम व उच्च श्रेणी में आते हैं। हां, इतना अवश्य है कि इस प्रकार के बालकों को अपनी ऊंचाई के अनुसार कक्षा में बैठने की अनुमति प्रदान की जा सकती है। अध्यापक को प्रश्न पूछते समय कम बुद्धि व कम शैक्षिक उपलब्धि वालों से सरल, प्रश्न, मध्यम स्तर के बुद्धि–स्तर व शैक्षिक उपलब्धि वालों से मध्यम स्तर के प्रश्न तथा उच्च बौद्धिक स्तर व उच्च शैक्षिक उपलब्धि वाले बालकों से कठिन प्रश्न पूछने चाहियें। प्रश्न पूछने के इस क्रम में थोड़ा हेर–फेर हो सकता है ताकि सभी विद्यार्थी इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिये स्वयं आगे आ सकें। साथ ही, छात्रों को भी यह आभास नहीं होने देना चाहिये कि उनमें अध्यापक के द्वारा किसी प्रकार का भेद किया जा रहा है। यह सब स्वाभाविक रूप से चलना चाहिये। ठीक इसी प्रकार की सावधानी इन छात्रों को गृहकार्य देते समय भी बरतनी चाहिये। कम बौद्धिक स्तर व शैक्षिक उपलब्धि वाले छात्रों को कम गृहकार्य, सामान्य बौद्धिक स्तर व शैक्षिक उपलब्धि वाले छात्र को मध्यम स्तर का गृहकार्य तथा तीव्र बौद्धिक स्तर व शैक्षिक उपलब्ध वाले छात्र को अधिक गृहकार्य दिया जाना चाहिये। गृहकार्य देते समय छात्र की वैयक्तिक तौर पर सहायता करना बहुत आवश्यक होता है। विशेषतः छोटी व उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिये। साथ ही, वैयक्तिक तौर पर छात्रों की किसी भी प्रकार की कठिनाई को दूर करने में शिक्षक को इन छात्रों की पूरी–पूरी सहायता करनी चाहिये।
- **सांवेगिक भिन्नता की ओर ध्यान** (Attention to Emotional Differences)–हम सभी इस तथ्य से भी भली–भांति परिचित हैं कि छात्रों में सांवेगिक भिन्नताएं भी पायी जाती हैं। प्रायः कक्षा में हमें अनेक प्रकार के छात्र देखने को मिलते हैं। कुछ शर्मीले होते हैं, कुछ दब्बू होते हैं, कुछ शरारती, कुछ चिन्तित, कुछ शंकालु, कुछ सौम्य स्वभाव के कुछ उग्र व आक्रामक स्वभाव वाले आदि। अध्यापके के लिये यह बहुत कठिन कार्य होता है कि वह इन विभिन्न प्रकृति वाले बालकों के साथ एक समान सही प्रकार से व्यवहार करे। इन सभी बालकों को अधिकारपूर्वक साथ–साथ लेकर चलना पड़ता है ताकि इन्हें स्नेह, सहानुभूति व सहयोग प्रदान करते हुए अपेक्षित व्यवहार की ओर ले जाया जा सके। इन दो अलग–अलग चीजों को बनाये रखने के लिये अध्यापक को विशेष योग्यता व दक्षता से काम लेना पड़ता है जो उसकी सूझ–बूझ पर अधिक निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में यहां यह उल्लेखनीय है कि छात्र रुचियों में भी एक–दूसरे से पर्याप्त भिन्नता रखते हैं। अतः शिक्षण विधियों एवं शिक्षण–सामग्री का चयन करते समय अध्यापक को बालकों की इन रुचियों के अन्तर को भी ध्यान में रखना चाहिये।

टिप्पणी

यह आवश्यक है कि सभी बालकों को इन शिक्षण–विधियों एवं शिक्षण सामग्रियों की समझ एवं उपयोग के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जायें ताकि वे अपनी पसन्द की शिक्षण–विधि व शिक्षण–सामग्री का चयन कर सकें। निःसन्देह नवीनता (Novelty) रुचि को बनाये रखने में सहायक सिद्ध होती है तथा शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को गति प्रदान करती है।

- **सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता की ओर ध्यान** (Attention Social Cultural Differences)–सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी छात्रों में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। देखने में आता है कि कुछ छात्र आपस में मिलते–जुलने में विश्वास रखते हैं, अपने सगी–साथी (feer Group) बनाते हैं तथा मिल–जुल कर सहयोगपूर्वक कार्य करते हैं जबकि दूसरी ओर कुछ छात्र ऐसे ही होते हैं जो अन्य छात्रों से अलग–थलग रहते हैं, एकान्त में बैठना पसन्द करते हैं, दूसरों से हमेशा दूरी बनाये रखते हैं तथा यहां तक कि दिवा–स्वप्नों में भी खोये रहते हैं। उन्हें केवल अपने हित की ही चिन्ता रहती है। दूसरों से वे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उनकी अपनी दुनिया सबसे अलग होती है तथा वे उसी दुनिया में विचरण करते रहते हैं। इस रिक्तता को भरने की दृष्टि से सामूहिक शिक्षण व सामूहिक गतिविधियां पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं। हम इस तथ्य से भी भली–भांति परिचित हैं कि किसी भी स्कूल की कक्षा में छात्र भिन्न–भिन्न संस्कृतियों से सम्बन्ध रखते हैं। सांस्कृतिक अन्तर का यह स्वरूप उनकी उठने–बैठने, बोल–चाल पहचाने, खाने–पीने, रीति–रिवाजों एवं धार्मिक प्रवृत्तियों में आसानी से देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में स्कूल ड्रैस व स्कूली परम्पराएं सांस्कृतिक विचारधाराओं में एकरूपता व सकारात्मकता बनाये रखने में प्रभावी साधन के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। पारम्परिक वेश–भूषा व धार्मिक विचारधाराएं इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर पातीं। इस दृष्टि से अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह सभी धर्मों का एक समान सम्मान करे तथा उनमें अपनी पूर्ण निष्ठा अभिव्यक्ति करे तभी वह धार्मिक अन्तरों को प्रगति की राह में बाधक बनने से रोक पायेगा और यदि वह इस सन्दर्भ में विशेष कुछ नहीं कर पाता है तो ऐसी स्थिति में उसका उदासीन (Nextral) बना रहना ही अधिक सार्थक सिद्ध होगा। यही कारण है कि स्कूलों में इस प्रकार की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं को एकरूपता प्रदान करने की दृष्टि से अनेक प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियां पाठ्य–सहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत आयोजित की जाती हैं बल्कि विविधता में एकता (Unity in Diviodity) के सिद्धान्त को जीवन में उतारा जा सके तथा राष्ट्रीय अस्मिता को अक्षुण्य बनाया रखा जा सके।

वैयक्तिक विभिन्नताओं पर आधारित प्रविधियां

वैयक्तिक विभिन्नताओं पर आधारित प्रविधियों का विवरण निम्न है–

1. **प्रोजेक्ट प्रणाली** (Project Muthod)–इस पद्धति का जन्म अमेरिका में हुआ तथा इस पद्धति के जन्मदाता किलपैट्रिक थे। उनके अनुसार ''प्रोजेक्ट पूरे मन से किया जाने वाला एक उद्देश्यपूर्ण कार्य है जो सामाजिक सम्पन्न होता है।'' इस प्रणाली में छात्र अपनी रुचि से योजना का चयन करता है, जैसे–मिट्टी के बर्तन बनाना, गुड़िया का घर बनाना, नाटक खेलना, बागवानी करना, जानवरों

टिप्पणी

को पालना आदि। यह विधि 'करके सीखो' सिद्धान्त पर बल देती है। इस विधि में छात्रों को एक–एक कार्य सौंप दिया जाता है जिसे वे मिलजुलकर पूरा करते हैं जैसे–सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा पिकनिक की व्यवस्था करना। योजना के पदों में परिस्थिति निर्माण, चयन, नियोजन, पूर्व करना, मूल्यांकन तथा अंकन प्रमुख हैं।

किलपैट्रिक के अनुसार–''योजना, सामाजिक वातावरण में पूर्व संलग्नता से किया जाने वाला उद्देश्यपूर्ण कार्य है।''

2. **डाल्टन प्रणाली** (Dalton method)–इस प्रणाली को मिस हेलेन पार्कहर्स्ट ने दिया। इस प्रणाली में छात्र को अपनी योग्यता, क्षमता व रुचि के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता होती है। इसे Time-Table के बन्धन में नहीं बांधा जाता। विद्यार्थी चाहे तो सारे दिन एक ही विषय पढ़ सकता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रयोगशाला बनाई जाती है। वर्षभर के कार्य को वह महीनों, सप्ताहों व दिनों में बांट सकता है। इस प्रणाली में अध्यापक मात्र एक पथ–प्रदर्शक रूप में कार्य करता है।

   मिस हेलेन पार्कहर्स्ट ने डाल्टन योजना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि–''डाल्टन प्रयोगशाला योजना से शिक्षण की प्रणाली सीखने व सिखाने की सम्बद्ध क्रियाओं में एकता स्थापित होती है।"

3. **विनेटिका प्रणाली** (Winnitka Method)–इस योजना का प्रतिपादन डा. कार्लटन वाशबर्न ने किया। इस योजना में भी बालक को कार्य करने की पूर्व स्वतंत्रता रहती है। इसमें पूरे पाठ्यक्रम को छोटी–छोटी इकाइयों में बांट दिया जाता है। छात्र एक इकाई का सफलतापूर्वक अध्ययन करने के बाद ही दूसरी इकाई का अध्ययन करता है। छात्र अपने ज्ञान की परीक्षा स्वयं करता है। अध्यापक मात्र मार्ग–दर्शक होता है। इस योजना में कोई बालक अनुत्तीर्ण नहीं होता तथा प्रत्येक विषय में बालक को अलग से ग्रेड दिया जाता है। इस विधि में बालक का ईमानदार होना आवश्यक है। यह योजना के सम्बन्ध में रिस्क ने लिखा है कि–"The Winnetka than of individualized instruction is probably more widely known than any other of its kind."-Risk

4. **डेक्रोली प्रणाली** (Decroley Method)–इस प्रणाली के जन्मदाता डॉ. ओविड डेक्रोली थे जो बेलजियम में प्रोफेसर थे। उनके अनुसार बालक की शिक्षा उसके जीवन से ही मिलनी चाहिये। इस विधि में बालकों का विभाजन उनकी रुचि, क्षमता एवं स्तर के अनुसार कर दिया जाता है। फिर उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार आगे बढ़ने दिया जाता है। डेक्रोली प्रणाली में स्कूल का वातावरण प्राकृतिक होता है जहां बालकों को उदार शिक्षा दी जाती है। लड़के–लड़कियों को एक साथ शिक्षा दी जाती है तथा इनकी संख्या 20–25 होती है। इस प्रणाली में माता–पिता का भी सहयोग लिया जाता है तथा बालक में सामूहिक भावना का विकास किया जाता है।

   ह्यूज तथा ह्यूज के शब्दों में–''डेक्रोली विधि बालक को मूर्त एवं अमूर्त कार्यों को करने का अवसर प्रदान कर आत्म प्रकाशन को उत्साहित करती है। यह विधि जीवन के लिये, जीवन द्वारा सिद्धान्त पर आधारित है।''

टिप्पणी

5. **कान्ट्रेक्ट प्रणाली** (Contract Method)–यह योजना एक प्रकार से डाल्टन प्रणाली तथा विनेटिका प्रणाली का मिला–जुला रूप है। इसमें छात्र को सप्ताह, महीने या वर्ष–भर का कार्य एक साथ ही दे दिया जाता है। कोई समय–सारणी का बन्धन नहीं होता और न ही पाठ्यक्रम के छोटे–छोटे भाग किये जाते हैं। छात्र को कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है। वह चाहे तो वर्ष का कार्य 8 महीने में पूरा कर सकता है और यदि वह किन्हीं कारणों से कार्य पूरा नहीं कर पाता तो वह उसे अगले वर्ष पूरा कर सकता है। कार्य की समाप्ति पर उसकी परीक्षा ली जाती है और उसके असफल होने पर उसके कारणों को जानने का प्रयास किया जाता है।

6. **क्रिया–योजना** (Activity Method)–क्रिया–योजना वस्तुतः कोई योजना नहीं है बल्कि शिक्षण प्रक्रिया का एक पहलू है। अध्यापक का यह प्रयास रहता है कि उसके विद्यार्थी कक्षा में पूरे समय सक्रिय बने रहें। इसलिये जब तक विद्यार्थी प्रश्न पूछकर पाठ्य–वस्तु को आत्मसात करने की कोशिश नहीं करता, अध्यापक को सन्तुष्टि नहीं होती। इस विधि में अध्यापक छात्र की क्रियाओं का निरीक्षण करता है। छात्र को वही क्रिया सौंपी जाये जो उसके मानसिक स्तर के अनुकूल हो।

   इस विधि का प्रयोग कब किया जाये? इस सम्बन्ध में शोइनयेन ने लिखा है कि ''क्रिया–योजना विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब किसी विषय में शिक्षण लक्ष्यों को आगे बढ़ाने हेतु बालकों द्वारा किसी प्रकार की क्रिया की जाती है।''

7. **अभिक्रमित अनुदेशन** (Programmed Instruction)–यह प्रणाली एक प्रकार से विनेटिका प्रणाली का ही रूप है। जिस प्रकार विनेटिका प्रणाली में हम पाठ्यक्रम को छोटी–छोटी इकाइयों में बांट लेते हैं वैसे ही ये इकाइयां इस अभिक्रमित अनुदेशन में प्रोग्राम कहलाती हैं। अब छात्र एक–एक प्रोग्राम को लेकर चलता है तथा उसे पूरा करता है। एक प्रोग्राम के सफलतापूर्वक कर लेने पर ही उसे दूसरा प्रोग्राम दिया जाता है। जो विद्यार्थी प्रथम प्रयास में प्रोग्राम नहीं सीख पाता उसे मिमकइंबा दी जाती है तथा जो सीख जाता है उसे Reinforcement दिया जाता है। छात्र को निर्धारित समय सीमा में ही सारे प्रोग्राम करने होते हैं।

   डी.एल. कुक के शब्दों में–''अभिक्रमित अध्ययन स्वयं शिक्षण विधियों की विस्तृत अवधारणा को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त एक पर्याय है।''

   फ्रैड स्टोफैल के अनुसार–''ज्ञान के छोटे–छोटे अंगों को एक तार्किक क्रम में व्यवस्थित करने को अभिक्रम व इसकी समग्र प्रक्रिया को अभिक्रमित अध्ययन कहते हैं।

8. **किण्डरगार्टन प्रणाली** (Kindergarten Method)–इस प्रणाली के जन्मदाता फ्रोबेल हैं। किण्डरगार्टन शब्द का अर्थ है 'बच्चों का बगीचा। फ्रोबेल शिक्षक को एक माली तथा बच्चे को पौधा बताता है। इस प्रणाली में बालक को पुस्तकों से नहीं लादा जाता बल्कि उसे स्वतन्त्र रूप से हंसने खेलने, बोलने व घूमने दिया जाता है। इस प्रणाली में बच्चा खेल–खेल में सब कुछ सीख जाता है।

टिप्पणी

9. **मान्टेसरी प्रणाली** (Montessori Method)–छोटे बच्चों को शिक्षित करने की यह एक लोकप्रिय प्रणाली है। इस प्रणाली की जन्मदात्री डॉ. मेरिया मांटेसरी हैं। यह विधि मन्दबुद्धि बालकों के लिये बहुत उपयोगी है। यह प्रणाली मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। स्वतन्त्रता, आत्म–अनुशासन, आत्मनिर्भरता, व्यावहारिक शिक्षा आदि इस प्रणाली के आधार हैं। दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, स्वाद एवं घ्राण शक्तियों तथा घरेलू उपकरणों के द्वारा शिक्षा दी जाती है।

10. **ह्यूरिस्टिक पद्धति** (Heuristic Method)–इस पद्धति के प्रतिपादक आर्मस्ट्रांग (Armstrong) हैं। इसका अर्थ होता है, मैंने खोज लिया (I Find out)। इस पद्धति द्वारा बालक, शिक्षक, निरीक्षण, यंत्रों और पुस्तकों की सहायता से स्वयं ज्ञानार्जन करते हैं। यह पद्धति विज्ञान के लिये विशेष लाभकर होती है। यह पद्धति बालक की जिज्ञासा प्रवृत्ति को तीव्र करती है और उसे सदेव सक्रिय बनाये रखती है। इस पद्धति के सम्बन्ध में नन (Nunn) के विचार हैं'–क्योंकि ह्यूरिस्टिक पद्धति का उद्देश्य बालक को मौलिक अन्वेषण की स्थिति में रखना है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से खेल–प्रणाली है।''

11. **बेसिक शिक्षा प्रणाली** (Basic Education System)–इस प्रणाली के जन्मदाता गांधी जी थे। यह प्रणाली बालक के सर्वांगीण विकास पर बल देती है। इसमें निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है तथा यह प्रणाली हस्तकला पर आधारित है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होता है तथा बालक में आत्म–निर्भरता एवं आदर्श नागरिक के गुणों का विकास किया जाता है। छात्र को देशप्रेम तथा सत्य एवं अहिंसा की शिक्षा दी जाती है। यह प्रणाली बाल–केन्द्रित शिक्षा पर बल देती है।

उपरोक्त सभी पद्धतियां, खेल–प्रणाली के प्रमुख सिद्धान्तों– स्वतन्त्रता का सिद्धान्त, रुचि का सिद्धान्त, स्व–शिक्षा सिद्धान्त, उत्तरदायित्व का सिद्धान्त आदि पर आधारित हैं। इन पद्धतियों के समुचित रूप से क्रियान्वयन के लिये सुयोग्य शिक्षक का होना आवश्यक है। ऐसा न होने पर शिक्षा, शिक्षा न होकर केवल खेल ही खेल रह जायेगा।

अनौपचारिक शिक्षण क्रियाएं

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उपनिवेशिया अवधि के बाद नवोदित राष्ट्रों में व्यापक और विकसित औपचारिक शिक्षा के लिए तीव्र रूप से गतिविधियां शुरू हुईं। साठवें दशक में यह जानकर बेचैनी थी कि मात्र औपचारिक शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार से सब समस्याएं हल नहीं हो पा रही थीं। औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के रूप में शिक्षा का वर्गीकरण एक बड़ा व्यवधान छोड़ देता है। फिलिप कूम्बस तथा अन्य के अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि विकसित समाज में एक नई प्रकार की शिक्षा प्रणाली का विकास किया गया है जिसे अनौपचारिक शिक्षा कहा जा सकता है। इस अनौपचारिक शिक्षा में तीव्र गति से परिवर्तनशील समाजों की न्यूनावधि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अत्यधिक क्रियात्मक कार्यक्रम थे।

टिप्पणी

अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था

अनौपचारिक शिक्षा कमजोर और पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षिक अवसर जुटाती है। नमनीयता अनौपचारिक शिक्षा की कुंजी है। इस शिक्षा में खुलापन होता है। दाखिले, पाठ्यक्रम, शैक्षिक स्थल, शिक्षा प्रणाली, प्रशिक्षण का समय और अवधि किसी पर भी रोक नहीं होती। इन्हें परिस्थितियों के अनुसार बदला जा सकता है। अनौपचारिक शिक्षा के कुछ उदाहरण हैं; खुले विद्यालय, खुले विश्वविद्यालय, खुला सिखाना और पत्राचार पाठ्यक्रम इत्यादि। अनौपचारिक शिक्षा का एक उदाहरण खुला विद्यालय है जिसके प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित है–

1. औपचारिक विद्यालयों के साथ–साथ उसके विकल्प के रूप में एक समानान्तर अनौपचारिक व्यवस्था उपस्थित करना।
2. विद्यालय के बाहर पढ़ने वालों, विद्यालय छोड़ने वालों कामगार वयस्कों, गृहणियों तथा सुदूर क्षेत्र में रहने वाले समाज के पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना।
3. माध्यमिक स्तर पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के लिए प्रशिक्षुओं की ब्रिज प्रारंभिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना।
4. दूर शिक्षण विधियों के लिए माध्यमिक सीनियर माध्यमिक, प्राविधिक और जीवन को समर्थ बनाने वाले पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना।
5. अनुसंधान, प्रकाशन और सूचना प्रसारण द्वारा शिक्षा की एक खुली, उद्‌गम व्यवस्था उपस्थित करना।

अनौपचारिक शिक्षा की परिभाषा

सन् 1968 में फिलिप कूम्बस ने औपचारिक शिक्षा की चर्चा की। परन्तु उसकी परिभाषा 1970 के बाद ही की गई। वास्तव में, अनौपचारिक शिक्षा एक प्राचीन परिपाटी का नया नाम है। अनौपचारिक शिक्षा की कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

1. कूम्बस और अहमद के अनुसार, "जनसंख्या में विशेष उपसमूहों, वयस्क तथा बालकों का चुना हुआ इस प्रकार का अधिगम प्रदान करने के लिए औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के बाहर कोई भी संगठित कार्यक्रम है।"
2. ला बेला के अनुसार, "अनौपचारिक शिक्षा का संदर्भ विशिष्ट लक्षित जनसंख्या के लिए स्कूल से बाहर संगठित कार्यक्रम है।"
3. इलिच और फ्रेयर के अनुसार, ''अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक विरोधी शिक्षा है।''
4. मोतीलाल शर्मा के अनुसार, ''संक्षेप में कोई कह सकता है कि अनौपचारिक शिक्षा एक सक्रिय, आलोचनात्मक द्वंद्वात्मक शैक्षिक कार्यक्रम है जो कि मनुष्यों को सीखने, स्वयं अपनी सहायता करने, चेतन रूप से अपनी समस्याओं का आलोचनात्मक रूप से सम्मान करने में सहायता करता है। अनौपचारिक शिक्षा का लक्ष्य संकलित, प्रमाणित मानव–प्राणियों का विकास करना है जो कि समाज के विकास में योगदान दे सकें। इसमें न केवल व्यक्ति बल्कि एक सच्चे अधिगम समाज में योगदान देते हुए सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था सीखती है।"

टिप्पणी

अनौपचारिक शिक्षा के साधन –अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों को संगठित करने वाले विभिन्न साधनों का विवरण निम्नलिखित है–

1. अनौपचारिक शिक्षा की समस्याएं
2. अनौपचारिक शिक्षा के लिए विशिष्ट साधन जैसे नेहरु खेल केन्द्र, कारखानों में प्रशिक्षण केन्द्र, सार्वजनिक पुस्तकालय, पत्राचार शिक्षा के केन्द्र इत्यादि।
3. क्लब और सोसायटियों जैसे स्वयंसेवी गैर–सरकारी संगठन।
4. रेडियो और टेलीविजन।

शिक्षा की प्रणालियों में अनौपचारिक शिक्षा भी एक है, ये प्रणालियां हैं–औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा। अस्तु अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के साथ समायोजन के रूप में देखी और आयोजित की जानी चाहिए। यद्यपि उसका संगठन औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा से हटकर नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इससे यह एक अपर्याप्त और प्रभावहीन प्रणाली सिद्ध होगी। दूसरे कुछ बुनियादी कौशल तक ही सीमित नहीं की जानी चाहिए। उसकी व्यवस्था समस्त सामाजिक–धार्मिक परिवेश के प्रसंग में एक आधुनिक सामाजिक संदर्भ एक अधिक संगठित समुदाय के लिए की जानी चाहिए। यह समुदाय एक ऐसे परिवर्तन और नवीनीकरण की प्रतीक्षा में है जिसमें शिक्षा की तीनों प्रणालियां योगदान दे सकती हैं इसके लिए सामुदायिक आवश्यकताओं और अधिगम व्यवस्थाओं के मध्य अन्तर को भरना आवश्यक है।

4.2.1 सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर शिक्षार्थियों में विविधता

सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया शिक्षार्थियों अथवा अधिगमकर्ताओं के अधिगम तथा संज्ञानात्मक विकास पर दृष्टिपात करती है। किसी भी बच्चे का संज्ञानात्मक विकास उसके परिवार के सदस्यों, समुदाय में रहने वाले सगे–संबंधियों अथवा अन्य वयस्कों द्वारा होता है, जो सामाजिक व सांस्कृतिक प्रक्रिया द्वारा उसे समय–समय पर प्रभावित करते रहते हैं और उसके संज्ञानात्मक विकास को भली–भांति विकसित करने में मदद करते हैं। वे निर्देशन, परामर्श तथा सहयोगी क्रियाओं द्वारा बच्चों को सीखने का अवसर प्रदान करते हैं। ये अवसर पूर्ण रूप से बच्चे की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं जो कि औपचारिक व अनौपचारिक परिप्रेक्ष्य में उपस्थित होकर बच्चे को स्वयं तथा अन्य लोगों के साथ क्रिया करने में सहायता प्रदान करते हैं।

बच्चे अपने सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण से अंतःक्रिया द्वारा विभिन्न प्रकार के अनुभवों को एकत्रित करते हैं, जिससे वे बहुत कुछ सीखते हैं। वातावरण में उपलब्ध सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों के साथ अंतःक्रिया के फलस्वरूप उसके अनुभवों को एकत्रित किया जाता है। ये तत्व बच्चे को पाठ्य–पुस्तक के ज्ञान के अतिरिक्त ज्ञान को अर्जित करने में मदद करते हैं। उदाहरणस्वरूप, जैसे– यदि बच्चे स्वयं के त्योहार, नृत्य, गीत, स्थानीय मेला आदि पाठ्य–पुस्तक और शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के दौरान पाते हैं तो वे अधिगम में अत्यंत आनंद का अनुभव करते हैं। यह बच्चों के लिए एक सार्थक वातावरण का निर्माण करता है किंतु कुछ बच्चे विद्यालय में ऐसे भी होते हैं जिन्हें

इस प्रकार का अवसर नहीं मिलता। उन्हें ऐसी पाठ्य पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं जिनमें उनकी स्थानीय तथा संस्कृति की विषय–वस्तु के उदाहरण न हों।

टिप्पणी

विद्यालय की किसी भी कक्षा में विभिन्न सांस्कृतिक व सामाजिक समूहों के बच्चे मिलते हैं। यह विविधता शिक्षार्थियों की वास्तविकता है। सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता में जो तत्व व्यक्तिगत विद्यार्थी की पहचान बनाते हैं और उनके अधिगम को प्रभावित करते हैं वे हैं– जाति, वर्ग, आयु, लिंग, योग्यता, धर्म, राष्ट्रीयता, विभिन्न अधिगम परिस्थितियां आदि। शिक्षार्थियों में विविधता केवल उनकी सामाजिक स्थितियों तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में ही नहीं होती, अपितु उनकी आकांक्षाओं, दृष्टिकोणों, अधिगम शैलियों में भी होती है। शिक्षार्थियों के अधिगम में जो कारक अंतर उत्पन्न करते हैं वे निम्नलिखित हैं–

1. **पारिवारिक वातावरण**– पारिवारिक वातावरण शिक्षार्थी के अधिगम को काफी हद तक प्रभावित करता है। उदाहरणस्वरूप, वे विद्यार्थी जो एकल परिवारों में रहते हैं, उनके अधिगम प्रतिफल निम्न हो सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि एकल परिवारों में शिक्षार्थियों पर उत्तरदायित्वों की वृद्धि, जैसे कि घरेलू कार्य आदि विद्यालय के लिए पर्याप्त समय में बाधा उत्पन्न करते हैं। अभिभावकों के पास भी अपने बच्चों के विद्यालयी कार्य का अनुवीक्षण करने तथा उनके साथ समय व्यतीत करने के लिए समय की कमी होती है, जिसके परिणामस्वरूप वे बच्चे अधिगम में निम्न स्तर का प्रदर्शन कर सकते हैं। जबकि एक संयुक्त परिवार में रहने वाले बच्चे के साथ उसके अभिभावक अधिक समय व्यतीत करते हैं क्योंकि उनके पास सहायता के लिए घर में अन्य सदस्य भी होते हैं। अतः संभव है कि संयुक्त परिवारों से संबंधित शिक्षार्थी अधिगम में उच्च स्तर का प्रदर्शन कर सकते हैं।
2. **सामाजिक व आर्थिक स्थिति**– किसी भी शिक्षार्थी के अधिगम में उसकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति एक निर्णायक भूमिका निभाती है। ऐसा शिक्षार्थी जो निम्न सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति वाले परिवार में रहता है वह अपने परिवार से बौद्धिक प्रोत्साहन प्राप्त करने में असफल रहता है, जिसके परिणामस्वरूप वह कक्षा में निष्क्रियता का प्रदर्शन करता है। इसके विपरीत ऐसा शिक्षार्थी जो मध्यम सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले परिवार से संबंधित होता है, वह अपने परिवार से बौद्धिक प्रोत्साहन प्राप्त करने में समर्थ होता है, जिसके कारण वह कक्षा में क्रियाशील रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के परिवार से संबंधित बच्चे का अधिगम प्रतिफल निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के परिवार से संबंधित बच्चे से अधिक उच्च रह सकता है।
3. **सांस्कृतिक पृष्ठभूमि**– शिक्षार्थी के अधिगम पर सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी बहुत अधिक प्रभाव होता है। शिक्षार्थी विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों में जिस तरह से भाग लेते हैं, उनमें उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का प्रभाव होता है। समूहवादी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाला शिक्षार्थी अन्य शिक्षार्थियों के साथ सहयोग द्वारा सीखने को प्राथमिकता देता है जबकि व्यक्तिवादी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाला शिक्षार्थी स्वतंत्र रूप से सीखने को अधिक प्राथमिकता देता है। भिन्न–भिन्न

टिप्पणी

पृष्ठभूमि वाले शिक्षार्थी भिन्न–भिन्न तरीकों से सीखते हैं। कक्षा में कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो शिक्षक के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर देते समय शिक्षक से सीधा संपर्क नहीं बना पाते और कुछ ऐसे होते हैं जो शिक्षक के साथ सीधा संपर्क बनाने में समर्थ होते हैं। इसका कारण भी सांस्कृतिक विविधता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षक को शिक्षार्थी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विषय में जानने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए और शिक्षार्थी को भी प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह अपने परिवार और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि के विषय में बात करे ताकि अधिगम वातावरण को उसके अनुसार तैयार किया जा सके।

4. **विद्यालय की संरचना**– विद्यालय की संरचना भी शिक्षार्थी के अधिगम को अत्यंत प्रभावित करती है। एक सरकारी विद्यालय में अधिकांश शिक्षार्थी मध्यम व निम्न श्रेणी के परिवारों के होते हैं जबकि निजी विद्यालय में अधिकांश शिक्षार्थी उच्च श्रेणी के परिवारों के होते हैं। निजी विद्यालयों में उच्च शैक्षिक योग्यताओं वाले शिक्षार्थियों का चयन किया जाता है। निजी विद्यालयों में अधिगम वातावरण सरकारी विद्यालयों से बिल्कुल भिन्न होता है। निजी विद्यालयों को आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती है, जिसके कारण इनमें कक्षाकक्ष और प्रयोगशालाएं आधुनिक तकनीकों से निर्मित होती हैं। इनके विपरीत सरकारी विद्यालयों में कुछ विद्यालयों में तो कक्षाकक्ष भी नहीं होते हैं, यदि होते हैं तो वे ठीक से सुसज्जित नहीं होते। कहीं–कहीं पर तो शिक्षार्थी खुले स्थान में बैठकर सीखते हैं। उचित अधिगम वातावरण के न मिलने के कारण सरकारी विद्यालयों में शिक्षार्थियों का अधिगम प्रतिफल निजी विद्यालयों की अपेक्षा कभी–कभी निम्न स्तर का होता है।

5. **भौगोलिक स्थिति**– अधिगम प्रतिफल पर भौगोलिक स्थिति का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण व दूरस्थ क्षेत्रों में अनेक सुविधाओं की कमी जैसे– यातायात की सुविधाएं, पारिवारिक आय का कम होना, नवीन प्रौद्योगिकी से युक्त साधनों– मोबाइल, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि की अनुपलब्धता के कारण ये क्षेत्र उपयुक्त अधिगम की सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि गैर–महानगरीय क्षेत्रों से संबंधित शिक्षार्थियों का अधिगम प्रतिफल महानगरीय शिक्षार्थियों की तुलना में निम्न स्तर का हो सकता है।

6. **भाषा**– शिक्षार्थी के अधिगम प्रतिफल पर भाषायी विविधता का भी प्रभाव पड़ता है। कक्षा में विविध प्रकार के शिक्षार्थी होते हैं, जिनमें से कुछ हिंदी बोलने वाले होते हैं और कुछ अंग्रेजी बोलने वाले होते हैं। शिक्षार्थी, जिनकी भाषा विद्यालय की शिक्षा के माध्यम की भाषा से भिन्न होती है, वे स्वयं को वंचित समझते हैं। भाषायी विविधता के कारण विभिन्न शिक्षार्थी कभी–कभी बीच में ही विद्यालय छोड़ देते हैं और कभी निम्न स्तर का अधिगम प्रतिफल प्रदर्शित करते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि ये सभी कारक किसी न किसी रूप में शिक्षार्थियों के अधिगम को प्रभावित करते हैं। शिक्षक को एक ऐसे अधिगम वातावरण को विकसित करना चाहिए जो शिक्षार्थियों को उनके अधिगम के बारे में गहन चिंतन हेतु दिशा प्रदान कर सके।

4.2.2 शिक्षार्थियों की मातृभाषा और अनुदेशन की भाषा

टिप्पणी

मातृभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो एक परिवार के सदस्यों द्वारा घर पर दैनिक जीवन में परस्पर वार्तालाप हेतु सर्वाधिक प्रयोग में लाई जाती है। इसे परिवार की भाषा या घर की भाषा भी कहा जाता है। लगभग सभी शिक्षाविदों और नीति निर्माताओं ने शिक्षा में बच्चों की मातृभाषा के महत्व को समझा है।

बालक की मातृभाषा उस भाषा का एक रूप है जिसके साथ वह बड़ा होता है तथा जिसके द्वारा वह अपने पड़ोस/समुदाय में कुशलता से संभाषण कार्य करता है। ऐसी भाषा से बालक को अलग नहीं किया जाना चाहिए। यह बालक को आवश्यकतानुसार अन्य भाषण स्थितियों में भी प्रभावी ढंग से भाषा का प्रयोग और मानक रूपों का उपयोग करने में मदद करती है। केट मेनकेन द्वारा किये गए अनुसंधान अध्ययन के अनुसार, जो बालक द्विभाषी शिक्षा के माध्यम से अपनी मातृभाषा को विकसित करने और विद्यालय में उसे (मातृभाषाएं) बनाए रखने में सक्षम हैं, उनकी शैक्षणिक सफलता की संभावना अपने समकक्ष उन छात्रों की तुलना में अधिक है जो केवल विद्यालयी भाषा माध्यम से पढ़ते हैं।

इंग्लैंड में न्यूबोल्ट रिपोर्ट, (1921) के अनुसार राष्ट्रीय एकता के हित में छात्रों को मानक अंग्रेजी भाषा में पढ़ना एवं लिखना सिखाना चाहिए, क्योंकि इससे एक एकीकृत भाषा एवं एक एकीकृत राष्ट्र का उत्पादन करने में मदद मिलेगी, लेकिन ऑस्ट्रेलियाई पाठ्यक्रम में भाषा और राष्ट्रीय पहचान के बीच सम्बन्ध विकसित करने में मदद हेतु बच्चों की मातृभाषा का सम्मान करने और मानक भाषा के उपयोग करने के बीच संतुलन साधने पर बल दिया गया है। बुल्लोच रिपोर्ट (1975) ने भी तर्क दिया है कि शिक्षकों को बच्चे की मातृभाषा को स्वीकार करना चाहिए एवं उसी के साथ–साथ मानक भाषा के रूपों को भी सिखाया जाना चाहिए।

अन्य भाषा सीखने में मातृभाषा की भूमिका

संयुक्त राज्य अमेरिका में चलाया गया द्विभाषी शिक्षा कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है जिसके द्वारा शिक्षक बालकों को अपनी मातृभाषा और विद्यालय भाषा के मध्य एक प्रभावी तारतम्यता बनाने में उनकी सहायता कर सकते हैं। यह उन बालकों की दूसरी भाषा में सहजता बनाए रखने हेतु विद्यालयी शिक्षा का प्रयास है जो एक अंग्रेजी प्रमुख विद्यालय में प्रवेश लेते हैं लेकिन उनकी मातृभाषा को वहां कोई समर्थन नहीं मिलता। उन विद्यालयों में कक्षाओं में केवल अंग्रेजी ही शिक्षण का माध्यम है ऐसे विद्यार्थी न तो टुटोरिअल कक्षाओं में और न ही दैनिक कक्षाओं में तब तक सहज रूप से सीख पाते हैं, जब तक कि वे संभाषण हेतु अंग्रेजी भाषा में आवश्यक रूप से पारंगत नहीं हो जाते हैं। यह मातृभाषा बोलने वाले बच्चों का समूहीकरण कर अंग्रेजी सीखने को प्रोत्साहित करने का भी प्रयास है।

हालांकि, अमेरिका के शिक्षा विभाग द्वारा किये गए एक अध्ययन में पाया गया कि इस द्विभाषी शिक्षण कार्यक्रम (बायलिंगुअल एजुकेशनल प्रोग्राम) के द्वारा स्कूल के पांचवीं कक्षा के जिन बच्चों को विद्यालय दिवस के कम से कम 40 प्रतिशत समय गणित और अंग्रेजी या छोटी अवधि के द्विभाषी कार्यक्रमों में देशी भाषा सामग्री उपलब्ध कराई गई, जिसकी वजह से उनकी अंग्रेजी भाषा क्षमता उन बच्चों की तुलना में बेहतर हुई,

जो अंग्रेजी भाषा कौशल में बेहतर थे। इस अनुसंधान द्वारा वे शिक्षक आश्वस्त हो सकते हैं जो इस उलझन में हैं कि बालकों को विद्यालयी भाषा में पढ़ाया जाए अथवा उनकी मातृभाषा को भी शिक्षण प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाए।

टिप्पणी

कक्षा में विद्यालयी भाषा

भारतीय शिक्षा प्रणाली अपने चरित्र में सही मायने में बहुभाषी है। मुंबई नगर निगम नौ भाषाओं में और कर्नाटक राज्य आठ भाषाओं में प्राथमिक विद्यालय चलाता है। पश्चिम बंगाल में माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों को उनकी 14 मातृभाषाओं में से चुनने का विकल्प दिया जाता है। वस्तुतः यह समस्त प्रयास व्यापक रूप से देश में त्रिभाषा सूत्र के विकास और हमारी शिक्षा प्रणाली के बहुभाषी चरित्र को मजबूत बनाने के लिए है। फिर भी त्रिभाषा सूत्र को लागू करने में कई व्यावहारिक समस्याएं हैं। उदाहरण के लिए, इस सूत्र में न तो मातृभाषा या गृह–भाषा के लिए कोई संदर्भ है न ही शास्त्रीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं के शिक्षण के लिए कोई स्पष्ट मार्गदर्शन है। तमिलनाडु केवल तमिल और अंग्रेजी सिखाता है और गुजरात गुजराती के साथ हिंदी। कई हिंदी राज्यों में शास्त्रीय भाषा संस्कृत को एक आधुनिक भारतीय भाषा के स्थानापन्न के रूप में जोड़ा गया है। संविधान की आठवीं अनुसूची के विस्तारित संस्करण द्वारा और अधिक भाषाओं को जोड़ा गया है, लेकिन शायद ही वर्तमान स्थिति में कोई सुधार हुआ हो।

भारत के विभिन्न राज्यों में द्विभाषी माध्यम के 500 केंद्रीय विद्यालय हैं जिनमें अंग्रेजी और हिंदी भाषा के अध्ययन के साथ–साथ एक अनिवार्य भाषा (संस्कृत, उर्दू या पंजाबी) का भी अध्ययन कराया जाता है। इसके अलावा, 500 नवोदय विद्यालय हैं जहां अंग्रेजी और हिन्दी की क्षमता का विकास एक साथ किया जाता है, लेकिन इन स्कूलों से छात्र जब उच्च शिक्षा के लिए कॉलेजों में जाते हैं, तब ऐसा कोई कॉलेज नहीं मिलता जो सहजता के साथ व्यावहारिक रूप में शिक्षा का एक द्विभाषी माध्यम प्रदान करता हो। इस तरह भारतीय शिक्षा प्रणाली उच्च शिक्षा स्तर पर बहुभाषावाद को रोक देती है, क्योंकि उच्च कक्षाओं में अधिकांश व्याख्यान या तो अंग्रेजी भाषा में होते हैं या अंग्रेजी से किए गए अनुवाद।

कक्षा में गृह–भाषा

छात्रों को उनकी गृह–भाषाओं के बीच सम्बन्ध बनाए रखने और उन्हें यह बेहतर ढंग से समझाने के लिए कि कैसे भाषाओं को इस प्रकार संरचित और संगठित किया जाए, ताकि उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए उनसे उनके घर की भाषा में ही बात की जाए और यह पूछा जाए कि–

- उनके घर की भाषा और विद्यालय की भाषा में क्या समानताएं और अंतर हैं?
- क्या उनकी मातृभाषा तथा विद्यालय भाषा में शब्दों के लिए प्रयुक्त ध्वनि और अर्थ एक जैसे हैं?
- क्या मातृभाषा तथा विद्यालय भाषा में ऐसे शब्द हैं जिनका उच्चारण तो एक जैसा है, लेकिन अर्थ पृथक हैं?
- मातृभाषा में बनने वाले एकवचन और बहुवचन रूप, क्रियाओं के वर्तमान और पिछले रूपों द्वारा शब्दों को कैसे बदल जाता है?

टिप्पणी

इन तरीकों से छात्रों की मूल भाषा का महत्वपूर्ण और उपयोगी सामरिक प्रयोग कर कक्षा में सभी छात्रों के सामूहिक ज्ञान और कौशल का उपयोग करके, शिक्षक सभी छात्रों को, विशेष रूप से अंग्रेजी सीखने वाले तथा मातृभाषा का प्रयोग करने वाले, दोनों के विकास को बढ़ावा दें सकते है।

कक्षा निर्देश में मातृभाषा और विद्यालय भाषा की भूमिका

कक्षा निर्देश में विद्यालय भाषा और मातृभाषा का समन्वय करने के लिए शिक्षक अनेक प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न कर सकता है जैसे–

- **सारांशीकरण**– छात्रों ने जो पढ़ा या सीखा, उस पाठ का महत्वपूर्ण विवरण साझा करना। जैसे छात्रों से कहना कि उन्होंने जो पाठ अभी पढ़ा है, उसकी तीन महत्वपूर्ण जानकारियां अपने साथी के साथ साझा करें।
- **पृष्ठभूमि ज्ञान और अनुभवों की चर्चा**– छात्र किसी पढ़े हुए विषय पर या अपने अनुभवों से संबंधित चर्चा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, छात्र उन विषयों पर चर्चा कर सकते हैं कि उस समय के बारे में बात करना, जब उनके माता–पिता या अभिभावकों ने उन्हें कुछ ऐसा करने के लिए कहा, जो वास्तव में वे नहीं करना चाहते थे। उन्होंने उस स्थिति में क्या किया और कैसा अनुभव किया?
- **मस्तिष्क उद्देलन**– ऐसे छात्र, जो किसी विशेष विषय पर चर्चा करते या लिखते हैं।
- **त्वरित लेखन**– मस्तिष्क उद्देलन की भांति ही अत्यंत अल्प समय में छात्र किसी विशेष विषय पर सहजतापूर्वक लिखते हैं।
- **चार्ट**– एक विशेष विषय के बारे में एक चार्ट पर निम्न सूचनाओं को सूचीबद्ध किया जा सकता है–
  - छात्रों को क्या पता है।
  - वे और क्या पता करना चाहते हैं।
  - अब तक उन्होंने क्या सीखा है।

एक ही भाषा बोलने वाले छात्र एक छोटे समूह में चर्चा करते और अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। इस प्रक्रिया में छात्रों के माता–पिता भी सहायता कर सकते हैं।

- **मूल भाषा में पठन सामग्री**– छात्रों के लिए मूल भाषा में पठन सामग्री उपलब्ध हैं तो उन्हें पृष्ठभूमि का निर्माण करने, पढ़ने के कौशल में वृद्धि करने और अवधारणाओं को स्पष्ट करने में मदद मिल सकती है।
- **गृह कार्य तथा गृह–विद्यालय सम्बन्ध**– विद्यालय में छात्र क्या सीख रहे हैं, परिवार के सदस्यों के साथ उस पाठ्य सामग्री के संबंध में विचार–विमर्श के माध्यम से छात्र सांस्कृतिक दृष्टिकोण के बारे में भी सीख सकते हैं। जब छात्रों का सामाजिक–भावनात्मक विकास भली–भांति होता है तो उनमें मानक भाषा में विचार विनिमय करते समय अपनी घर की भाषा और संस्कृति पोषण और जोखिम लेने का विश्वास भी उत्पन्न करती है। अंग्रेजी बोलने वाले छात्रों की

टिप्पणी

कक्षा में अपनी मूल भाषा का उपयोग करने की अनुमति उन छात्रों को लाभ ही पहुंचाएगी।

- इन क्रियाओं के माध्यम से सामान्य रूप में प्रत्येक छात्र को, विशेष रूप से अंग्रेजी सीखने वालों छात्रों को तारतम्यता बनाने में सहूलियत और फायदा होगा।

विद्यालयों में मातृभाषा की शिक्षा की आवश्यकता

अनेक देशों में जहां मानक भाषा पहली भाषा नहीं है, कई माता–पिता और समुदायों का मानना है कि वे अपने बच्चों की शिक्षा में मानक भाषा के लिए घर की भाषा को दरकिनार कर रहे हैं।

कई सरकारों की योजना मानक भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनाने की है। इसके पीछे उनकी प्रेरणा, उनकी अर्थव्यवस्थाओं के विकास और उनकी युवा पीढ़ी के कैरियर की संभावनाओं में सुधार की अपार संभावनाएं हैं। इस कदम को बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा माध्यम के रूप में मानक भाषा को पेश करने की प्रवृत्ति के रूप में देखा जा रहा है, जैसे अफ्रीका में अंग्रेजी को देखा जा रहा है।

हालांकि, शोध निष्कर्ष लगातार इस बात की पुष्टि कर रहे हैं कि प्रारंभिक शिक्षा के वर्षों में शिक्षार्थियों को शिक्षा के क्षेत्र में उनके घर की भाषा का उपयोग करने से लाभ होता है। फिर भी कई विकासशील देशों को अपने स्कूलों में पढ़ाने के लिए अन्य भाषाओं का उपयोग करना ही पड़ता है।

शहरी क्षेत्रों से अलग ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षार्थी केवल अपने घर की भाषा के साथ विद्यालय में प्रवेश लेते हैं। इन शिक्षार्थियों की बेहतर समझ के लिए और स्कूल की ओर अधिक सकारात्मक रवैया विकसित करने हेतु प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा का उपयोग करना चाहिए। इसके कई कारण हैं। बालक सबसे पहले सीखना विद्यालय में शुरू नहीं करता है। शिक्षार्थियों का प्रारंभिक शिक्षण घर की भाषा में घर पर ही शुरू होता है। हालांकि स्कूल के शुरू होने से सीखने में निरंतरता आती है और यह शिक्षार्थी की शिक्षा के मोड़ में महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तुत करता है। जहां पहले वह अनुभव से सीख रहा था, विद्यालय में अब स्कूल प्रणाली के ढांचे, सामग्री और एक पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम उसके सीखने को नियंत्रित करता है। स्कूल शुरू करने पर, बालक खुद को एक नए भौतिक वातावरण में पाते हैं। नयी कक्षा, नए सहपाठियों और इनके केंद्र में एक सबसे अजनबी शिक्षक, इस परिस्थिति में बालक खुद को भी यहां एक अजनबी रूप में पाते हैं। सीखने का नया संरचित ढंग, इनके अलावा, बातचीत की भाषा में अचानक परिवर्तन वहां की स्थिति को काफी जटिल बना देते हैं। दरअसल, यह सब बच्चे की प्रगति को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर कर सकते हैं। हालांकि, स्कूलों में घर की भाषा का उपयोग करते हुए भी बच्चों को नए माहौल में सहज करने और घर के अनुभव के साथ ही स्कूल में उनके सीखने में मदद कर सकते हैं।

दूसरा, घर की भाषा का उपयोग करते हुए, शिक्षार्थियों की सीखने की प्रक्रिया में शामिल होने की अधिक संभावना है। शिक्षार्थी के परस्पर संवाद केंद्रित दृष्टिकोण की सभी शिक्षाविदों द्वारा सिफारिश की गयी है। इसमें एक ऐसा वातावरण बनाने पर बल है जहां शिक्षार्थी शिक्षण की भाषा में पर्याप्त रूप से कुशल हैं। यह वातावरण शिक्षार्थियों

टिप्पणी

को सुझाव बनाने के लिए, प्रश्न पूछने के लिए, सवालों के जवाब बनाने के लिए और उत्साह के साथ नए ज्ञान संवाद के लिए सहजता देता है। यह शिक्षार्थियों को आत्मविश्वास देता है और अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाने में मदद करता है। इससे वे अपने जीवन के लिए स्कूल की प्रासंगिकता सकारात्मक रूप में देखते हैं।

जब शिक्षार्थी स्कूल में एक नयी भाषा, शिक्षक केंद्रित दृष्टिकोण, कक्षाओं में निष्क्रियता और चुप्पी का सामना एक साथ ही करता है तो स्वयं की क्षमता और स्वतंत्रता को दबा अनुभव करता है। यह युवा मन के उत्साह एवं अपनी रचनात्मकता के विश्वास को रोकता है और सीखने के अनुभव अप्रिय बनाता है, जो परिणामों पर एक नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों में सीखने का उद्देश्य बुनियादी साक्षरता कौशल का विकास है। मूलतः, पढ़ने और लिखने का कौशल पत्र या लिखित रूप में प्रतीकों के प्रयोग के साथ विकसित किया जाता है। बोलने और सुनने के ये मूलभूत कौशल भाषा में पदों व ध्वनियों की साम्यता पर निर्भर करते हैं और ये क्षमता पारस्परिक प्रभाव कौशल के निर्माण से विकसित होती हैं। अनुदेशन हेतु इस्तेमाल होने वाली भाषा में शिक्षार्थी बोलते हैं या समझते हैं तो उनमें पढ़ने और लेखन के कौशल तेजी से और अधिक सार्थक तरीके से विकसित होते हैं।

यह भी देखा गया है कि यदि शिक्षार्थियों को मातृभाषा में कौशल और अवधारणाओं को पढ़ाया जाता है। दूसरी भाषा में स्थानांतरण करते समय इसे फिर से सिखाये जाने की जरूरत नहीं होती है। एक शिक्षार्थी जो पहले से ही एक भाषा पढ़ना और लिखना जानता है तो वह दूसरी भाषा में भी तेजी से सीखता है। एक नई भाषा में पढ़ने और लेखन कौशल का विकास करता है। वह पहले से ही जानता है कि ध्वनि से वर्णों का रूप बनता है। अब उसे केवल यह सीखने की जरूरत है कि दूसरी भाषा में वर्ण कैसी ध्वनि करते हैं।

उसी तरह, शिक्षार्थी स्वाभाविक रूप से एक भाषा में अधिगृहित ज्ञान को किसी अन्य भाषा में जल्द ही रूपांतरित करना सीख जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि शिक्षक शिक्षार्थियों को उनकी मातृभाषा में पढ़ाएं कि बीज को उगने के लिए मिट्टी, नमी और गर्मी की जरूरत होती है तो इसे पुनः दूसरी भाषा में पढ़ाने की जरूरत नहीं है। जब वे दूसरी भाषा में पर्याप्त शब्दावली का विकास कर लेंगे तो स्वयं प्राप्त जानकारी का अनुवाद कर लेंगे। इस प्रकार, ज्ञान और कौशल एक भाषा से दूसरी भाषा में हस्तांतरणीय हैं। यह ज्ञान शिक्षार्थियों की मातृभाषा में शिक्षा सीखने की प्रक्रिया को बाधित नहीं करता, बल्कि औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में सफलता के लिए सहायक होता है।

स्कूल के शुरू में घर की भाषा का प्रयोग शिक्षार्थियों के साथ–साथ शिक्षकों पर भी बोझ है। विशेष रूप से उन शिक्षकों पर जो स्थानीय भाषा तो अच्छी तरह से बोलते हैं लेकिन विद्यालय अनुदेशन की भाषा में वे सहज नहीं हैं। ऐसे शिक्षक शिक्षार्थियों के साथ–साथ खुद भी संघर्ष करते देखे जाते हैं। अनुसंधान बताते हैं कि जहां शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों देशी भाषा–भाषी होते हैं, सीखने की स्थितियों में, विशेष रूप से शिक्षा के शुरू में शिक्षक शिक्षार्थियों की अपेक्षा ज्यादा संघर्ष अनुभव करते हैं लेकिन जब शिक्षण अनुदेशन शिक्षक और शिक्षार्थियों की घर की भाषा में प्रारंभ हो जाता है तो

शिक्षण अनुभव अधिक प्राकृतिक और सभी के लिए कम तनावपूर्ण होता है। नतीजतन, शिक्षक सीखने, सिखाने के परिणामों में सुधार करने के लिए अधिक रचनात्मक हो सकता है।

टिप्पणी

सारांश में, कक्षा में शिक्षार्थियों की घर की भाषा का प्रयोग घर और स्कूल के बीच एक सुगम रूपांतरण को बढ़ावा देता है। इसका मतलब है कि घर की भाषा का प्रयोग शिक्षार्थियों के बुनियादी साक्षरता कौशल के विकास को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करने में सहायता करता है। साथ ही ऐसे शिक्षक भी तैयार करने में, जो अधिक रचनात्मक हों।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में मातृभाषा एवं विद्यालय भाषा का समावेश

भाषा विद्यालय में बच्चों के विकास–काल के दौरान अधिगम और विकास का आधार है। यह सामान्यतः अधिगम और बाद के वर्षों में विशेष कर विषय सामग्री के अधिगम में समान रूप से महत्वपूर्ण है।

शिक्षक द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में मातृभाषा एवं विद्यालय भाषा के समावेश हेतु अनेक विशिष्ट शिक्षण दृष्टिकोण अपनाकर सभी विद्यार्थियों को शामिल किया जा सकता है।

- **प्रश्न पूछना**– यदि शिक्षक पूछे गए किसी प्रश्न के उत्तर में विद्यार्थियों को हाथ खड़े करने के लिए कहते हैं तो वही विद्यार्थी जवाब देने को प्रवृत्त होते हैं जो कक्षा में अधिक सजग रहते हैं, लेकिन अनेक ऐसे तरीके भी हैं जिनसे जवाबों के बारे में सोचने और प्रश्नों पर प्रतिक्रिया देने के लिए अधिक विद्यार्थियों को शामिल किया जा सकता है। शिक्षक विशिष्ट विद्यार्थियों से प्रश्न पूछ सकते हैं। शिक्षक पहले प्रश्न पूछें तथा फिर यह निर्णय लें कि कौन उत्तर देगा। फिर वह सामने बैठे हुए विद्यार्थियों की अपेक्षा कक्षा में पीछे या किनारे बैठे विद्यार्थियों से प्रश्न पूछें। विद्यार्थियों को सोचने के लिए समय दें और विशिष्ट विद्यार्थियों से अपना योगदान देने के लिए कहें। आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए जोड़ी या समूहकार्य का प्रयोग करें ताकि संपूर्ण कक्षा–चर्चा में प्रत्येक विद्यार्थी को शामिल कर सकें।
- **मूल्यांकन**– शिक्षक रचनात्मक मूल्यांकन के लिए तकनीकों की शृंखला विकसित करें, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी बेहतर ढंग से जानने में सक्षम हो। छिपी प्रतिभाओं और खामियों को उजागर करने के लिए शिक्षक को रचनात्मक होने की जरूरत है। कुछ विद्यार्थियों एवं उनकी योग्यताओं के बारे में सामान्यतः विचारों के कारण कुछ पूर्व धारणाएं बन जाती हैं जबकि रचनात्मक मूल्यांकन शिक्षक को सटीक जानकारी देगा। तब विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर प्रतिक्रिया देने के लिए शिक्षक बेहतर स्थिति में होगा।
- **समूह कार्य एवं जोड़ी में कार्य**– शिक्षक सावधानीपूर्वक यह विचार करें कि वह किस प्रकार अपनी कक्षा को समूहों या जोड़ियों में बांटेंगे, जिसमें सभी विद्यार्थी शामिल हों तथा उन्हें एक–दूसरे को महत्व देने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। शिक्षक यह सुनिश्चित करें कि सभी विद्यार्थियों को एक–दूसरे से सीखने और अपनी सीखी गई बातों पर विश्वास करने के लिए अवसर प्राप्त

हो। कुछ विद्यार्थियों में एक छोटे समूह में अपने विचारों को व्यक्त करने और प्रश्न पूछने के लिए तो आत्मविश्वास होगा किंतु हो सकता है कि संपूर्ण कक्षा के सामने उन्हें स्वयं को खड़ा करने में झिझक हो।

टिप्पणी

- **विशिष्टीकरण**– अलग–अलग समूहों के लिए अलग–अलग कार्य निर्दिष्ट करने से विद्यार्थियों को अपनी सीखी हुई जगह से शुरू करने और आगे बढ़ने में मदद मिलेगी। समाप्ति रहित कार्य निर्धारित करने से सभी विद्यार्थियों को सफल होने का अवसर प्राप्त होगा। विद्यार्थियों को विभिन्न कार्यों में विकल्प प्रदान करने से उन्हें उस कार्य के प्रति उत्तरदायित्व का अहसास करने और अपने अधिगम के लिए जवाबदेही स्वीकारने में मदद मिलेगी। व्यक्तिगत अधिगम आवश्यकताओं का ध्यान रखना कठिन होता है, खास तौर पर बड़ी कक्षा में, लेकिन अलग–अलग कार्यों और गतिविधियों का उपयोग कर इसे किया जा सकता है।
- **कक्षा भाषा सर्वेक्षण**– अपनी कक्षा में शिक्षक द्वारा एक भाषा सर्वेक्षण आयोजित किया जाना चाहिए। इस हेतु विद्यार्थियों के साथ उन भाषाओं के बारे में बातचीत प्रारंभ करें जिन्हें विद्यार्थी जानते हैं। शुरुआत यह पूछकर करें कि वे (विद्यार्थी) उन भाषाओं के बारे में बताएं जिनके कुछ शब्दों को वे समझ सकते हैं या जिस भाषा को वे धाराप्रवाह बोल या लिख सकते हैं। उनसे यह पूछें कि उन्होंने यह ज्ञान कहां से प्राप्त किया है। उदाहरण के लिए अपने माता–पिता या दादा–दादी से सीखा है या उसे किसी विशेष स्थान पर रहकर सीखा है, अथवा विद्यालय में पढ़कर सीखा है। चार्ट पेपर पर एक बड़ी तालिका बनाकर विद्यार्थियों को चार्ट पर उस स्थान पर सही का चिह्न लगाने को कहें, जिन भाषाओं को वे जानते हैं। कार्य पूर्ण होने पर सर्वेक्षण चार्ट कक्षा की दीवार पर लगाया जाए। अगर कोई विद्यार्थी सर्वेक्षण के दिन अनुपस्थित रहा हो तो उसके वापस आने पर उसे चार्ट के बारे में सूचित किया जाए। चालू सत्र के दौरान कक्षा में प्रवेश लेने वाले किसी नए विद्यार्थी के लिए निचले भाग पर अतिरिक्त पंक्तियों का प्रावधान रखा जाए। विद्यार्थी की आयु के आधार पर इस बात पर ध्यान देते हुए इस सर्वेक्षण को अधिक विस्तृत किया जा सकता है कि क्या वे दी गयी भाषाओं को समझते हैं, बोलते हैं अथवा पढ़ या लिख लेते हैं।

  निम्न सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा आर्थिक स्थिति वाली जातियों की भेदभावपूर्ण धारणाओं से यह हो सकता है कि कुछ विद्यार्थी इन समुदायों से संबंधित कुछ भाषाओं को जानने में असमर्थ हों अथवा दर्शाने के लिए अनिच्छुक हों, इसलिए इस गतिविधि में इस बात पर सकारात्मक रूप से जोर देना जरूरी है कि विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों का ज्ञान आमतौर पर लोगों के जीवन में और खासकर कक्षा के लिए मूल्यवान होता है।

  अल्पसंख्यक वर्ग की भाषाओं के अपने खुद के ज्ञान के बारे में शिक्षक बात करें, उस स्थिति में भी अगर वह विद्यार्थी असमर्थ हो या उन्हें सीखने को प्रेरित करें।

  यह तथ्य कि भाषाओं और बोलियों के बीच का भेद अक्सर परिवर्तनीय रहता है या यह संभावना कि हो सकता है कि विद्यार्थियों को उन भाषाओं की जानकारी

टिप्पणी

ही न हो, जिन्हें वे बोलते हैं। ये ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से इस प्रकार के ज्ञान के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करने के लिए हमेशा चीजें स्पष्ट नहीं रहती हैं, इसलिए चार्ट को एक प्रारंभिक बिंदु के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसकी जानकारी को विद्यार्थियों के सहयोग से समय–समय पर संशोधित किया जाए।

- **स्थानीय भाषा के शब्दों का उपयोग करना**– कुछ समय पूर्व छत्तीसगढ़ के स्कूलों में नौवीं–दसवीं कक्षाओं के लिए हिंदी के प्रश्न पत्र का छत्तीसगढ़ी में जवाब देने की बात हुई तो इसका सबसे ज्यादा विरोध स्थानीय शिक्षकों द्वारा ही किया गया। उनका कहना था कि हम हिंदी विषय में छत्तीसगढ़ी के इस्तेमाल को बढ़ावा कैसे दे सकते हैं। इस तरह का नजरिया बहुभाषिकता के विरोध वाला नजरिया है, जो यह मानकर चलता है कि विचारों का आदान–प्रदान और अभिव्यक्ति केवल मानक भाषा में ही हो सकती है। स्कूल में स्थानीय भाषाओं को महत्व देने वाली बात से वे ज़रा भी सहमत नहीं थे। बच्चों को भाषा की कक्षा में खामोश कर दिया जाता है। यह स्थिति बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि बच्चे की मातृभाषा उसकी पहचान और ज्ञान की भाषा है। यह सामाजिक ताने–बाने के बीच संवाद को बरकरार रखने वाली भाषा है।
- **वर्णमाला चार्ट तैयार करना**– शिक्षक विद्यार्थियों की मातृभाषा से उपयुक्त शब्द ढूंढ़कर ऐसा वर्णमाला चार्ट या पुस्तक तैयार करने के लिए उनका प्रयोग कर सकते हैं जो विद्यार्थियों को हिंदी अक्षर सिखाने में सहायता करे। अगर शिक्षक उस विद्यार्थी की मातृभाषा से अच्छी तरह से परिचित नहीं हैं तो उपयुक्त शब्दों के लिए सहकर्मियों, समुदाय के सदस्यों या स्वयं सीधे विद्यार्थियों से पूछ सकते हैं। विद्यार्थियों को उस चार्ट या पुस्तक में चित्र काटकर चिपकाने की गतिविधि में शामिल कर सकते हैं।
- **बहुभाषी अभ्यास को संयोजित करना**– शिक्षक किस प्रकार विद्यार्थियों द्वारा लायी गयी भिन्न–भिन्न भाषाओं को स्वीकार कर महत्व दे सकते हैं, इस हेतु विचारों की एक सूची बनाकर प्रेरणा के लिए अपने सहकर्मियों से बात कर या उनकी कक्षाओं में जाकर अपनी कक्षा में लागू करने के लिए किसी एक विकल्प को चुनें। कुछ सुझाव यहां सूचीबद्ध किए गए हैं–
  - **अभिवादन**– शिक्षक दिन की शुरुआत अपने विद्यार्थियों द्वारा विद्यालयी भाषा में अभिवादन करके करे और फिर उनमें से प्रत्येक विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में पूरी कक्षा को एक–एक करके जवाब दे। स्कूल की समाप्ति पर अलविदा कहते समय भी यही प्रक्रिया अपनाएं।
  - **लेबल**– अपनी कक्षा की वस्तुओं (जैसे कि खिड़की, दरवाजा, ब्लैकबोर्ड, अलमारी) पर हिंदी और अपने विद्यार्थियों की मातृभाषा, दोनों भाषाओं में लेबल लगाएं। अलग–अलग भाषाओं में अंतर करने में सहायता हेतु अलग–अलग रंगों वाले पेन या कार्ड का उपयोग करें। अगर आपके बहुभाषी विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में साक्षर हैं तो वे स्वयं अनूदित लेबल लिखने में सहायता कर सकते हैं।

टिप्पणी

– **बहुभाषी शब्द दीवार**– अपने विद्यार्थियों की मातृभाषा में उपयोगी शब्दों और अभिव्यक्तियों (उदाहरण के लिए, 'नमस्कार', 'अलविदा', 'क्षमा करें', 'आपका धन्यवाद') को पोस्ट करके अपनी कक्षा में एक विकासशील शब्द दीवार बनाएं। नए शब्दों का सृजन करने के लिए, अपने विद्यार्थियों को आमंत्रित करने के अवसर खोजें। उपरोक्त लेबल की तरह, भाषाओं में अंतर करने के लिए अलग–अलग रंगों वाले पेन या कार्ड का उपयोग करें।

– **बहुभाषी पठन सामग्री**– उन भाषाओं में पुस्तकों, पत्रिकाओं, लघुपत्रों और अन्य पाठ्य सामग्री का संग्रह प्रारंभ करें, जिन्हें विद्यार्थी बोलते हैं और इनको अपने पठन–पाठन में शामिल कर दें।

– **बहुभाषी शब्दकोश**– शिक्षक अपने विद्यार्थियों को द्विभाषीय या बहुभाषी शब्दकोश तैयार करने की गतिविधि में शामिल करें। विद्यार्थियों की जरूरतों पर निर्भर करते हुए, ये शब्दकोश आसान शब्दों और चित्रों, रोजमर्रा के परिवेश (जैसे कि स्कूल, घर, पार्क, शरीर के अंग, जानवर) से संबंधित शब्दसंग्रह या विषय–विशिष्ट शब्दों (उदाहरण के लिए, गणित, विज्ञान और पर्यावरण विज्ञान से संबंधित) पर केंद्रित हो सकते हैं।

– **नवीन शब्दों की खोज**– अगर विद्यार्थी अंग्रेजी का अध्ययन कर रहे हैं, तो वे एक ऐसा बहुभाषी शब्दकोश संकलित कर सकते हैं, जिसमें शब्दों को अंग्रेजी, हिंदी और उनकी मातृभाषा में सूचीबद्ध किया गया हो। उन शब्दकोशों को ऐसी जगह पर रखें, जहां से सभी विद्यार्थी उनका उपयोग कर सकें। शिक्षक नए शब्दों की एक सूची तैयार करें और अपने विद्यार्थियों के लिए कुछ समय निर्धारित करें ताकि वे नियमित रूप से निरंतर अन्य शब्दों को भी उस शब्दकोश में शामिल कर सकें।

– **कक्षा में भाषा अनुवाद**– भाषा अनुवाद तुलनात्मक रूप से पुराने अभ्यास के लिए एक नया शब्द है, जिसमें ऐसी भाषाओं को, जिनके बारे में दूसरों को जानकारी हो, दूसरी भाषा में बदला जाता है, ताकि संचार की क्षमता को बढ़ाया जा सके। भाषा अनुवाद एक लचीला बहुभाषावाद है। एक ही उच्चारण में, चाहे इसमें भिन्न–भिन्न भाषाओं के संयोजन तत्व शामिल हों या नहीं ('कोड–स्विचिंग') अथवा किसी कार्य के भिन्न–भिन्न हिस्सों में भाषाओं के बीच अदला–बदली करना, यह किसी व्यक्ति के भाषायी संसाधनों को उनके सर्वोत्तम प्रभाव के साथ नियोजित करने का एक प्राकृतिक माध्यम है। यह इसलिए उत्पन्न होता है, क्योंकि व्यक्ति किसी कथित भाषा को किसी विशिष्ट कार्य, विषय या परिस्थिति से संबद्ध कर देते हैं या क्योंकि कुछ अवधारणाएं (जैसे कि 'इंटरनेट') सामान्यतः किसी भाषा विशेष में अधिक व्यक्त की जाने वाली समझी जाती हैं।

भाषा अनुवाद ऐसी प्रक्रिया है जिसका उपयोग अधिकांश लोग, इसके बारे में कुछ सोचे बिना, अपने मित्रों, परिवार और समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ हर समय करते रहते हैं। कक्षा में भी शिक्षक भाषा अनुवाद की इस प्रक्रिया में विद्यार्थियों को अनेक प्रकार से शामिल कर सकते हैं–

टिप्पणी

- भाषाओं के बीच अनुवाद करना।
- भिन्न–भिन्न भाषाओं के साथ तुलना करना और आनंदित बने रहना।
- बोले और लिखे जाने वाले समान उच्चारण में भिन्न–भिन्न भाषाओं से शब्दों और अभिव्यक्तियों को मिलाना।
- किसी गतिविधि के एक हिस्से में मातृभाषा का उपयोग करना और दूसरे हिस्से में स्कूल की भाषा का उपयोग करना।

इस प्रकार विद्यार्थी जानकारी को एक भाषा में सुन सकते हैं और उसके भावार्थ को दूसरी भाषा में मौखिक रूप से समझा सकते हैं या उसके लिखित नोट बना सकते हैं। इसी प्रकार वे एक भाषा में कोई पाठ पढ़ सकते हैं और दूसरी भाषा में उसके बारे में बात कर सकते हैं या लिखित रूप में उसका सारांश बता सकते हैं। शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों के लिए एक संसाधन के रूप में भाषा अनुवाद के कई शैक्षणिक लाभ हैं, क्योंकि यह–

- बहुभाषावाद द्वारा उसे किसी समस्या की बजाय एक मूल्यवान संपत्ति के रूप में देखने हेतु या आरंभिक अध्यापन के समय एक अस्थायी सहभागिता वाले उपकरण के रूप में मान्य बनाता है।
- केवल एक भाषा में संभावनाओं की तुलना में एक अधिक व्यापक, कुशल और प्रभावी अध्यापन और शिक्षण तकनीक प्रस्तुत करता है।
- विद्यालय परिसर के अंदर और बाहर उपयोग हेतु व्यापक और विविध संचारात्मक पटल विकसित करने के लिए अवसर प्रदान करता है।

कक्षा भाषा सर्वेक्षण आयोजित करने, बहुभाषीय कक्षा परिवेश का निर्माण करने एवं भाषा अनुवाद की गतिविधियों में शामिल करके इस प्रकार के निरंतर अभ्यास से शिक्षक विद्यार्थियों के सामाजिक, संज्ञानात्मक और संचारपरक विकास पर स्थायी सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. डॉ. कार्लटन वाशबर्न ने शिक्षा की किस प्रणाली का प्रतिपादन किया था?

   (क) डाल्टन प्रणाली (ख) विनेटिका प्रणाली

   (ग) डेक्रोली प्रणाली (घ) कान्ट्रैक्ट प्रणाली

2. भारत के विभिन्न राज्यों में द्विभाषी माध्यम के कितने केंद्रीय विद्यालय हैं जिनमें अंग्रेजी व हिंदी भाषा के अध्ययन के साथ–साथ एक अनिवार्य भाषा का भी अध्ययन कराया जाता है?

   (क) 200 (ख) 300

   (ग) 500 (घ) 700

टिप्पणी

4.3 छात्रों की शिक्षण शैली और सीखने की शैली के संदर्भ में शिक्षक की जटिल भूमिका

शिक्षा एक अविरल प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो किसी निश्चित समय पर शुरू व खत्म होती है बल्कि यह तो एक सतत् प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर मृत्यु–पर्यन्त तक चलती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार तो यह जन्म से पहले ही शुरू हो जाती है।

शिक्षण के विषय में विभिन्न विद्वानों के विचार – शिक्षण को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

1. ''शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका सम्पादन अन्तःपारस्परिक सम्बन्धों के माध्यम से अधिगम को बढ़ाना होता है। –बी.ओ. स्मिथ
2. शिक्षण उन परिस्थितियों की व्यवस्था एवं संचालन है जिसमें अंतराल व बाधाएं होती हैं जिन्हें व्यक्ति दूर करने के प्रयासों के फलस्वरूप वह अधिगम करता है।'' –जॉन ब्रूबेकर
3. शिक्षण एक परिपक्व एवं परिपक्व व्यक्ति के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है जिसका प्रभाव पिछले (अपरिपक्व व्यक्ति) को शिक्षित करने के लिए बनाया जाता है। –एस.सी. मॉरीसन
4. शिक्षण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच आमने–सामने है जिसमें एक व्यक्ति (शिक्षक) दूसरे प्रतिभागियों, विद्यार्थियों में विशेष परिवर्तन लाने की इच्छा रखता है।'' –जैक्सन

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि शिक्षण एक जटिल, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों से है तथा दोनों ही एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं।

एडम्स ने शिक्षा को द्विमुखी प्रक्रिया कहा है जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व के व्यवहार को सुधारने के लिए उस पर अपना प्रभाव डालता है। उसके कथनानुसार शिक्षा के दो मुख्य अंग है। एक बालक दूसरा शिक्षक/शिक्षा के लिए इन दोनों के मध्य आदान–प्रदान होता रहता है। शिक्षक अपने व्यक्तित्व के प्रभाव तथा ज्ञान के विभिन्न अंगों द्वारा बालक के आचार तथा व्यवहार में परिवर्तन तथा सुधार करता है जिससे उसका सम्यक् विकास सम्भव हो सके। रॉस ने भी शिक्षा को द्विमुखी प्रक्रिया माना है। उनका विचार है कि चुम्बक के समान शिक्षा में भी ध्रुव होते हैं अतः यह एक द्विमुखी प्रक्रिया है।

शिक्षा की द्विमुखी प्रक्रिया

जैसे–जैसे समाज में परिवर्तन हुआ वैसे–वैसे ही इसका रूप भी जटिल हुआ। इसलिए आधुनिक मत के अनुसार अब शिक्षा की प्रक्रिया का रूप त्रिमुखी हो गया है।

टिप्पणी

इसके तीन अंग हैं–1. शिक्षक जिसके बिना शिक्षा की प्रक्रिया का चलना असम्भव है। 2. विद्यार्थी जिसके बिना भी शिक्षा की प्रक्रिया असम्भव है तथा 3. पाठ्यक्रम जिससे हमारा तात्पर्य केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही नहीं वरन् उस समस्त ज्ञान, कला, कौशल, भावों, विचारों तथा अनुभवों से है जिनसे बालक का सर्वांगीण विकास होता है।

शिक्षा जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है और शिक्षण, शिक्षा देने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया। यह प्रक्रिया किसी न किसी रूप में जीवन भर चलती रहती है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा की प्रक्रिया पूर्णतः मनोवैज्ञानिक मानी गई है और इसके अंगों में शिक्षक, शिक्षार्थी तथा पाठ्यक्रम को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

शिक्षा प्रदान करने वाला कारक शिक्षक होता है और शिक्षा प्राप्त करने वाला शिक्षार्थी। बालक की शिक्षा का मुख्य साधन पाठ्यक्रम ही है। बिना पाठ्यक्रम की सहायता के अध्यापक अध्यापन कार्य नहीं कर सकता और न शिक्षार्थी के व्यक्तित्व के विकास में कोई सहायता दे सकता है। वनिंघम के अनुसार अध्यापक एक कलाकार है, उसकी तूलिका के रूप में कला के निर्माण में सहायक एवं पाठ्यक्रम ही है। इसी तूलिका को लेकर यह बालक को अपने आदर्शों के अनुरूप रंग दे सकता है। इस कार्य के लिए उसका कलागृह विद्यालय होता है। पाठ्यक्रम द्वारा बालक तथा समाज दोनों की प्रगति होनी चाहिए।

शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक को कक्षा–शिक्षण के समय पाठयोजना में में निर्धारित क्रियाकलापों के अतिरिक्त शिक्षण–परिस्थितियों के अनुसार भी तुरंत परिवर्तन हेतु निर्णय लेने पड़ते हैं। स्पष्टतः जो शिक्षक इन अपेक्षित परिवर्तनों को शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं जिज्ञासाओं, आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं को देखते हुए शिक्षण–कार्य करता है वह शिक्षार्थियों को अपने लक्ष्य तक पहुंचा देता है।

परन्तु शिक्षक को विभिन्न प्रकार के शिक्षार्थियों को पढ़ाने के लिए बहुत लगन तथा परिश्रम की आवश्यकता होती है इसीलिए शिक्षण कार्य को एक जटिल गतिविधि माना जाता है।

4.3.1 शिक्षक के निजी और व्यावसायिक गुण

एक शिक्षक छात्रों के विकास का महत्वपूर्ण और अभिन्न हिस्सा होता है। जब छात्र स्कूल में प्रवेश करते हैं, तो यह शिक्षकों की जिम्मेदारी है कि वे छात्रों को भावनात्मक समर्थन दें और व्यवहार से संबंधित मार्गदर्शन प्रदान करें ताकि वे जिम्मेदार वयस्क के रूप में विकसित हो सकें। यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षक प्रभावी हों, ताकि वे सीखने और सिखाने को सुनिश्चित कर सकें और बदले में, एक प्रभावी स्थान बनाएं। अप्रभावी शिक्षक किसी भी तरीके से सीखने और सिखाने के लिए योगदान नहीं करते और

टिप्पणी

वास्तव में एक ही गलती को बार–बार दोहराते हैं। एक प्रभावी शिक्षक के लक्षण निम्नलिखित हैं–

- एक प्रभावी शिक्षक व्यवस्थित और स्पष्ट होता है और एक स्पष्ट तरीके से अवधारणा को स्पष्ट करता है।
- एक प्रभावी शिक्षक अच्छी तरह से तैयार है और अवधारणाएं समझाने के लिए चित्रों, उदाहरणों और अन्य तरीकों का उपयोग करता है।
- एक प्रभावी शिक्षक अपने या अपने क्षेत्र की पूरी जानकारी रखता है और एक स्पष्ट और विश्वसनीय तरीके से विषय से संबंधित तथ्य और आंकड़े प्रस्तुत करता है।
- एक प्रभावी शिक्षक एक गतिशील और उत्साही व्यक्ति होता है और उसमें आत्मविश्वास की एक चमक होती है।
- एक प्रभावी शिक्षक में प्रोत्साहित करने का गुण होता है और वह कक्षा में सीधी बातचीत करता है और कक्षा को नियंत्रित कर सकता है।
- एक प्रभावी शिक्षक छात्रों को स्वतंत्रता से सीखने के लिए और उनके विचारों को प्रोत्साहित करता है और यह सुनिश्चित करता है कि छात्र एक प्रभावी तरीके से सीखें।
- एक प्रभावी शिक्षक की मूल्यांकन की विधि निष्पक्ष होती है।
- एक प्रभावी शिक्षक हमेशा अपने शिक्षण और उसकी गुणवत्ता के बारे में चिंतित रहता है।

कहा गया है कि एक अप्रभावी शिक्षक कई गलतियां करता है। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं–

- कक्षा में जब कोई प्रश्न पूछा जाता है तब एक अप्रभावी शिक्षक आमतौर पर प्रतिक्रिया पाने में विफल रहता है। इसका कारण यह है कि वह शिक्षक स्वेच्छा से उत्तर देने वालों का आवाहन नहीं करता बल्कि इंतजार करता है कि छात्र ही स्वेच्छा प्रकट करें। ऐसे मामलों में होता यह है कि या तो अध्यापक किसी भी प्रतिक्रिया को प्राप्त करने में विफल रहता है या वही स्वेच्छा प्रकट करने वाले दो या तीन छात्र हर बार उत्तर देते हैं। आगे चलकर यह शिक्षण को और भी अप्रभावी बना देता है।
- एक अप्रभावी शिक्षक छात्रों से उदासीन भाव से प्रश्न करता है। अर्थात, शिक्षक उन्हें सोचने के लिए पर्याप्त समय दिए बिना जवाब देने के लिए कहता है। इस मामले में यह होता है कि अधिकतर छात्र उत्तर देने में विफल रहते हैं और जब शिक्षक किसी एक छात्र को उत्तर देने के लिए कहता, तो अन्य छात्र सोचना बंद कर देते हैं और राहत की सांस लेते हैं। यह शायद प्रतिक्रिया लेने का सबसे अप्रभावी तरीका है। इसके बजाय, शिक्षक जब प्रश्न पूछे उससे पहले छात्रों को अवधारणा की समझ बनाने के लिए समय दिया

टिप्पणी

जाना चाहिए। इस तरह से अधिकांश छात्र प्रतिक्रिया देने के लिए तैयार हो सकेंगे।

- अप्रभावी शिक्षक आम तौर पर कक्षा में एक विशिष्ट अवधारणा को समझाने के लिए व्याख्यान या पावर प्वाइंट प्रस्तुति विधि का पालन करते हैं। जब ऐसा होता है, तब छात्रों की रुचि समाप्त हो जाती है और वे निष्क्रिय श्रोता हो जाते हैं। शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह कक्षा को एक आदान–प्रदान का सत्र बनाए जिससे अधिकतम सीखना संभव हो।
- अप्रभावी शिक्षक विभिन्न प्रकार के निर्देश और शिक्षण सामग्री का उपयोग करने में विफल रहते हैं। अप्रभावी शिक्षक आम तौर पर कक्षा में अध्यापन के लिए चाक और बोर्ड विधि का पालन करते हैं और पर्याप्त चित्रों और उदाहरणों के साथ एक अवधारणा का समर्थन करने में विफल रहते है। छात्रों के लिए एक प्रभावी ढंग से अवधारणा समझने को यह मुश्किल बना देता है। वास्तव में, अप्रभावी शिक्षक कक्षा को आदान–प्रदान का स्थान नहीं बना पाते।
- अप्रभावी शिक्षक वर्ग में सहकारी शिक्षा को बढ़ावा देने में सफल नहीं होते और छात्रों को व्यक्तिगत रूप से काम करने से जोड़े रखते हैं। अधिकांश शिक्षकों की समझ में, छात्रों का समूह में काम करना कक्षा में शोर पैदा करता है। हालांकि यह सच नहीं है। सहकारी विधि से सीखना और समूहों में काम करने की विधि प्रभावी तरीके से जानने में छात्रों को सक्षम बनाती है और उन्हें एक बेहतर ढंग से संज्ञानात्मक क्षमताओं को विकसित करने में सक्षम बनाती है।
- अप्रभावी शिक्षक प्रासंगिकता को स्थापित करने में विफल रहते हैं। इसका मतलब है कि अप्रभावी शिक्षक वास्तविक जीवन की स्थितियों के संदर्भ में छात्रों को नहीं पढ़ा पाते और सिखाई जा रही सामग्री की प्रासंगिकता को विकसित करने में विफल होते हैं। अधिकतर परिस्थितियों में, अप्रभावी शिक्षक शिक्षणीय सामग्री और संदर्भ में संबंध स्थापित नहीं कर पाते और न उस संदर्भ को स्पष्ट कर पाते हैं जिसमें छात्रों को विषयवस्तु लागू करने की जरूरत होती है।
- अप्रभावी शिक्षक आकलन और मूल्यांकन के लिए परीक्षा विधि पर भरोसा करते हैं। यह अप्रभावी शिक्षकों की एक विशेषता होती है कि वे छात्रों के ज्ञान की महारत का परीक्षण करने के लिए लंबी–लंबी परीक्षाएं लेते हैं। ये परीक्षाएं किसी भी रूप में छात्रों की समस्या को सुलझाने के कौशल का आकलन नहीं करतीं।
- अप्रभावी शिक्षक सालों से सिखाई जा रही सामग्री में अटके रहते हैं। वे सामग्री में परिवर्तन लाने के बारे में या उसे उन्नत करने के लिए किसी भी तरीके से प्रयास नहीं करते। अप्रभावी शिक्षक शिक्षण सामग्री या अवधारणा की शिक्षण पद्धति को किसी भी रूप में संशोधित नहीं करते और इसलिए छात्रों को एक प्रभावी तरीके से सीखने में मदद करने में असफल रहते हैं।

टिप्पणी

- अप्रभावी शिक्षक आम तौर पर अपने शिक्षण उद्देश्यों को परिभाषित किए बिना सिखाते हैं। अधिकांश समय, शिक्षक सीखने के परिणामों को भी अच्छी तरह से परिभाषित नहीं करते और एक विशिष्ट शिक्षण सत्र के अंत में क्या और कितना छात्रों को जानने के लिए सक्षम होना चाहिए इस पर विचार किए बिना शिक्षण जारी रखते हैं।
- अप्रभावी शिक्षकों को छात्रों का अपमान करते हुए देखा गया है। इससे अंततः कक्षा शिक्षक के खिलाफ हो जाती है और उसकी कक्षा और सीखने का पर्यावरण अप्रभावी हो जाता है।

शिक्षक की विशेषताएं

एक अध्यापक या अध्यापिका को प्रभावी होने के लिए, कुछ व्यक्तिगत और साथ ही व्यावसायिक विशेषताओं का प्रदर्शन करना चाहिए। एक प्रभावी अध्यापक या अध्यापिका के व्यक्तिगत गुणों में निम्नलिखित विशेषताएं शामिल हैं–

- एक अध्यापक या अध्यापिका में इतना अच्छा पारस्परिक और संचार कौशल होना चाहिए कि वह एक स्पष्ट तरीके से एक अवधारणा समझा सके और छात्रों को इस तरह से समझा सके कि शिक्षण सर्वाधिक रूप से प्रभावी बन सके।
- एक शिक्षक को इस अर्थ में छात्रों की पंहुच में होना चाहिए कि उसका व्यक्तित्व छात्रों को भयभीत करने वाला न हो। छात्र किसी भी समस्या में मदद और मार्गदर्शन के लिए किसी भी समय शिक्षक का सामना कर सकें।
- सहानुभूति एक शिक्षक की महत्वपूर्ण विशेषता है। एक शिक्षक को छात्रों के साथ सहानुभूति करने में सक्षम होना चाहिए। इससे छात्र शिक्षक की उपस्थिति में सहज महसूस कर सकते हैं और सीखने के लिए अपने लिए आवश्यक समय ले सकते हैं।
- एक शिक्षक में अच्छा श्रोता होने का कौशल होना चाहिए ताकि वह छात्रों की समस्याओं को सुन सके। श्रोता होने का कौशल होने से शिक्षक आलोचना को आसानी से स्वीकार कर सकता है और एक बेहतर छात्र–शिक्षक रिश्ते बनाने और प्रभावी शिक्षण के लिए अपने व्यक्तित्व और शिक्षण रणनीतियों में परिवर्तन लाने में सक्षम बनता है।
- एक शिक्षक में छात्रों की मदद करने और उन्हें पढ़ाने की वास्तविक इच्छा होनी चाहिए। सिखाने की और ज्ञान प्रसार की इच्छा शिक्षक के भीतर से आनी चाहिए, वरना शिक्षण अप्रभावी हो जाता।
- एक शिक्षक के सहायक होने का अर्थ है कि छात्रों को सीखने और एक अवधारणा को समझने में उसे छात्रों का मार्गदर्शन करना चाहिए। एक शिक्षक को कभी भी विद्यार्थियों की पढ़ाई का निर्देशन नहीं करना चाहिए, क्योंकि निर्देशन सीखने को अप्रभावी बना देता है।

टिप्पणी

- एक शिक्षक को हमेशा ईमानदार होना चाहिए और छात्रों को उनकी जरूरत के अनुसार सही जवाब और सुझाव देना चाहिए। एक शिक्षक को छात्रों से पूछताछ के लिए इस तरह सक्षम होना चाहिए जिससे छात्रों की विचार क्षमता जाग जाए।
- एक शिक्षक को एक ऐसे उदार शिक्षण–सत्र का निर्माण करना चाहिए, जहां छात्र चर्चा कर सकें, बहस कर सकें और इस तरह से सीख सकें जिसमें वे अधिक सहज महसूस करते हों।
- एक अध्यापक या अध्यापिका को स्वयं से और साथ ही छात्रों से यथार्थवादी अपेक्षाएं रखनी चाहिए। यह महत्वपूर्ण है शिक्षक यथार्थवादी लक्ष्यों और उद्देश्यों को निर्धारित करें।

एक शिक्षक के व्यावसायिक गुण निम्नलिखित हैं–

- दूसरों को शिक्षित करने के लिए एक शिक्षक को अच्छी तरह से शिक्षित होना चाहिए। एक अध्यापिका या अध्यापक को उस विषय की अच्छी जानकारी होना जरूरी है जिसे वह सिखाती या सिखाता है तभी सही अर्थों में शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है।
- शिक्षक के पास पर्याप्त पेशेवर अनुभव होना चाहिए ताकि शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सके।
- जिस संगठन या संस्था में शिक्षक काम कर रहा है, वहां की नीतियों, प्रक्रियाओं और दिनचर्या के साथ उसे अच्छी तरह से वाकिफ होना चाहिए। यह शिक्षकों के यथार्थवादी लक्ष्यों को निर्धारित करने में मदद करता है।
- शिक्षक को छात्रों को पढ़ाने के लिए शिक्षण के बारे में उत्साहित होना चाहिए और उसमें पढ़ाने के लिए विश्वास के साथ गतिशीलता और ऊर्जा का होना आवश्यक है।
- छात्रों को विभिन्न दृष्टिकोणों से जानने के लिए सक्षम करने के लिए एक पेशेवर के रूप में, एक शिक्षक को शिक्षण तकनीकों की एक विस्तृत श्रृंखला का उपयोग करने में सक्षम होना चाहिए।
- एक अध्यापक या अध्यापिका जिस विषय को सिखाएं उन्हें उसका विशेषज्ञ होना चाहिए, ताकि वे विशेषज्ञता और अनुभव के आधार पर सुझाव दे सकें।
- एक पेशेवर के रूप में, शिक्षक छात्रों को इस तरह से मदद करने में सक्षम होना चाहिए कि वे इस तरह से सीखें जिससे बाद में वे पेशेवर जीवन के लिए तैयार हो सकें।

4.3.2 शिक्षण अध्ययन में शिक्षक की ज्ञान–संचारक, प्रतिमान, सुविधाकारक, वार्ताकारक एवं सह–शिक्षार्थी के रूप में भूमिका

टिप्पणी

अध्यापन एक लक्ष्य आधारित गतिविधि है। एक अच्छा शिक्षक हमेशा अपने या अपने लक्ष्यों को एक उचित विधि से रेखांकित करता है और अपने लक्ष्यों को न्यायोचित ठहराता है। शिक्षक को अपने उन लक्ष्यों को पाने के लिए विभिन्न भूमिकाओं को निभाना पड़ता है जो उसने निर्धारित किए होते हैं और वे ऐसे लक्ष्य होते हैं जो यह सुनिश्चित करते हैं कि छात्र प्रभावी ढंग से सीखें।

ज्ञान का ट्रांसमीटर (प्रसारक)

शिक्षक की भूमिकाओं में से एक ज्ञान का ट्रांसमीटर होना है। ज्ञान के ट्रांसमीटर की भूमिका के अंतर्गत, एक शिक्षक छात्रों को कक्षा में जानने में मदद करता है। ज्ञान के एक ट्रांसमीटर के रूप में, छात्र को समर्थ बनाने पर ध्यान केंद्रित करता है और छात्र उस ज्ञान को प्राप्त करते हैं जो उनके पाठ्यक्रम में तय किया गया है। नए ज्ञान की रचना किए बिना शिक्षक इस बात पर बल देता है कि छात्र मौजूदा ज्ञान को सीखें। शिक्षण और सीखना शिक्षक केंद्रित गतिविधि है जिसमें शिक्षक शिक्षण का निर्देशन करता है और छात्र क्या सीखेंगे इसकी जानकारी रखता है। दूसरे शब्दों में, छात्र एक विशिष्ट अवधारणा के बारे में क्या सोचते हैं और अवधारणा को समझना कैसे अधिक प्रभावी होगा इसे जानने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जाता है।

एक ज्ञान के ट्रांसमीटर के रूप में, शिक्षक जो सिखाया जाना है उसका मौजूदा ज्ञान सामग्री से चयन करता है। शिक्षक उस सामग्री का चयन करता है जिसे वह भली–भांति जानता है और जिसका शिक्षण कर सकने का उसे पूरा भरोसा होता है। शिक्षक छात्रों को उस नए ज्ञान की रचना का अवसर नहीं देता जो उसके मौजूदा ज्ञान में जुड़ सके। शिक्षक विशिष्ट विषयों से संबंधित सूचना और बुनियादी तथ्यों को पंहुचाता है। शिक्षण प्रक्रिया क्रमिक प्रक्रिया है जिसके तहत शिक्षक यह सुनिश्चित करता है कि छात्र निर्देशों का प्रभावी तरीके से पालन करें। एक ज्ञान ट्रांसमीटर के रूप में, शिक्षक जो सिखाता है उसका विशेषज्ञ होता है और छात्र उसी क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिस क्षेत्र का वह शिक्षक विशेषज्ञ है।

ज्ञान के ट्रांसमीटर के रूप में शिक्षक इस बात पर बल नहीं देता कि छात्र आजीवन काम आने वाली दक्षताओं को प्राप्त करें। शिक्षक इस बात पर भी बल नहीं देता कि छात्रों में समस्याओं का समाधान करने और महत्वपूर्ण चिंतन की दक्षताओं का विकास हो सके। ज्ञान के ट्रांसमीटर के रूप में शिक्षक केवल व्याख्यान देता है और इस पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता कि छात्रों ने विषय को सीखा या नहीं। उन्होंने सिखाए गई बातों को कितनी अच्छी तरह समझा इसकी उसे कोई चिंता नहीं होती।

प्रेरणास्रोत

एक प्रेरणास्रोत के रूप में, शिक्षक द्वारा छात्रों को उत्कृष्टता के लिए और सर्वोत्तम परिणामों को पाने के प्रयास करने के लिए प्रतिबद्ध होने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

टिप्पणी

छात्र स्कूलों में अपने समय का सबसे अधिक भाग खर्च करते हैं और इसलिए यह शिक्षकों की जिम्मेदारी है कि वे बेहतरीन तरीके से छात्रों का मार्गदर्शन करें। शिक्षकों को इस प्रकार प्रेरणास्रोत बनना चाहिए कि छात्र बेहतरीन तरीके से सीखें। यह शिक्षक ही है जो प्रेरणास्रोत के रूप में छात्रों को महत्वपूर्ण जीवन सबक देता है और उनके समग्र विकास को सुनिश्चित करता है।

अनुसंधान बताता है कि चूंकि छात्र स्कूल में समय के सबसे बड़े भाग को खर्च करते हैं, इसलिए उनमें अपने शिक्षकों और उनके व्यवहार की नकल करने का रुझान होता है। छात्र आमतौर पर शिक्षकों को अपना प्रेरणास्रोत बना लेते हैं इसलिए वे उनके नक्शेकदम पर चलते हैं। इसलिए यह शिक्षकों की जिम्मेदारी बनती है कि वे सकारात्मक व्यवहार और दृष्टिकोण का प्रदर्शन करें ताकि छात्रों का भी वैसा ही विकास हो।

एक प्रेरणास्रोत के रूप में, शिक्षक की निम्नलिखित जिम्मेदारियां होती हैं–

- **सकारात्मक विकल्प चुनने का प्रेरणास्रोत बनना**– एक प्रेरणास्रोत के रूप में, यह जरूरी है कि शिक्षक सकारात्मक विकल्प चुनने का प्रदर्शन करें या ऐसे निर्णय लें जो सही हों। शिक्षकों के लिए यह भी आवश्यक है वे निर्णयों को इस तरह लागू करें कि जब छात्र भी मिलती–जुलती परिस्थिति में हों तो वे भी उसी तरह से निर्णय ले सकें और उनसे सकारात्मक परिणामों को प्राप्त करें।
- **सोचने का स्पष्ट रूप**– एक रोल मॉडल के रूप में, अध्यापक को छात्रों को यह दिखाना चाहिए कि कैसे उनके द्वारा एक समस्याग्रस्त स्थिति में सोचा जाता है। एक रोल मॉडल के रूप में शिक्षक द्वारा छात्रों को इस तरह सक्षम बनाना चाहिए कि वे किसी समस्या का आलोचनात्मक विश्लेषण कर सकें और सर्वोत्तम निर्णय लेने में समर्थ हों। इससे छात्रों की तर्क क्षमता का विकास करने में मदद मिलेगी।
- **गलती करना और माफी मांगना**– रोल मॉडल के रूप में, शिक्षकों को छात्रों को यह सीखने में सक्षम करना चाहिए कि कोई भी सर्वगुण संपन्न नहीं है और हर कोई गलती करता है। रोल मॉडल के रूप में, शिक्षकों को छात्रों को यह सीखने में सक्षम करना चाहिए कि गलती किसी से भी हो सकती है और उसे सुधारा भी जा सकता है। उसे यह अनुभव कराना चाहिए कि गलती होने पर माफी मांगना सुधार की दिशा में सबसे पहला और महत्वपूर्ण कदम होता है। जो अपनी गलती को स्वीकार कर लेता है वही उसे सुधार सकता है। इसलिए माफी मांगना गलतियों को सुधारने के लिए सर्वोत्तम तरीकों में से एक है।
- **आत्मानुशासन**– यह वास्तव में सबसे महत्वपूर्ण सकारात्मक व्यवहार है जिसका प्रदर्शन करते हुए शिक्षकों द्वारा इसे अपनाने के लिए छात्रों को सक्षम किया जाना चाहिए। रोल मॉडल के रूप में शिक्षकों को समय की पाबंदी और

टिप्पणी

प्रतिबद्धता (मजबूत इरादे) का प्रदर्शन करना चाहिए। रोल मॉडल के रूप में शिक्षकों को छात्रों को यह सीखने में मदद करनी चाहिए कि कोशिश करते रहना और पीछे न हटना महत्वपूर्ण है।

- **सम्मान प्रदर्शन**– रोल मॉडल के रूप में, छात्रों के द्वारा दूसरों के प्रति सम्मान दिखाने के महत्व को जानने में शिक्षकों को मदद करनी चाहिए। दूसरों के प्रति सम्मान रखने से ही व्यक्ति स्वयं भी सम्मान का अधिकारी बनता है इसलिए हमें दूसरों के प्रति सम्मान की भावना दिखानी चाहिए, इस महत्वपूर्ण गुण को एक रोल मॉडल शिक्षक अपने व्यवहार द्वारा छात्रों को सिखा सकता है। साथ ही शिक्षकों को छात्रों के रोल मॉडल के रूप में कृतज्ञता के महत्व को भी सिखाना चाहिए।
- **आत्मविश्वास का प्रदर्शन**– एक रोल मॉडल के रूप में एक शिक्षक को छात्रों में आत्मविश्वास के महत्व को आत्मसात कराना चाहिए। अध्यापिका या अध्यापक को अपने व्यक्तित्व और चरित्र के विकास के प्रति आत्मविश्वास के प्रदर्शन और शक्ति के महत्व को दिखाना चाहिए। छात्रों को इससे यह सीखने में मदद मिलेगी कि कैसे आत्मविश्वास की पूंजी से संपन्न होने के लिए अच्छा चरित्र महत्वपूर्ण है। एक रोल मॉडल के रूप में, शिक्षक को अपने अनुभवों और जीवन के सबक से छात्रों के समग्र विकास में मदद के साथ उनको समृद्ध करना चाहिए।

सुविधाप्रदाता

सुविधाप्रदाता (facilitator) वह होता है जो किसी सरलीकरण की गतिविधि में संलग्न होता है। वह एक समूह को उसके आम उद्देश्यों को समझने और कैसे इन उद्देश्यों को प्राप्त किया जाए इसके लिए योजना बनाने में मदद करता है।

एक शिक्षक की एक अन्य भूमिका एक सुविधाप्रदाता की है। सुविधाप्रदाता के रूप में, शिक्षक को सीखने में छात्रों को सक्षम करना चाहिए। इसका मतलब यह है कि शिक्षक को एक नौसिखिया या छात्र केंद्रित दृष्टिकोण का पालन करने की जरूरत होती है, ताकि वह छात्रों को एक प्रभावी ढंग से जानने के लिए सक्षम कर सके। सुविधाप्रदाता के रूप में शिक्षक पढ़ाने के बजाय पहले हितों और छात्रों की जरूरतों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, क्या पढ़ाना है और कैसे पढ़ाना है का क्रम इसके बाद आता है। सुविधाप्रदाता के रूप में, शिक्षक कक्षा के वातावरण में ऐसा बदलाव लाते हैं जिससे वे सीखने में छात्रों की मदद कर सकें। इस प्रकार छात्र कक्षा में निष्क्रिय श्रोता न रहकर सक्रिय भागीदार हो जाते हैं। इस तरह छात्र एक अधिक प्रभावी और रचनात्मक तरीके से जानने के लिए सक्षम हो जाते हैं।

एक सुविधाप्रदाता के रूप में, शिक्षकों की जिम्मेदारी है कि वे सीखने के एक ऐसे वातावरण का विकास करें जो सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी संदर्भों में छात्रों के अनुभवों को प्रतिबिंबित करने के लिए प्रासंगिक हो। इसका मतलब है कि सुविधाप्रदाता

के रूप में, शिक्षक छात्रों को विभिन्न संदर्भों को सीखने में इस प्रकार सहायता करें जिससे छात्र कौशल और व्यवहारों को विकसित करने में सफल हों।

टिप्पणी

सुविधाप्रदाता के रूप में, शिक्षकों को सहयोगी और सहकारी विधि से सीखने को प्रोत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार का शिक्षण छात्रों को एक दूसरे से सीखने के लिए सक्षम बनाता है और न केवल उनके ज्ञान के आधार को विस्तृत करता है बल्कि एक रचनात्मक और प्रभावी तरीके से जानने के लिए भी सक्षम बनाता है।

एक सुविधाप्रदाता के रूप में, शिक्षक को निम्नलिखित भूमिकाओं को पूरा करना होता है और निम्नलिखित कर्तव्यों का पालन करना होता है–

- छात्रों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों, कौशलों और रुझानों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का विकास करना।
- सभी छात्र अलग–अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से ताल्लुक रखने वाले हैं इस बात का ध्यान रखते हुए अलग–अलग छात्रों की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण गतिविधियों की योजना बनाना।
- कितना अधिक शिक्षण हो पाया बजाए इसके छात्रों ने कितनी अच्छी तरह से सीखा इस पर ध्यान देते हुए सीखने के मापदंडों, आकलनों और शिक्षण की सहायक सामग्री तैयार करना।
- एक संवादमूलक और उदार विधि से सिखाने की ऐसी कक्षा का निर्माण करना जिसमें छात्र सक्रिय रूप से भाग लें और प्रभावी ढंग से सीखें।
- छात्रों को सहयोगी विधि से सीखने के लिए प्रोत्साहित करना जिससे छात्र पाठ्यपुस्तकों से जानने के बजाय अपना खुद का ज्ञान बनाने के लिए सक्षम हों।
- यह सुनिश्चित किया जाए कि जो भी पढ़ाया जा रहा उसका अनुभव हस्तामलक विधि (हाथ में रखे आंवले को देखने की तरह) से प्राप्त करें ताकि शिक्षण प्रभावी हो।
- कक्षा का वातावरण ऐसा बनाया जाए जिसमें छात्र चुन सकें कि वे क्या पढ़ना चाहते हैं, बजाय इसके कि उन्हें कहा जाए कि यह सीखना है और ऐसे सीखना है।
- छात्रों की आवश्यकता के अनुसार शिक्षण के उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाए और जब एक विशिष्ट अवधारणा सीखने की बात आए तो छात्रों ने स्वयं के लिए कौन से लक्ष्य तय किए हैं, यह भी स्पष्ट कर लिया जाए। ऐसा करने से छात्रों का उन लक्ष्यों के प्रति उत्साह बना रहेगा।
- उन आकलनों का विकास किया जाए जिनसे पता लगे कि छात्रों ने कितनी अच्छी तरह से सीखा है, न कि यह पता लगाया जाए कि छात्र किसी अवधारणा के या किसी विषय के किस सीमा तक विशेषज्ञ बन गए हैं।

टिप्पणी

संवादकर्ता

शिक्षक संवादकर्ता की भूमिका भी निभाते हैं और उनके पास प्रभावी संवाद–कौशल होने की आवश्यकता होती है। एक संवादकर्ता के रूप में, शिक्षक सुनिश्चित करें कि छात्र सीखने के उद्देश्यों को प्राप्त करें। छात्र इन दिनों अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हैं और इसलिए वे हमेशा शिक्षक को सुनें और हमेशा उसके सही होने की समझ रखें इसकी संभावना नहीं हैं। छात्र चाहते हैं कि उनकी बात को सुना जाए और शिक्षकों द्वारा उसका सम्मान किया जाए, इसलिए यह जरूरी है कि शिक्षक सही बातचीत के कौशल को विकसित करें। जब शिक्षक संवादकर्ता के रूप में कार्य करते हैं, तब वे कक्षा को निरंतर ऐसा शिक्षण का स्थान बना देते हैं जहां शिक्षकों और छात्रों के बीच या छात्रों में परस्पर होने वाला संघर्ष शिक्षण के क्षणों में परिवर्तित हो जाता है। शिक्षण के इन क्षणों से न केवल छात्र बल्कि शिक्षक भी सीखते हैं।

जब छात्र भावनात्मक उतार–चढ़ाव से गुजर रहे हों तब उनसे संवाद करना शिक्षक का कर्तव्य हो जाता है। कक्षा में चुनौतीपूर्ण दिनों का सामना करने के लिए, शिक्षकों के पास प्रभावी संवाद–कौशल होना आवश्यक है। जब शिक्षकों के पास अपेक्षित संवाद–कौशल होता है , तब वे आसानी से कक्षा पर नियंत्रण प्राप्त कर पाते हैं और ऐसा संतुलन स्थापित कर लेते हैं, जिसमें वे जानते हैं कि उन्हें अपने छात्रों के साथ कैसा व्यवहार करना है। शिक्षकों को छात्रों के लिए स्पष्ट नीतियों, प्रक्रियाओं और अपेक्षाओं को स्थापित करना चाहिए है ताकि वे कक्षा में छात्रों के व्यवहार का प्रबंधन कर सकें। छात्रों को यह बताने की बजाए कि वे कैसे समस्याओं को हल करें, एक संवादकर्ता के रूप में शिक्षक को छात्रों को स्वयं समस्याओं का समाधान खोजने की अनुमति देनी चाहिए।

एक संवादकर्ता के रूप में, शिक्षक सुनिश्चित करें कि छात्रों के बीच किसी भी संघर्ष को सर्वोत्तम संभव तरीके से नियंत्रित किया जाए। यह जरूरी है कि शिक्षक सुनिश्चित करें कि संघर्ष में शामिल छात्रों से उस उचित तरीके से बातचीत की जाए जिससे कक्षा में पुनः संघर्ष उत्पन्न न हो। संवादकर्ता के रूप में, शिक्षकों के पास अच्छा संप्रेषण कौशल होना चाहिए ताकि वे अभिभावकों के साथ भी बातचीत कर सकें। कई बार, माता–पिता अपने बच्चों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार की भी शिक्षकों से शिकायत करते हैं। ऐसे मामलों में, यह शिक्षकों के लिए आवश्यक है कि माता–पिता को समझाएं कि क्यों छात्रों से उस तरह का व्यवहार किया गया। इस तरह संवाद कौशल शिक्षकों के लिए इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि वे न केवल छात्रों से बल्कि उनके माता–पिता से भी प्रभावी ढंग से संवाद स्थापित कर सकें।

सह–शिक्षार्थी

शिक्षा की आवश्यकताओं के बदलते स्वरूप और छात्रों की मांगों के अनुसार इन दिनों शिक्षकों की भूमिका भी बदल रही है। ऊपर जिन अनेक भूमिकाओं की चर्चा की गई है उनके साथ–साथ आज, शिक्षकों को सह–शिक्षार्थियों के रूप में भी कार्य करना

टिप्पणी

आवश्यक हो गया है ताकि वे छात्रों के लिए अपने शिक्षण में प्रभावोत्पादकता और उदारता का समावेश कर सकें। सारी सूचनाओं और जानकारियों के भंडार बनने की बजाय, सह शिक्षार्थियों के रूप में शिक्षक छात्रों के साथ–साथ सीखते हैं।

सह शिक्षार्थियों के रूप में, शिक्षकों की मुख्य भूमिकाओं में से एक होती है छात्रों में रचनात्मकता को बढ़ावा देना। शिक्षकों को विषयवस्तु और शिक्षण सामग्री का उपयोग इस तरह से करना होता है कि छात्र समस्याओं के समाधान तत्काल खोजने के लिए अपने रचनात्मक कौशल का उपयोग कर सकें। सह शिक्षार्थियों, के रूप में शिक्षकों को छात्रों में जीवन–भर काम आने वाले कौशलों का विकास करना चाहिए।

यह तथ्य कि एक शिक्षक सह–शिक्षार्थी भी हो सकता है कोई भ्रामक कथन नहीं है। शिक्षक जब छात्रों को सिखाता है, तब यह आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं भी सीखना न छोड़ दे। शिक्षकों को लगातार सीखते रहना चाहिए और अपने ज्ञान की समीक्षा करते रहना चाहिए ताकि वे प्रभावी जीवन कौशल को विकसित करने में छात्रों को सक्षम कर सकें। जब एक शिक्षक सीखना बंद कर देता है, तब वह छात्रों के साथ तालमेल रखने के लिए सक्षम नहीं हो सकता, विशेष रूप से इस डिजिटल युग में। सह शिक्षार्थियों के रूप में शिक्षकों के लिए, यह जरूरी है कि वे छात्रों को सोचने के लिए, विश्लेषण के लिए, सवाल करने के लिए अनुमति दें और छात्रों के साथ–साथ स्वयं भी सीखते रहें। यह उन सब प्रभावी तरीकों में से एक है जिनमें छात्र कुशल तरीके से सीख सकते हैं। सह शिक्षार्थियों के रूप में, शिक्षक न केवल रचनात्मकता को अपनाते हैं, बल्कि ऐसे सहयोगी और सहकारी शिक्षण को भी बढ़ावा देते है जिसमें छात्र और शिक्षक एक दूसरे से सीखते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. "शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका सम्पादन अंतःपारस्परिक संबंधों के माध्यम से अधिगम को बढ़ाना होता है।" यह किसकी परिभाषा है?

   (क) जॉन ब्रूबेकर (ख) एस.सी. मॉरीसन

   (ग) बी.ओ. स्मिथ (घ) जैक्सन

4. एडम्स ने शिक्षा को कौन–सी प्रक्रिया कहा है?

   (क) द्विमुखी प्रक्रिया (ख) त्रिमुखी प्रक्रिया

   (ग) चतुर्मुखी प्रक्रिया (घ) इनमें से कोई नहीं

4.4 शिक्षक केंद्रित शिक्षण और शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षण के दृष्टिकोण

शिक्षण व्याख्यानों, प्रयोगों, कार्यकलापों या ट्यूटोरियल के माध्यम से ज्ञान प्रदान करने की एक प्रक्रिया है। शिक्षण में एक शिक्षक होता है जो शिक्षा देता है और एक शिशिक्षु

होता है जो शिक्षा ग्रहण करता है। शिक्षण अधिकांशतः स्कूलों में किया जाता है, किंतु यह पूरी तरह से स्कूल तक ही सीमित नहीं रहता; यह एक गतिशील प्रक्रिया है, किंतु स्कूल में शिक्षण को छात्रकेंद्रित होना चाहिए।

टिप्पणी

शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक का, पाठ की समय रहते तैयारी करना आवश्यक होता है किंतु, प्रसंग आधारित शिक्षण रचनात्मक मूल्यांकन पर निर्भर करता है जिसमें शिशिक्षा के उद्देश्यों का इस मूल्यांकन से ताल–मेल रहता है। हाल के वर्षों में, शिक्षण एक बहुत ही जटिल उद्यम हो गया है। इसलिए, बच्चों को बदलते विश्व के अनुरूप तैयारी करने की जरूरत है, क्योंकि उनमें से बहुत से बच्चों को यथार्थ जगत की कठिनाइयों का सामना करना है। छात्रों के प्रति यह सोचना गलत है कि वे किसी समरूप समूह में बेहतर ढंग से सीखते हैं। वस्तुतः, शिशिक्षुओं को उच्च, औसत और निम्न क्षमता के समूहों में बांटने से यथार्थ अर्थों में, सामग्री में अंतर के कारण, वे जो सीखते हैं उसमें अंतर होता है।

शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया

शिक्षण महज शिशिक्षुओं को शिक्षा और कौशल प्रदान करने की एक प्रक्रिया है। औपचारिक रूप से, शिक्षण की परिभाषा लोगों की जरूरतों, अनुभवों और अनुभूतियों पर ध्यान देने, तथा विशेष विषयों को सीखने में उनकी सहायता करने के विशिष्ट प्रयासों के रूप में की जा सकती है। शिक्षण की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि शिक्षण का मुख्य लक्ष्य शिशिक्षा है। वस्तुतः शिक्षण और शिशिक्षा एक दूसरे के सहचर हैं। यदि शिक्षण शिशिक्षु को वांछित कौशल प्रदान न कर सके, तो इसे एक निरर्थक प्रक्रिया या कार्य माना जाता है। इसलिए, शिक्षण का मुख्य अभिप्रेत शिशिक्षा है।

प्रक्रिया के रूप में शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है। शिक्षण ज्यादातर स्कूल में दिया जाता है किंतु यह स्कूल तक ही सीमित नहीं है। शिक्षण स्कूल की चारदीवारी से आगे जाता है और लोगों को उनके अनुभवों से कुछ न कुछ सिखाता जाता है। जब बात स्कूल में शिक्षण की होती है, तो इस प्रक्रिया का छात्र–केंद्रित होना इस अर्थ में जरूरी होता है कि शिक्षण प्रक्रिया का केंद्रबिंदु छात्र हों और शिक्षण के हर पहलू में यह सुनिश्चित हो कि छात्र अति प्रभावकारी ढंग से शिक्षा प्राप्त करें। छात्र–केंद्रित शिक्षण छात्रों को कौशलों का विकास करने योग्य बनाता है जो शिशिक्षा से जीवन भर के लिए सक्षम बनाते हैं। स्कूल में छात्र–केंद्रित शिक्षण ऐसा हो कि जिसमें शिक्षक छात्रों की योग्यताओं, अभिरुचियों, कौशलों और सहज योग्यताओं को ध्यान में रखें। छात्र–केंद्रित शिक्षण प्रक्रिया में, छात्रों को जो सिखाया जाता है उसमें वे सक्रियता से भाग लेते हैं और महज निष्क्रिय छात्र नहीं होते। दूसरे शब्दों में, छात्र केवल वही नहीं सुनते और सीखते हैं जो शिक्षक उन्हें पढ़ाते हैं, बल्कि जो कुछ सिखाया जाता है उसमें सक्रियता से भाग लेते और प्रयोग करते हुए सीखते हैं, इसलिए जब शिक्षक महज व्याख्यान देने की बजाय छात्रों की जरूरतों पर ध्यान देते हैं तो वे अधिक प्रभावकारी ढंग से सीखते हैं।

टिप्पणी

शिक्षण प्रक्रिया का लक्ष्य शिशिक्षा होती है। जानकारी देने की बजाय छात्रों की शिशिक्षा को सुगम करना शिक्षकों का दायित्व होता है। शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया की विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- शिक्षक उत्तर की बजाय छात्रों के समक्ष प्रश्न रखते हैं। शिक्षकों के लिए यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि छात्र शिशिक्षा प्रक्रिया में सक्रियता से भाग लें। छात्र निष्क्रिय शिशिक्षु न रहें बल्कि पठित विषय की व्याख्या की मांग करें। शिक्षकों के लिए खुले प्रश्न पूछना जरूरी है ताकि छात्रों के लिए शिशिक्षा का प्रभावकारी होना सुनिश्चित हो। शिक्षण प्रक्रिया शिशिक्षा उन्मुखी होने पर ही छात्र जानकारी को आत्मसात कर सकते हैं जो उनकी स्मृति में दीर्घ काल तक रह सकती है।
- शिक्षण प्रक्रिया शिशिक्षा उन्मुखी होने पर शिक्षक छात्रों के साथ शिशिक्षा साझा करते हैं। अपनी मानक भूमिका का निर्वाह करने की बजाय, शिक्षक छात्रों के साथ सहभागिता करते हैं ताकि वे छात्रों की सीखने में सहायता कर सकें। शिक्षक कक्षा में व्याख्यान नहीं देते बल्कि छात्रों को विषयवस्तु का अन्वेषण करने की छूट देते हैं ताकि वे विषय की बेहतर समझ का विकास कर सकें।
- शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण अनुप्रयोग के अवसर मुहैया कराता है। दूसरे शब्दों में, यह सुनिश्चित करने के लिए कि छात्र बेहतर ढंग से सीख सकें, उन्हें उस ज्ञान का व्यावहारिक रूप से अनुप्रयोग करने की अनुमति दी जाती है जो उन्होंने सीखा हो। छात्रों को व्यावहारिक अनुभव मिलने पर उन्हें विषय लंबे समय तक स्मरण रह सकता है।
- शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया प्रभावकारी ढंग से सीखने के लिए छात्रों को शिशिक्षा की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के योग्य बनाती है। शिक्षा की इस प्रक्रिया में गतिविधियों और उद्दीपन का समावेश होता है जो बड़ी संख्या में उन शिशिक्षुओं की शिशिक्षा की प्रक्रिया और शिशिक्षा की क्षमताओं को उद्दीप्त करते हैं, जो विषय की शिक्षा अपनी ही विशिष्ट विधि से ग्रहण करते हैं।
- शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया संवादमूलक होती है। शिक्षक जब छात्रों को पढ़ाएं, तो उन्हें छात्रों का संवाद करना और प्रश्न पूछना अनिवार्य रूप से सुनिश्चित करना चाहिए ताकि छात्रों में विषय की समझ विकसित हो। इस तरह छात्र पढ़ाई में अधिक से अधिक तल्लीन रहते हैं और इसीलिए अपेक्षाकृत अधिक बेहतर ढंग से शिक्षा ग्रहण करते हैं।

शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया के लिए शिक्षकों का शिक्षण सत्र तैयार करना आवश्यक होता है। इस तैयारी में निम्नलिखित पहलुओं को शामिल किया जा सकता है :

टिप्पणी

- शिक्षक या शिक्षिका को अपनी और छात्रों की रुचि के अनुरूप विषयवस्तु का चयन करना चाहिए। विषयवस्तु ऐसी हो कि छात्र इसमें प्रभावकारी शिशिक्षा के लिए शामिल हों।
- शिक्षक को यह पता लगाने की जरूरत हो सकती है कि शिशिक्षु कौन हैं, उनकी पृष्ठभूमि, उन्हें प्राप्त ज्ञान, उनके ज्ञान का स्तर क्या है, आदि। इस प्रकार के आयोजन से शिक्षक यह जानने में सफल होते हैं कि शिशिक्षुओं की जरूरतें क्या हैं और शिक्षक तदनुरूप शिक्षण सत्र की योजना तैयार कर सकते हैं।
- शिक्षक को चिंतन प्रक्रिया और विषयवस्तु से संबद्ध सभी विचारों को लिखने की जरूरत हो सकती है। फिर वह उस विचार का चयन कर सकते हैं जो विषयवस्तु के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो और एक प्रभावकारी ढंग से छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा करे।
- शिक्षक को शिशिक्षा के उद्देश्यों का विश्लेषण भी करना चाहिए, अर्थात् वे यह देखें कि छात्रों को क्या, कैसे और क्यों सीखना है। शिक्षक को इस पर गंभीरता से विचार कर लेना चाहिए कि शिक्षण सत्र के अंत तक छात्र क्या सीखेंगे।
- तदनंतर शिक्षक को शिक्षण की उन रणनीतियों और विधियों का निर्धारण करना चाहिए जिनका उपयोग शिशिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। शिक्षकों के लिए ऐसी रणनीतियों और विधियों का चयन करना आवश्यक है जो सभी शिशिक्षुओं के हितों और जरूरतों के अनुरूप हों।
- शिक्षकों को यह सुनिश्चित करने के लिए करना चाहिए कि जो विषय पढ़ाया जाना हो उसकी प्रस्तुति में चित्रों और उदाहरणों का उपयोग हो, ताकि छात्र उसे बेहतर ढंग से समझ सकें।
- शिक्षकों को पाठ योजना इस तरह से बनानी चाहिए कि उसमें विषयवस्तु के सभी आवश्यक तत्वों का समावेश हो।
- शिक्षकों को चाहिए कि वे छात्रों को इस तरह से तैयार करें कि वे पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु से संबद्ध तथ्य स्वयं पढ़ सकें। शिक्षकों को विषयवस्तु से संबद्ध गतिविधियों में छात्रों को शामिल करना चाहिए।
- व्याख्यान प्रस्तुति के बाद शिक्षकों को छात्रों का मूल्यांकन भी करना चाहिए ताकि यह ज्ञात हो कि छात्र विषय को कितना और किस प्रकार समझ पाए हैं और शिशिक्षा के उद्देश्य पूरे हुए हैं या नहीं। शिक्षक/शिक्षिका को लगे कि शिशिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाई है, तो वह पाठ और शिक्षण की रणनीतियों में सुधार कर सकता/सकती है।

शिशिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया में शिशिक्षुओं को सक्रिय होना चाहिए। उन्हें पिछली शिक्षा और अनुभवों का मनन करना चाहिए ताकि वे नए ज्ञान का सृजन कर

सकें। शिशिक्षुओं का नए विचारों के लिए प्रस्तुत रहना और नम्य होना तथा जो कुछ उन्होंने सीखा है उस पर गंभीरता से सोचना आवश्यक है।

टिप्पणी

शिशिक्षु केंद्रित शिक्षण और शिशिक्षुओं का शिक्षण के केंद्र में होना

विषय–केंद्रित शिशिक्षा : इस शिशिक्षा में छात्र किसी विषय या क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा पूर्व निर्धारित किसी विषयवस्तु का अध्ययन करते हैं। इसका पाठ्यक्रम प्रधान होता है और इसमें न केवल शिक्षक बल्कि छात्र भी अपने कार्यकलापों और कथनों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। विषय–वस्तुएं प्रभाव छोड़ने और यहां तक कि शिक्षकों तथा शिशिक्षुओं की चिंतन प्रक्रियों को उद्दीपित करने के लिए अपने आप में सक्षम होती हैं। विषय शिक्षकों के लिए एक सूत्रधार के रूप में कार्य करता है। विषय में शिक्षकों के विषय के प्रति सच्चे उत्साह और ललक को प्रकाश में लाने की क्षमता होती है। उनका ध्यान यथासंभव शिक्षा के वितरण पर केंद्रित होता है।

छात्र–केंद्रित शिशिक्षा : यह शिशिक्षा शिशिक्षुओं और शिक्षकों के बीच संवाद को प्रोत्साहन देती है। यह शिशिक्षा की वह पद्धति है जिसमें छात्रों या शिशिक्षुओं की जरूरतों को केंद्र में रखा जाता है। छात्रों की अभिव्यक्ति को महत्व दिया जाता है और उसे शिशिक्षा के समस्त अनुभव का केंद्रबिंदु माना जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, छात्रों से उनकी शिक्षा– ग्रहण प्रक्रिया में सक्रिय और अग्रसक्रिय होने की अपेक्षा की जाती है। इसमें व्यावहारिक गतिविधियों और सीखने की विशिष्ट शैलियों के साथ–साथ छात्रों के लिए शिशिक्षा के उन लक्ष्यों की प्राप्ति के अवसर का समावेश होता है, जो उनके जीवन पर्यंत काम आ सकें और इस तरह उनकी शिशिक्षा पर उनका पूरा नियंत्रण हो। इसके लाभ इस प्रकार हैं :

- छात्रों को अभिप्रेरणा देती है
- समकक्षों के साथ संवाद–संचार को बढ़ावा देती है
- विघटनकारी व्यवहार पर अंकुश लगाती है
- शिक्षक–छात्र संबंध को प्रबल करने को प्रोत्साहित करती है
- छात्र/छात्राओं को उनकी शिशिक्षा के प्रति उत्तरदायी बनाती है
- छात्र/छात्राओं को उनकी पसंद के विषय का चयन करने की छूट देती है
- छात्र/छात्राओं को यह निश्चय करने की अनुमति देती है कि वे अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग कैसे करें
- शिक्षक के मार्गदर्शन में अध्ययन की मौजूदा सामग्री की नई व्याख्या करने की अनुमति देती है
- शिशिक्षु आपस में बातचीत और चर्चा–परिचर्चा करते हैं तथा शिक्षक से ज्ञान के एक स्रोत का काम लेते हैं। छात्र पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में सहायता के साथ–साथ पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तुओं का चयन करने में

शिक्षकों की सहायता भी करते हैं। शिशिक्षु और शिक्षक विचारों का आदान–प्रदान करते हैं और इसलिए कक्षा गतिविधि व चहल–पहल से भरी रहती है।

टिप्पणी

शिक्षक–केंद्रित शिशिक्षा एवं शिशिक्षु–केंद्रित शिशिक्षा : एक तुलना

Teacher-Centric Learning	Learner-Centric Learning
Knowledge transmission from teacher to learner/student	Active involvement of students in the gathering, synthesis and integration of information.
Passive receipt of knowledge	Active involvement of learner in receipt of knowledge
Emphasis on acquisition of knowledge outside the context in which it will be applied	Emphasis on use and effective communication of knowledge for appropriate application in problem-solving and real-life contexts
Teaching and assessment are considered separate	Teaching and assessment are linked
Teacher is the primary giver and evaluator of information	Teacher and learner evaluate learning together
Emphasis on obtaining right answers to standard questions	Emphasis is on generating better questions and learning from mistakes
Learning is tested indirectly through use of tests	Learning is assessed directly through performances, projects, reports, etc.
Focus on a single discipline	Approach encourages interdisciplinary investigation
Individualistic and competitive approach	Cooperative, collaborative and supportive approach
Learners are the students alone	Learners are both the teachers as well as the students

शिशिक्षु–केंद्रित बनाने के लिए शिक्षण की सांस्कृतिक रूप से अनुक्रियाशील पद्धतियां

यह मान लेना एक आम चलन है कि शिशिक्षु समरूप समूहों में बेहतर ढंग से सीखते हैं। वस्तुतः, शिशिक्षुओं को विभिन्न सामग्री देकर उच्च, औसत और निम्न–क्षमता वाले समूहों के आयोजन से उन्हें दी जाने वाली शिक्षा में असमानता बढ़ती है। समूह परिपाटियों के कारण कक्षा में भेद–भाव का माहौल पनपता है।

निर्धन छात्र और अफ्रीकी अमेरिकी, एशियाई/प्रशांत द्वीपीय, स्पेनी/लातीनी अमेरिकी, एशियाई अमेरिकी, मूल अमेरिकी, मध्य पूर्वी अमेरिकी या बहुजातीय अंतरराष्ट्रीय अमेरिकी छात्रों (Coloured Students/अश्वेत छात्र) के व्यावसायिक या निम्न–योग्यता समूह तक सीमित रह जाने की बहुत संभावना रहती है। योग्यता के आधार पर सामूहीकरण से छात्रों की स्व–अवधारणाओं और समूहों से सार्थक संबंध कायम करने के उनके अवसर प्रभावित होते हैं। 'मंद समूह' से संबद्ध इन छात्रों को

'मूक' का ठप्पा लग सकता है और उन्हें यह देखकर कष्ट होता है कि उनसे कितनी सीमित अपेक्षाएं रखी जाती हैं। वे उपहास के शिकार होकर रह जाते हैं। ऐसा बच्चों के साथ भी हो सकता है और वयस्क शिशिक्षुओं या छात्रों के साथ भी।

टिप्पणी

इसी प्रकार, 'चतुर' या 'मेधावी' के रूप में वर्गीकृत छात्र स्वयं को सामाजिक स्तर पर अलग–थलग पा सकते हैं। यह स्थिति शिशिक्षुओं में एक दूरी पैदा करती है और असमानताओं में विस्तार करती है।

शिशिक्षुओं को, खास तौर पर बच्चों को यदि उनके समकक्षों से, जो कुछ हटकर हों, अलग कर दिया जाए, तो वे समझना, मूल्यांकन करना या समाज में मिलना–जुलना सीख नहीं सकते। असमानताओं के प्रति सकारात्मक (धनात्मक) अनुक्रियाओं को बढ़ावा देने के लिए महज संपर्क काफी नहीं है और इसीलिए पंचमेल कक्षाएं आवश्यक हैं।

प्रसंग आधारित शिक्षण

प्रसंग आधारित शिक्षण शिक्षण के संरचनावादी सिद्धांत पर आधारित है। प्रसंग आधारित शिक्षण वह है जिसमें शिक्षक विचार और जानकारी इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं जिससे छात्रों को इस विचार और जानकारी को इस तरह ढालने में सहायता मिलती है कि उनके अपने मूल विचार में या उनके अपने दृष्टिकोण से इसका एक उचित अर्थ निकल आता है। दूसरे शब्दों में, प्रसंग आधारित शिक्षण में शिक्षक शिक्षा इस प्रकार देते हैं जिससे छात्र अपने अनुभवों के आधार पर एक अर्थ का सृजन करने में सफल होते हैं।

प्रसंग आधारित शिक्षण शिक्षा के परिवेश के विभिन्न पहलुओं पर बल देता है और छात्रों को अपने परिवेश के विषयों के बीच संबंधों का पता लगाते हुए सीखने के योग्य बनाता है। प्रसंग आधारित शिक्षण में, शिक्षक विभिन्न अनुभवों को अपनाते हुए परिवेशों का निर्माण करते हैं ताकि छात्र एक प्रभावकारी ढंग से शिक्षा ग्रहण कर सकें और शिशिक्षा के वांछित परिणाम प्राप्त हों।

प्रसंग आधारित शिक्षण की विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- यह शिक्षण समस्या के समाधान पर बल देता है। शिक्षक सुनिश्चित करते हैं कि छात्र विभिन्न सदंर्भों में अनुभव प्राप्त करें और विभिन्न समस्याओं का समाधान आसानी से ढूंढ़ सकें।
- प्रसंग आधारित शिक्षण में शिक्षक छात्रों की उनके ज्ञान के निरीक्षण में सहायता करते हैं। इसलिए इस शिक्षण का ध्येय छात्रों का विकास स्व–निर्देशित और स्व–नियमित शिशिक्षुओं के रूप में करना है।
- प्रसंग आधारित शिक्षण में, शिक्षक छात्रों को एक दूसरे से सीखने और किसी समस्या के समाधान में सहयोग करने को प्रोत्साहित करते हैं।

प्रसंग आधारित शिक्षण में मूल्यांकन पारंपरिक नहीं होता और खुले प्रश्नों पर आधारित भी नहीं होता। वस्तुतः इस शिक्षण में शिक्षकों को पठित विषय के संदर्भ में एक मूल्यांकन प्रक्रिया का विकास करना चाहिए।

टिप्पणी

अति जटिल उद्यम के रूप में शिक्षण

हाल के वर्षों में, शिक्षण एक बहुत ही जटिल उद्यम का रूप ले चुका है। शिक्षा में, उद्यम का अर्थ शिक्षण और पठन का एक उद्यमशील मार्ग है। उद्यम सभी युवाओं की ज्ञानार्जन, जीवन और कार्य के उनके कौशलों के विकास में सहायता करता है। युवाओं को बदलते विश्व के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें भविष्य में परिस्थितियों का सामना करने, बाधाओं से निपटने की योग्यता हासिल करने और अपने जीवन के शेष समय तक सीखना जारी रखने के कौशल प्राप्त करने चाहिए।

उत्तम उद्यमशील शिक्षण एवं शिशिक्षा में–

- शिशिक्षुओं को एक अवसर दिया जाना चाहिए जो उनमें चिंतन करने और उद्यमशील ढंग से कार्य करने का ज्ञान पैदा कर सके।
- शिशिक्षुओं को उद्यम संबंधी अनुभव दिए जाने चाहिए।
- शिशिक्षुओं को कौशलों का विकास करने का एक अवसर दिया जाना चाहिए जैसे निर्णय निर्माण और समस्या समाधान आदि।
- शिशिक्षुओं को उद्यमी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
- शिशिक्षुओं को कार्य से जुड़ा अनुभव ग्रहण करने का एक अवसर दिया जाना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

5. शिक्षण किसके माध्यम से ज्ञान प्रदान करने की प्रक्रिया है?

   (क) व्याख्यानों (ख) प्रयोगों

   (ग) कार्यकलापों (घ) ये सभी

6. प्रसंग आधारित शिक्षण किस सिद्धांत पर आधारित है?

   (क) मानवतावादी (ख) संरचनावादी

   (ग) भौतिकवादी (घ) इनमें से कोई नहीं

4.5 वर्तमान शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण और प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिगम प्रक्रिया के अंतर्गत शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षणों और प्रवेश परीक्षाओं को क्रमानुसार विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है–

4.5.1 वर्तमान शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का परिचय

शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षण स्तम्भ का कार्य करता है। परीक्षण के द्वारा विद्यार्थी की पाठ्यपुस्तक संबंधी उपलब्धियों की सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है।

टिप्पणी

शैक्षिक परीक्षण का अर्थ

शैक्षिक परीक्षण से तात्पर्य एक ऐसी परीक्षाप्रणाली से है जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों द्वारा विषय के पाठ्यक्रम से संबंधित प्रश्नों के उत्तर एक निश्चित समय के अंदर लिखित या मौखिक रूप में दिए जाते हैं। परीक्षण किसी भी परीक्षा प्रणाली की एक प्रभावशाली तकनीक है। परीक्षण द्वारा ही उचित मूल्यांकन किया जाता है।

शैक्षिक परीक्षण की विशेषताएं

शैक्षिक परीक्षण की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं होती हैं जो इस प्रकार हैं–

1. **सोद्देश्यपूर्णता** – यह एक उत्तम परीक्षण की प्रभावी विशेषता है। किसी भी प्रकार की परीक्षा का निर्माण किए जाने से पूर्व उसके विशेष उद्देश्यों को निर्धारित कर लेना चाहिए। परीक्षा चाहे बुद्धि मापन हेतु हो, व्यक्तिमापन हेतु हो या उपलब्धि मापन हेतु हो, सभी के उद्देश्य भिन्न –भिन्न होंगे। एक उत्तम परीक्षण का निर्माण किसी उद्देश्य या लक्ष्य के होने पर ही संभव है। अतः यह आवश्यक है कि किसी भी परीक्षण का निर्माण करने से पहले उद्देश्य या लक्ष्य के संबंध में निर्णय कर लेना अत्यंत आवश्यक है।
2. **व्यापकता**– व्यापकता से तात्पर्य है कि जिस योग्यता को मापने के लिए परीक्षा का निर्माण किया गया है उस योग्यता के सभी क्षेत्र जिस पाठ्यक्रम पर आधारित हों उसके समस्त अंशों से संबंधित प्रश्न पूछे जाएं। कोई भी परीक्षण जितना अधिक पाठ्यक्रम के समस्त अंशों से संबधित होगा वह उतना ही अधिक व्यापक माना जाएगा। प्रश्न छोटे–छोटे होने चाहिए। व्यापकता के इस गुण के अंतर्गत परीक्षण योग्यता के विभिन्न पक्षों का मापन करने में समर्थ होता है। परीक्षण परीक्षार्थी के व्यवहार के किसी एक ही पक्ष का मूल्यांकन न करे बल्कि वह समस्य पाठ्यक्रम से संबंधित होना चाहिए।
3. **ग्राह्यता**– एक प्रभावी परीक्षण में ग्राह्यता का गुण होना अत्यंत आवश्यक है। यहां ग्राह्यता से तात्पर्य है– किसी भी परीक्षण का उन परीक्षार्थियों पर और उन परिस्थितियों में सफलतापूर्वक प्रशासित किया जाना जिनको आधार मानकर उस परीक्षण की मानकीकरण प्रक्रिया को संपन्न किया गया था। परीक्षण अध्यापक निर्मित परीक्षण और मानकीकृत परीक्षण के भेद से दो प्रकार के होते हैं। अध्यापक निर्मित परीक्षणों का प्रयोग क्षेत्र बहुत ही सीमित होता है और इनका सफलतापूर्वक संपन्न होना कक्षा की परिस्थितियेां पर निर्भर करता है।
4. **मितव्ययता**– परीक्षण निर्माण करते समय परीक्षण निर्माता की यह कोशिश होनी चाहिए कि परीक्षण अनावश्यक रूप से विस्तार में न हो। परीक्षण में केवल उन्हीं पदों को स्थान दिया जाना चाहिए जिनके समावेश से परीक्षण के उद्देश्य पूर्ण हो सकें। कोई भी परीक्षण अनुसंधानकर्ता के लिए धन की दृष्टि से अत्यधिक महंगा सिद्ध नहीं होना चाहिए। उत्तर प्रपत्र को बहुत ही कुशलतापूर्वक तैयार किया जाना चाहिए ताकि प्रपत्र अधिक विस्तृत न हो। अतः एक उत्तम परीक्षण में मितव्ययता होनी चाहिए।
5. **प्रतिनिधित्व**– एक उत्तम परीक्षण में यह विशेषता होनी चाहिए कि वह प्रतिनिधित्व कर सके। व्यक्ति के व्यवहार के जिस पक्ष का मापन करने के लिए

टिप्पणी

परीक्षण का निर्माण किया गया है उसका मापन परीक्षण प्रतिनिधित्व से कर सकें। प्रतिनिधित्व करने के लिए परीक्षण में मुख्य रूप से निम्न विशेषताएं होनी चाहिए जो निम्नलिखित हैं–

(i) मानकीकृत– सी.वी. गुडे के मत में, "एक मानकीकृत परीक्षण वह है जिसमें विषयवस्तु का चयन अनुभव के आधार पर किया गया हो, जिसके प्रशासन एवं फलांकन की समरूप विधियों को विकसित किया गया हो तथा फलांकन को वस्तुनिष्ठ निधि से किया गया हो। एक प्रभावी परीक्षण मानकीकृत होता है। कहने का तात्पर्य है कि परीक्षण में दिए जाने वाले प्रश्नों, निर्देशों, परीक्षा संपन्न करने की विधियों और फलांकन की प्रक्रिया का पहले से ही निश्चय कर लिया गया हो जिससे मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ विधि से पूरा किया जा सके।

(ii) वस्तुनिष्ठता– किसी भी परीक्षण में वस्तुनिष्ठता अवश्य होनी चाहिए क्योंकि विश्वसनीयता और वैधता दोनों पर इसका प्रभाव पड़ता है। कोई भी परीक्षा वस्तुनिष्ठ तब कहलाती है जब उस पर किसी परीक्षक का व्यक्तिगत प्रभाव न पड़े। परीक्षा के प्रश्नों के उत्तरों पर अंक देते समय विभिन्न परीक्षकों में मतभेद न हों।

(iii) **विश्वसनीयता**– विश्वसनीयता से तात्पर्य ऐसी परीक्षा से होता है जिसको बार–बार प्रशासित करने पर एक जैसा ही निष्कर्ष प्राप्त हो। एक उत्तम परीक्षण की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विश्वसनीयता होती है। विश्वसनीयता का संबंध मापन की यथार्थता से होता है।

(iv) विभेदकारिता– विभेदकारी परीक्षा वह परीक्षा कहलाती है जो उच्च तथा निम्न योग्यता वाले परीक्षार्थियों में भेद प्रदर्शित कर सके अथवा प्रतिभाशाली एवं मंदबुद्धि परीक्षार्थियों में अंतर बता सके। अतः एक उत्तम परीक्षण में विभेदकारिता का गुण होना अत्यंत आवश्यक है।

(v) वैधता– एक उत्तम परीक्षण में वैधता का गुण होना उसकी महत्वपूर्ण विशेषता है क्योंकि बिना वैधता के कोई भी परीक्षण उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। परीक्षण की वैधता से तात्पर्य है कि यदि कोई परीक्षण वही मापन करता है, जिसका मापन करने के उद्देश्य से उसको निर्मित किया गया है, तो वह परीक्षण वैध होता है। किसी भी परीक्षा का निर्माण किसी न किसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। यदि कोई परीक्षण किसी श्रेणी के परीक्षार्थियों के लिए उसी विषय अथवा विशेषता का मापन करता है जिसके लिए उस परीक्षण का निर्माण किया गया है तो वह परीक्षा कहलाती है।

शैक्षिक परीक्षण के उद्देश्य

सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि परीक्षण को अनुचित प्रयोग से बचाने के लिए उसके उद्देश्यों को निश्चित किया जाए। शैक्षिक परीक्षण के भी कुछ उद्देश्य होते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. **उद्देश्य निर्धारित करना**– किसी भी परीक्षा का निर्माण करने से पूर्व परीक्षण निर्माता का सबसे पहला काम यह है कि वह परीक्षा निर्माण का उद्देश्य निश्चित करे ताकि उसी के अनुसार उपयुक्त पाठ्यक्रम को चयनित किया जा सके और

टिप्पणी

प्रश्नों का निर्माण किया जा सके। उदाहरणस्वरूप, यदि हम भौतिक विज्ञान में किसी परीक्षण का निर्माण करना चाहते हैं, तो हमारे दो मुख्य उद्देश्य हो सकते हैं। पहला, विद्यार्थी की तर्क शक्ति, निरीक्षण शक्ति अथवा विषय से संबंधित अन्य कौशलों का ज्ञान; दूसरा भौतिक विज्ञान के मूल प्रत्ययों से संबंधित तथ्यों का ज्ञान होना। इसी प्रकार से अन्य विषयों के भी भिन्न–भिन्न उद्देश्य निर्धारित किए जा सकते हैं।

2. **उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण**– परीक्षा के उद्देश्य निश्चित कर लेने के बाद परीक्षण निर्माता उपयुक्त पाठ्यक्रम को निर्धारित करता है जिसके आधार पर वह परीक्षा का निर्माण कर सके और उन सभी उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें जो उसने पहले निश्चित किए हैं। परीक्षण निर्माता का उपयुक्त पाठ्यक्रम का चयन करने की दृष्टि से यह उद्देश्यमात्र होना चाहिए कि जिस विषय सामग्री को वह समाविष्ट करना चाहता है, वह अधिक से अधिक वैध हो। परीक्षा के लिए जिस पाठ्यक्रम का चयन किया गया है वह सामान्य प्रकृति का होना चाहिए, किसी विद्यालय विशेष के लिए नहीं, क्योंकि प्रमापीकृत परीक्षाएं कहीं भी प्रयोग में लाई जा सकती हैं।

3. **चयनित विषय–वस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण**– पाठ्यवस्तु की वैधता स्थापित करने के लिए यह देखा जाता है कि चयनित पाठ्य–वस्तु उस कक्षा विशेष के छात्रों की दृष्टि से उपयुक्त है या नहीं जिनके लिए उस परीक्षा का निर्माण किया गया है। एक शिक्षक उन विद्यार्थियों की योग्यता का तो सरलतापूर्वक मापन कर सकता है जिनको वह पढ़ाता है किंतु प्रमापीकृत परीक्षा का निर्माण करने वाला यह नहीं जानता कि जिन विद्यार्थियों की योग्यता का मापन वह करना चाहता है उनके शिक्षकों ने किन–किन उद्देश्यों को लेकर उनका अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था और किस विद्यालय में किस उप–विषय पर कितना समय दिया गया है। यदि अध्यापक अपनी परीक्षा की वैधता चाहता है तो उसे उन उद्देश्यों और उप–विषयों का ज्ञान होना चाहिए।

4. **प्रश्नों की रचना**– परीक्षा से संबंधित प्रश्नों का निर्माण करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि सभी प्रश्न संपूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करें। प्रश्न की मुख्य विशेषता उसका वस्तुनिष्ठ और विभेदकारी होना माना जाता है। प्रश्नों की भाषा सरल, संक्षिप्त और स्पष्ट होनी चाहिए। ऐसे प्रश्नों को परीक्षा में न दिया जाए जिनका उत्तर अनुमान से दिए जाने की संभावना हो। प्रश्नों के विभिन्न रूपों को समाविष्ट किया जाए। परीक्षा के अंतिम प्रारूप में प्रश्नों की संख्या न तो बहुत अधिक होनी चाहिए और न ही बहुत कम क्योंकि प्रश्नों की संख्या कम रखने पर परीक्षा की विश्वसनीयता पर प्रभाव पड़ता है और अधिक रखने से विद्यार्थियों को उबाऊपन प्रतीत होता है।

परीक्षण का प्रारूप

सभी चयनित प्रश्नों को प्रश्नपत्र के रूप में तैयार करके परीक्षण का रूप दिया जाता है। अब यह परीक्षण प्रारूप के लिए तैयार है।

टिप्पणी

प्रश्नों का चयन– परीक्षा का प्रारंभिक रूप तैयार हो जाने के पश्चात प्रश्नों की छंटनी करने के लिए इस परीक्षा का प्रयोग विद्यार्थियों के एक विशाल समूह पर किया जाता है। इस प्रारूप के माध्यम से यह निश्चित किया जाता है कि कौन से प्रश्न विभेदकारी हैं और कौन से नहीं। परीक्षा कहां तक वैध, विश्वसनीय, वस्तुनिष्ठ और प्रयोज्य है। इसके बाद परीक्षा लेने पर विद्यार्थियों की परीक्षा का मूल्यांकन किया जाता है। इसके बाद सरल और कठिन प्रश्नों को छांटकर सरलता से कठिनता की ओर व्यवस्थित कर लिया जाता है।

प्रश्नों की वैधता निश्चित करना– प्रश्न की वैधता निश्चित करने के लिए प्रश्न की वस्तुनिष्ठता, स्तर एवं विभेदकारिता को परखा जाता है। प्रश्न की वस्तुनिष्ठता के लिए प्रश्न का केवल एक उत्तर ठीक होना चाहिए। प्रश्न का उत्तर प्रश्न में निहित होना चाहिए और प्रश्न की भाषा स्पष्ट, सरल व संक्षिप्त होनी चाहिए। प्रश्न किसी भी आयु समूह के मानसिक स्तर के अनुकूल होना चाहिए। विभेदकारिता की दृष्टि से प्रश्न ऐसे होने चाहिए कि वे योग्य और अयोग्य परीक्षार्थियों के मध्य भेद बता सकें। जिन प्रश्नों में उपर्युक्त गुणों का अभाव होता है उन्हें या तो परीक्षा से निकाल दिया जाता है या उनमें उचित संशोधन कर दिया जाता है। अतः अंत में जो शोधित स्वरूप प्राप्त होता है वही प्रामाणिक परीक्षा मानी जाती है।

समानांतर परीक्षा प्रारूप– सभी प्रमाणीकृत परीक्षणों का एक समानांतर प्रारूप भी तैयार किया जाता है, जो आकार, कठिनाई के स्तर और अन्य दृष्टियों से परीक्षण के मूल रूप के समान होता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि यदि परीक्षार्थियों की पुनः परीक्षा लेनी पड़े तो अन्य समानांतर प्रारूप का प्रयोग कर सकें। यद्यपि एक ही परीक्षा को दो बार संपन्न कराया जाना आसान काम नहीं है क्योंकि परीक्षा का समानांतर प्रारूप तैयार करने में भी उतना ही समय, परिश्रम और धन लगता है जितना कि मूल प्रारूप तैयार करने में लगता है। अतः सुविधा की दृष्टि से परीक्षा के मूल रूप को दो भागों में बांट दिया जाता है। ऐसा करने के लिए सम्पूर्ण परीक्षा सम प्रश्नों (जैसे– 2, 4, 6, 8, 10 आदि) को मूल रूप में रख लिया जाता है और विषम प्रश्नों (जैसे–1, 3, 5, 7, 9 आदि) को परीक्षा के समानांतर प्रारूप में रख लिया जाता है। इस सिद्धांत को अपनाने पर परीक्षा के दोनों प्रारूपों में एक से ही स्तर के प्रश्न तैयार हो जाएंगे और उनका क्रम भी बना रहेगा।

मानक निर्धारण– परीक्षा के प्रमापीकरण हेतु मुख्य मानकों जैसे– आयु मानक, ग्रेड मानक और शतांशीय मानक तैयार किए जाते हैं। इनके अतिरिक्त कभी–कभी प्रामाणिक मानक की भी आवश्यकता पड़ जाती है। यह मध्यांक मान ही कक्षा या समूह के लिए सामान्य मानक मान लिया जाता है। यदि कोई विद्यार्थी इस सामान्य स्तर से अधिक अंक प्राप्त करता है तो वह बुद्धिमान छात्र की श्रेणी में आता है और यदि वह इस सामान्य स्तर से कम अंक प्राप्त करता है तो वह मंदबुद्धि छात्र की श्रेणी में आता है। मानक एक प्रकार की तालिका होती है जिसमें एक तरफ आयु के अनुसार प्राप्तांक और दूसरी तरफ प्राप्तांकों से संबंधित बुद्धिलब्धि आयु को दिया जाता है। जब भी किसी छात्र की बुद्धि अथवा योग्यता की परीक्षा करनी होती है तो उससे संबंधित बुद्धिलब्धि अथवा सफलता परीक्षा के माध्यम से उसके प्राप्त अंकों को इन मानकों की सहायता से बुद्धि–लब्धि अथवा साकल्य आयु में परिवर्तित कर दिया जाता है। आजकल

शतांशीय मानक तैयार करना अधिक उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इन मानकों के द्वारा यह आसानी से ज्ञात हो जाता है कि किसी भी छात्र की समूह में कैसी स्थिति है।

टिप्पणी

परीक्षा का अंतिम प्रारूप– अंतिम प्रारूप देने के बाद एक बार पुनः संपूर्ण परीक्षा की वैधता और विश्वसनीयता ज्ञात की जाती है। परीक्षा की वैधता को किसी उपयुक्त कसौटी के आधार पर स्थापित किया जाता है और विश्वसनीयता के लिए परीक्षण पुनर्परीक्षण विधि (Test-Retest Method), अर्ध विटापन विधि (Split Half Method), समानांतर प्रारूप विधि (Parallel form method) एवं कूड रिचर्डसन फार्मूला (R-K Formula) आदि प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

परीक्षण सामग्री की छपाई– परीक्षण का अंतिम रूप निश्चित हो जाने पर परीक्षण संबंधी समस्त सामग्री छपवाई जाती है। परीक्षण का संपूर्ण ब्यौरा परीक्षण मैनुअल के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस मैनुअल को प्रामाणिक परीक्षण का एक अभिन्न अंग माना जाता है। इस मैनुअल के अंतर्गत परीक्षा पुस्तिका की छपाई, मुखपृष्ठ पर आवश्यक दिशानिर्देश, परीक्षा की प्रकृति, उत्तर देने का तरीका, परीक्षा के लिए निर्धारित समय–सीमा, परीक्षक के लिए निर्देश पुस्तिका (परीक्षा कैसे लेनी है, परीक्षा में किस प्रकार की सावधानियां बरतनी हैं, परीक्षार्थियों को क्या निर्देश देने हैं और परीक्षा का मूल्यांकन कैसे करा है आदि) और मानक आदि को सम्मिलित किया जाता है।

- **मनोवैज्ञानिक परीक्षण**

वैयक्तिक भिन्नता का मूल्यांकन प्रारंभ से ही मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण विषय रहा है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यावहारिक रूप से किसी व्यक्ति का अध्ययन करने की एक ऐसी व्यवस्थित विधि है, जिसके द्वारा किसी प्राणी को समझा जा सकता है। उसके बारे में निर्णय लिया जा सकता है, अर्थात एक व्यक्ति का बुद्धि स्तर क्या है, उसकी किन–किन विषयों में रुचि है, वह किस क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है। वह समाज के लोगों के साथ समायोजन स्थापित कर सकता है या नहीं, उसके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएं क्या–क्या हैं? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर हमें प्राप्त करना हो तो इसके लिए विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा न केवल व्यक्ति का अध्ययन करना ही संभव है, अपितु विभिन्न विशेषताओं के आधार पर उसकी दूसरे व्यक्तियों से तुलना भी की जा सकती है। जिस प्रकार, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं में परीक्षण किए जाते हैं, उसी प्रकार मनोविज्ञान में भी परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। एक रसायनशास्त्री जितनी सावधानी से कोई नमूना लेकर उसका परीक्षण करता है, उतनी ही सावधानी से एक मनोवैज्ञानिक भी चयनित व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण करता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानकीकृत एवं नियंत्रित स्थितियों का वह विन्यास है जो व्यक्ति से अनुक्रिया प्राप्त करने के लिए उसके सामने पेश किया जाता है जिससे वह पर्यावरण की मांगों के अनुकूल प्रतिनिधित्व करने वाले व्यवहार का चयन कर सकें। आज हम बहुत सी ऐसी परिस्थितियों एवं अवसरों के विन्यास को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अन्तर्गत सम्मिलित कर लेते हैं जो किसी भी प्रकार की क्रिया चाहे उसका सम्बन्ध कार्य निष्पादन से हो या न हो, करने की विशेष पद्धति का प्रतिपादन करती है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की एक ऐसी मानकीकृत (Standardized) और व्यवस्थित पद्धति है जो विश्वसनीय तथा वैध होती है। परीक्षण में व्यवहार मापन के लिए जो प्रश्न होते हैं। वे शाब्दिक (Verbal) और अशाब्दिक (non-verbal) दोनों प्रकार के होते हैं। परीक्षणों के माध्यम से व्यवहार के विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं जैसे उपलब्धियों, रुचियों, योग्यताओं, अभिक्षमताओं तथा व्यक्तित्व शीलगुणों का परिमाणात्मक एवं गुणात्मक अध्ययन तथा मापन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे–

1. बुद्धि परीक्षण
2. अभिवृत्ति परीक्षण
3. अभिक्षमता परीक्षण
4. उपलब्धि परीक्षण
5. व्यक्तित्व परीक्षण आदि।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के जन्म का श्रेय दो फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिकों एस्क्विलरोल (Esquirol, 1772-1840) तथा सैगुइन (Seguin, 1812-1880) को जाता है, जिन्होंने न केवल मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की नींव रखी बल्कि इन परीक्षणों से सम्बद्ध सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया। भारत में मानसिक परीक्षणों का विधिवत अध्ययन सन 1222 में प्रारम्भ हुआ। लाहौर के एफ.जी. कॉलेज, के प्राचार्य सी.एच. राइस ने सर्वप्रथम भारत में परीक्षण का निर्माण किया। यह एक बुद्धि परीक्षण था, जिसका नाम था– 'Hindustani Binet performance point scale.'

मनोवैज्ञानिक परीक्षण की परिभाषा

कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोवैज्ञानिक परीक्षण की परिभाषा इस प्रकार से दी गई है–

1. **फ्रीमैन (1965) के अनुसार,** "मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत यन्त्र है, जिसके द्वारा समस्त व्यक्तित्व के एक पक्ष अथवा अधिक पक्षों का मापन शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य प्रकार के व्यवहार माध्यम से किया जाता है।"
2. **मन (1967) के अनुसार,** "मनोवैज्ञानिक परीक्षण वह परीक्षण है जो किसी समूह से संबंधित व्यक्ति की बुद्धि व्यक्तित्व, अभिक्षमता एवं उपलब्धि को व्यक्त करती है।
3. **टाइलर (1969) के मतानुसार,** "मनोवैज्ञानिक परीक्षण वह मानकीकृत परिस्थिति है, जिससे व्यक्ति का प्रतिदर्श व्यवहार निर्धारित होता है।"
4. **क्रानबैक (1971) के मतानुसार,** "एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण वह व्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा दो या अधिक व्यक्तियों के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।"
5. **एनास्टसी (1976) के मत में,** "एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक रूप में व्यवहार प्रतिदर्श का वस्तुनिष्ठ तथा मानकीकृत मापन है।"
6. **ब्राउन के अनुसार,** "व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की व्यवस्थित विधि ही मनोवैज्ञानिक परीक्षण है।"

टिप्पणी

मनोवैज्ञानिक परीक्षण का उद्देश्य

किसी भी परीक्षण का कोई न कोई उद्देश्य होता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण के भी कुछ विशेष उद्देश्य हैं जिनका विवेचन निम्न बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. वर्गीकरण एवं चयन
2. पूर्वकथन
3. मार्गनिर्देशन
4. तुलना करना
5. निदान
6. शोध

1. वर्गीकरण एवं चयन–

प्राचीन समय से ही विद्वानों की ऐसी मान्यता रही है कि सभी व्यक्ति केवल शारीरिक आधार पर ही नहीं बल्कि मानसिक आधार पर भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। दो व्यक्ति किसी भी प्रकार से समान मानसिक योग्यता वाले नहीं हो सकते। उनमें कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य देखने को मिलती है। गाल्टन ने अपने अनुसंधानों के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति मानसिक योग्यता, अभिवृत्ति, रुचि, क्षमता इत्यादि में दूसरों से भिन्न होता है। जीवन के विविध क्षेत्रों में परीक्षणों के माध्यम से व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाना संभव है। अतः मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में शारीरिक व मानसिक विभिन्नताओं के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण करना परीक्षण का एक प्रमुख उद्देश्य है। केवल वर्गीकरण ही नहीं बल्कि किसी भी व्यवसाय अथवा सेवा विशेष में कौन–सा व्यक्ति सर्वाधिक उपयुक्त होगा, इसका निर्धारण करने में भी परीक्षणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए शैक्षिक, औद्योगिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत चयन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि मानसिक विभिन्नताओं के आधार पर प्राणियों को वर्गीकृत करना तथा विविध व्यवसायों में योग्यतम व्यक्ति का चयन करना मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रमुख उद्देश्य है।

2. पूर्वकथन–

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का दूसरा मुख्य उद्देश्य 'पूर्वकथन' करना है। यह पूर्वकथन विभिन्न प्रकार के कार्यों के संबंध में भी होता है। पूर्वकथन से तात्पर्य है किसी भी व्यक्ति अथवा कार्य के वर्तमान अध्ययन के आधार पर उसके भविष्य के संबंध में विचार प्रकट करना। अतः जब विविध प्रकार के व्यावसायिक संस्थानों में कार्यरत कर्मचारियों के संबंध में एवं शैक्षणिक संस्थाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के संबंध में पूर्वकथन की आवश्यकता होती है तो प्रमाणीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

(i) उपलब्धि परीक्षण

(ii) अभिक्षमता परीक्षण

(iii) बुद्धि परीक्षण

(iv) व्यक्तित्व परीक्षण इत्यादि।

टिप्पणी

उदाहरणस्वरूप

- जैसे कि किसी व्यक्ति के विषय में यदि यह जानना है कि यह व्यक्ति इंजीनियरिंग के क्षेत्र में सफल होगा या नहीं इस संबंध में पूर्व कथन करने के लिए अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाएगा।
- इसी प्रकार से यदि यह जानना है कि अमुक विद्यार्थी गणित जैसे विषय में उन्नति करेगा या नहीं तो इस संबंध में पूर्व कथन करने के लिए उपलब्धि परीक्षणों का सहारा लिया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा किसी भी व्यक्ति की बुद्धि, रुचि, उपलब्धि, रचनात्मक एवं समायोजन क्षमता, अभिक्षमता तथा अन्य गुणों के संबंध में आसानी से पूर्वकथन किया जा सकता है।

3. मार्गनिर्देशन–

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का तीसरा प्रमुख उद्देश्य है– व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन प्रदान करना। इन परीक्षणों की सहायता से आसानी से यह बताया जा सकता है कि किस व्यक्ति को कौन सा व्यवसाय करना चाहिए अथवा किस छात्र को कौन से विषय का चयन करना चाहिए।

उदाहरणस्वरूप

- जैसे यदि कोई व्यक्ति "अध्यापन अभिक्षमता परीक्षण" के आधार पर उच्च अंक प्राप्त करता है, तो उसे अध्यापक बनने के लिए निर्देशित किया जा सकता है अथवा उसका मार्गदर्शन किया जा सकता है।
- इसी प्रकार से यदि किसी विद्यार्थी का बुद्धि लब्धि स्तर अच्छा है तो उसका मार्ग निर्देशन किया जा सकता है कि वह विज्ञान विषय का चयन करें।

अतः कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण न केवल पूर्वकथन करने में अपितु निर्देशन करने में भी विशेषतः व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

4. तुलना करना–

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का चौथा उद्देश्य है– तुलना करना। संसार के सभी प्राणी अपनी शारीरिक संरचना एवं व्यवहार के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होते हैं। अतः व्यक्ति अथवा समूहों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग के माध्यम से सांख्यिकीय विधियों के उपयोग पर बल दिया गया है।

5. निदान–

शिक्षा के क्षेत्र में तथा जीवन के अन्य विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्येक मनुष्य को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का एक प्रमुख उद्देश्य इन समस्याओं का निदान करना भी है। जिन परीक्षणों के द्वारा विषय

टिप्पणी

संबंधी कठिनाइयों का निदान किया जाता है उन्हें "नैदानिक परीक्षण" कहा जाता है। जिस प्रकार से एक्स–रे, थर्मामीटर, माइक्रोस्कोप इत्यादि यंत्रों का प्रयोग चिकित्सात्मक निदान में किया जाता है, उसी प्रकार शैक्षिक, मानसिक एवं संवेगात्मक कठिनाइयों के निदान के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरणस्वरूप– जैसे कभी–कभी कोई विद्यार्थी किन्हीं कारणवश शिक्षा में पिछड़ जाता है, ऐसी स्थिति में अध्यापक एवं अभिभावकों का कर्तव्य है कि वे विभिन्न परीक्षणों के माध्यम से उसके पिछड़ेपन के कारणों का न केवल पता लगाएं बल्कि उनका निराकरण करने के लिए भी यथासंभव प्रयास करें।

इसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति किस मानसिक रोग से ग्रस्त है, उसका स्वरूप कैसा है? रोग कितना गंभीर है, उसके क्या कारण हैं एवं किस प्रकार से उसकी रोकथाम की जा सकती है, इन सभी बातों की जानकारी भी समस्या के अनुरूप प्राप्त की जा सकती है और उनका निदान किया जा सकता है।

अतः कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की समस्याओं के निदान एवं निराकरण दोनों में ही मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की भूमिका प्रमुख होती है।

6. शोध–

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाले विभिन्न शोध कार्यों में सहायता प्रदान करना है। जिस प्रकार से भौतिक विज्ञान में यंत्रों के माध्यम से अन्वेषण का कार्य किया जाता है, उसी प्रकार मनोविज्ञान में परीक्षणों के शोध हेतु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। परीक्षणों के द्वारा अनुसंधान हेतु आवश्यक आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि मनोविज्ञान के बढ़ते हुए अनुसंधान के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक यंत्र साधन अथवा उपकरण के रूप में कार्य करते हैं।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार अथवा प्राणी के दैनिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही पहलुओं के वस्तुनिष्ठ अध्ययन की एक प्रमाणीकृत (Standardized) और व्यवस्थित विधि है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विशेषताएं

मनोवैज्ञानिक परीक्षण में निम्न विशेषताओं का होना आवश्यक है–

1. **विश्वसनीयता**– एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इसमें विश्वसनीयता हो। विश्वसनीयता से तात्पर्य है कि कोई भी परीक्षण किसी व्यक्ति को समान परिस्थितियों में अनेक बार दिया जाए और प्रत्येक बार उसे समान अंक प्राप्त हों।
2. **उद्देश्यपूर्ण**– एक अच्छा मनोवैज्ञानिक परीक्षण उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। यदि कोई परीक्षण बिना उद्देश्य के बनाया जाता है तो वह परीक्षण व्यर्थ होता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण को मानव व्यवहार के किसी पक्ष की जानने अथवा समझने के लिए या मानव व्यवहार के किसी पक्ष को जानने अथवा समझने के लिए या मानव व्यवहार की किसी समस्या के निदान के लिए बनाया जाना चाहिए।

टिप्पणी

3. **वस्तुनिष्ठता**– मनोवैज्ञानिक परीक्षण में वस्तुनिष्ठता का होना अत्यंत आवश्यक है। वस्तुनिष्ठता से अभिप्राय है कि परीक्षण के परिणाम पर व्यक्ति की इच्छा, रुचि अथवा पूर्वाग्रह का कोई भी प्रभाव न पड़े। परीक्षण का मूल्यांकन चाहे कोई भी परीक्षक क्यों न करे, उसके परिणाम में कोई अंतर न आए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर स्पष्ट और निश्चित हो। इस विषय में परीक्षाओं में कोई भी मतभेद न हो। अतः मनोवैज्ञानिक परीक्षण अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ हो।
4. **व्यापकता**– व्यापकता से तात्पर्य है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण जिस गुण का मापन करने के लिए तैयार किया गया है, वह उसके सभी पक्षों का ठीक प्रकार से मापन करे।
5. **तुलनात्मकता या विभेदकारिता**– यह एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विशेषता है कि वह दो या दो से अधिक व्यक्तियों में विभेद कर सके।
6. **सरल प्रशासन**– एक अच्छा मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रशासन के दृष्टिकोण से सरल होना चाहिए। परीक्षण का आकार, रूप, परीक्षण में रखे गए प्रश्न, प्रयोज्यों को दिए जाने वाले दिशानिर्देश, परीक्षण का मूल्यांकन, आदि इस प्रकार से होने चाहिए कि उनका सरलतापूर्वक प्रशासन किया जा सके।
7. **रोचकता**– एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण का रोचक होना आवश्यक है। रोचक परीक्षण परीक्षक और परीक्षार्थी दोनों को उत्तम तरीके से कार्य करने में सहायक सिद्ध होता है।
8. **मितव्ययता**– मितव्ययता से तात्पर्य है कि परीक्षण को प्रशासित करने में समय, धन और शक्ति अथवा परिश्रम कम से कम लगे। मनोवैज्ञानिक परीक्षण में मितव्ययता होनी आवश्यक है जिससे कि उसका फलांकन और मूल्यांकन करने में व्यक्ति को कम मेहनत करनी पड़े।
9. **भविष्य कथन**– एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण में भविष्य कथन की योग्यता का होना आवश्यक है, जिससे कि परीक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर व्यक्ति के भावी जीवन या भावी सफलता के विषय में बताया जा सके अथवा भविष्यवाणी की जा सके।
10. **मानकीकरण**– एक प्रभावी मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानकीकृत होना चाहिए। मानकीकृत परीक्षण से तात्पर्य है ऐसा परीक्षण जिसके मान निर्धारित हों। जिसको प्रशासित करने में समरूप विधियों का प्रयोग किया गया हो।
11. **सर्वमान्यता**– मनोवैज्ञानिक परीक्षण जिस आयु वर्ग, कक्षा–वर्ग, भौगोलिक क्षेत्र तथा जनसंख्या के लिए तैयार किया गया हो, वह उनका सही रूप में मापन करता हो। अतः परीक्षण सर्वमान्य स्वीकृति वाला होना चाहिए।

4.5.2 प्रवेश परीक्षाओं का सकारात्मक उपयोग

प्रवेश परीक्षा एवं प्रतियोगी परीक्षाओं में कोचिंग संस्थान किसी भी प्रतियोगी परीक्षा के लिए छात्रों को तैयार करने मे निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। वे विद्यार्थियों को इस प्रकार तैयार करते हैं कि वह न केवल निर्धारित समय के अन्दर सारे प्रश्नों को हल कर देते हैं बल्कि रिवीजन भी कर सकते हैं। इसके लिए प्रतिभा के साथ–साथ छात्रों

को स्मार्ट, ट्रिकी एवं धैर्यवान होने की आवश्यकता होती है। ऐसी तमाम परिस्थितियों के लिए कोचिंग संस्थान छात्रों को बेहतर तैयार करते हैं।

टिप्पणी

किसी प्रतियोगिता परीक्षा में सफल होने के लिए कड़ी मेहनत के साथ –साथ आज कोचिंग संस्थानों की भूमिका में अच्छा खासा परिवर्तन हुआ है। एक समय था जब अभिभावक बच्चों को कोचिंग में नहीं भेजते थे क्योंकि उस समय कोचिंग में भेजना कमजोरी का प्रतीक माना जाता था। पहले वही बच्चे कोचिंग कलास में जाते थे जो पढ़ाई में कमजोर होते थे, जैसे–जैसे प्रतियोगिता बढ़ी और कठिन से कठिन होती चली गयी तो लोगों ने इस बात को महसूस किया कि स्वाध्याय के साथ कोचिंग भी जरूरी है। समय के साथ कोचिंग संस्थानों के छात्रों की सफलता के प्रतिशत में भी वृद्धि हुई। आज इंजीनियरिंग, प्रबन्धन, बैंकिंग, मेडिकल आदि सभी क्षेत्रों में सफलता के लिए छात्रों की कोचिंग संस्थानों पर बढ़ती निर्भरता इस बात की ओर इशारा करती है कि प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता के लिए उनके द्वारा दिये गये मार्गदर्शन का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। आज वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के लिए समय प्रबन्धन बहुत जरूरी है। समय प्रबन्धन में कोचिंग संस्थान निर्णायक भूमिका निभाते हैं

1. अधिकतर कोचिंग संस्थान परीक्षा की तैयारी करवाने के साथ–साथ समय के सदुपयोग की भी ट्रेनिंग देते हैं। ताकि छात्र परीक्षा की तैयारी ठीक से करे और सभी विषयों को समान समय दें। अक्सर देखा गया हे बालक उन विषयों को अधिक समय देते हैं जिनमें उनकी रूचि होती है। लेकिन इसका खामियाजा उन्हें आगे भुगतना पड़ता है।
2. कोचिंग संस्थानों में समय पर कोर्स पूरा करना ही नहीं होता अपितु इसमें बच्चों को उनकी कमजोरियों से भी रूबरू कराना आवश्यक होता है। कोचिंग संस्थानों द्वारा कमजोरियों को दूर करने के लिए समय–समय पर सेमिनार, वन टू वन सेशन का आयोजन किया जाता है। साथ ही सेगमेंट के आधार पर शिक्षण–अधिगम कार्य किया जाता है। इस दौरान उन विषयों पर विशेष ध्यान दिया जाता है जिसमें वह कमजोर है अथवा जिसमें उसकी रूचि कम होती है।
3. प्रतियोगी परीक्षाओं में सभी विषयों की तैयारी करनी पड़ती है तथा सभी विषयों पर बराबर ध्यान देना पड़ता है जो एक कठिन कार्य है। ऐसा माना जाता है कि विद्यार्थियों को इस बात का पता नहीं होता है कि किस विषय को कितना समय दे। लेकिन यदि छात्र कोचिंग में जाता है तो शुरू से ही इस बात के लिए प्रेरित किया जाता है कि परीक्षा में सफलता के लिए सभी प्रश्नों को हल करने की कोशिश करनी चाहिए।
4. अक्सर ऐसा देखा जाता है कि कुछ बालक परीक्षा भवन में जाकर नर्वस हो जाते हैं और पेपर खराब कर लेते हैं। ऐसे बच्चों को पहले से ही परीक्षा भवन का माहौल बनाकर उसे उसके तनाव से रूबरू करवा दिया जाए तो वह परीक्षा भवन में जाकर घबरायेगा नहीं इसलिए इस प्रकार के भय को निकालने के लिए कोचिंग संस्थान परीक्षा से पहले छात्रों के लिए क्लास टैस्ट अथवा टैस्ट सीरिज आदि का आयोजन करते हैं ताकि बालक के मन से परीक्षा का भय निकल जाए।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के जन्म का श्रेय किस फ्रांसीसी वैज्ञानिक को दिया जाता है?

   (क) एस्क्विलरोल (ख) सैगुइन

   (ग) क व ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

8. भारत में मानसिक परीक्षणों का विधिवत अध्ययन कब आरंभ हुआ था?

   (क) 1911 (ख) 1922

   (ग) 1933 (घ) 1944

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (ग)
4. (क)
5. (घ)
6. (ख)
7. (ग)
8. (ख)

4.7 सारांश

बालकों में शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक आदि कई प्रकार के भेद पाये जाते हैं। संसार में कोई भी व्यक्ति एक–दूसरे से मिलता जुलता नहीं होता है। शारीरिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि मानसिक दृष्टि से भी उनमें काफी भेद पाये जाते हैं। वास्तव में कोई भी दो व्यक्तियों का एक–सा न होना वैयक्तिक विविधता (विभिन्नता) कहलाता है। प्राचीनकाल एवं मध्यकाल में वैयक्तिक विभिन्नताओं का अर्थ किसी विषय पर अधिकार करने की योग्यता से लिया जाता था। वर्तमान काल में शैक्षिक योग्यता के अतिरिक्त वंशानुक्रम, वैयक्तिक विकास, मानसिक विकास, चारित्रिक विकास, रुचि, व्यक्तित्व की विशेषताओं एवं अन्य योग्यताओं पर भी ध्यान दिया जाता है। वास्तव में वैयक्तिक विभिन्नताएं परिणामात्मक तथ्य हैं और वे एक सातत्व के अनुसार वितरित होती हैं।

एक अध्यापक को शिक्षा हर एक बालक की बौद्धिक योग्यता के अनुसार देनी चाहिए। बहुधा अध्यापक अपने शिक्षण को मध्य वर्ग के (बुद्धि–लब्धि के अनुसार) बालकों के अनुसार बना लेते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शेष बालकों की, जो उच्च

या निम्न श्रेणी में आते हैं, उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। अतएव ऐसे बालक जो साधारण बालकों की श्रेणी में नहीं आते असफलता अनुभव करने लगते हैं।

टिप्पणी

अनौपचारिक शिक्षा कमजोर और पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षिक अवसर जुटाती है। नमनीयता अनौपचारिक शिक्षा की कुंजी है। इस शिक्षा में खुलापन होता है। दाखिले, पाठ्यक्रम, शैक्षिक स्थल, शिक्षा प्रणाली, प्रशिक्षण का समय और अवधि किसी पर भी रोक नहीं होती। इन्हें परिस्थितियों के अनुसार बदला जा सकता है। अनौपचारिक शिक्षा के कुछ उदाहरण हैं; खुले विद्यालय, खुले विश्वविद्यालय, खुला सिखाना और पत्राचार पाठ्यक्रम इत्यादि।

सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया शिक्षार्थियों अथवा अधिगमकर्ताओं के अधिगम तथा संज्ञानात्मक विकास पर दृष्टिपात करती है। किसी भी बच्चे का संज्ञानात्मक विकास उसके परिवार के सदस्यों, समुदाय में रहने वाले सगे–संबंधियों अथवा अन्य वयस्कों द्वारा होता है, जो सामाजिक व सांस्कृतिक प्रक्रिया द्वारा उसे समय–समय पर प्रभावित करते रहते हैं और उसके संज्ञानात्मक विकास को भली–भांति विकसित करने में मदद करते हैं। वे निर्देशन, परामर्श तथा सहयोगी क्रियाओं द्वारा बच्चों को सीखने का अवसर प्रदान करते हैं। ये अवसर पूर्ण रूप से बच्चे की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं जो कि औपचारिक व अनौपचारिक परिप्रेक्ष्य में उपस्थित होकर बच्चे को स्वयं तथा अन्य लोगों के साथ क्रिया करने में सहायता प्रदान करते हैं।

शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों में सीखने का उद्देश्य बुनियादी साक्षरता कौशल का विकास है। मूलतः, पढ़ने और लिखने का कौशल पत्र या लिखित रूप में प्रतीकों के प्रयोग के साथ विकसित किया जाता है। बोलने और सुनने के ये मूलभूत कौशल भाषा में पदों व ध्वनियों की साम्यता पर निर्भर करते हैं और ये क्षमता पारस्परिक प्रभाव कौशल के निर्माण से विकसित होती हैं। अनुदेशन हेतु इस्तेमाल होने वाली भाषा में शिक्षार्थी बोलते हैं या समझते हैं तो उनमें पढ़ने और लेखन के कौशल तेजी से और अधिक सार्थक तरीके से विकसित होते हैं।

शिक्षा प्रदान करने वाला कारक शिक्षक होता है और शिक्षा प्राप्त करने वाला शिक्षार्थी। बालक की शिक्षा का मुख्य साधन पाठ्यक्रम ही है। बिना पाठ्यक्रम की सहायता के अध्यापक अध्यापन कार्य नहीं कर सकता और न शिक्षार्थी के व्यक्तित्व के विकास में कोई सहायता दे सकता है। वनिंघम के अनुसार अध्यापक एक कलाकार है, उसकी तूलिका के रूप में कला के निर्माण में सहायक एवं पाठ्यक्रम ही है। इसी तूलिका को लेकर यह बालक को अपने आदर्शों के अनुरूप रंग दे सकता है। इस कार्य के लिए उसका कलागृह विद्यालय होता है। पाठ्यक्रम द्वारा बालक तथा समाज दोनों की प्रगति होनी चाहिए।

अध्यापन एक लक्ष्य आधारित गतिविधि है। एक अच्छा शिक्षक हमेशा अपने या अपने लक्ष्यों को एक उचित विधि से रेखांकित करता है और अपने लक्ष्यों को न्यायोचित ठहराता है। शिक्षक को अपने उन लक्ष्यों को पाने के लिए विभिन्न भूमिकाओं को निभाना पड़ता है जो उसने निर्धारित किए होते हैं और वे ऐसे लक्ष्य होते हैं जो यह सुनिश्चित करते हैं कि छात्र प्रभावी ढंग से सीखें।

टिप्पणी

शिक्षण महज शिशिक्षुओं को शिक्षा और कौशल प्रदान करने की एक प्रक्रिया है। औपचारिक रूप से, शिक्षण की परिभाषा लोगों की जरूरतों, अनुभवों और अनुभूतियों पर ध्यान देने, तथा विशेष विषयों को सीखने में उनकी सहायता करने के विशिष्ट प्रयासों के रूप में की जा सकती है। शिक्षण की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि शिक्षण का मुख्य लक्ष्य शिशिक्षा है। वस्तुतः शिक्षण और शिशिक्षा एक दूसरे के सहचर हैं। यदि शिक्षण शिशिक्षु को वांछित कौशल प्रदान न कर सके, तो इसे एक निरर्थक प्रक्रिया या कार्य माना जाता है। इसलिए, शिक्षण का मुख्य अभिप्रेत शिशिक्षा है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानकीकृत एवं नियंत्रित स्थितियों का वह विन्यास है जो व्यक्ति से अनुक्रिया प्राप्त करने के लिए उसके सामने पेश किया जाता है जिससे वह पर्यावरण की मांगों के अनुकूल प्रतिनिधित्व करने वाले व्यवहार का चयन कर सकें। आज हम बहुत सी ऐसी परिस्थितियों एवं अवसरों के विन्यास को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अन्तर्गत सम्मिलित कर लेते हैं जो किसी भी प्रकार की क्रिया चाहे उसका सम्बन्ध कार्य निष्पादन से हो या न हो, करने की विशेष पद्धति का प्रतिपादन करती है।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **अभिवृत्ति** – अभिवृत्ति से तात्पर्य है एक सामान्य स्ववृति जो एक समूह अथवा एक संस्था के प्रति होती है।
- **वैयक्तिक विविधता** – अलग–अलग स्त्री–पुरुषों के व्यक्तित्व में पाई जाने वाली विभिन्नता।
- **समायोजन** – किसी कार्य को व्यवस्थित तरीके से योजना बनाकर करना।
- **प्रोजेक्ट प्रणाली** – प्रोजेक्ट पूरे मन से किया जाने वाला एक उद्देश्यपूर्ण कार्य है जो समाज द्वारा संपन्न होता है।
- **मान्टेसरी प्रणाली** – यह छोटे बच्चों को शिक्षित करने की एक लोकप्रिय प्रणाली है।
- **सुविधाप्रदाता** – सुविधाप्रदाता वह होता है जो किसी सरलीकरण की गतिविधि में संलग्न होता है।

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. वैयक्तिक विविधता से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. बेसिक शिक्षा प्रणाली के जन्मदाता कौन हैं? इस प्रणाली का क्या महत्व है?
3. मातृभाषा से आप क्या समझते हैं? परिभाषित कीजिए।
4. छात्रों की शिक्षण शैली में शिक्षक की क्या भूमिका है?
5. शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक परीक्षण का अर्थ बताते हुए परिभाषा दीजिए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर शिक्षार्थियों की विविधता का उल्लेख कीजिए।
2. छात्रों की शिक्षण शैली और सीखने की शैली के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
3. शिक्षक और शिक्षार्थी केंद्रित शिक्षण के दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।
4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का विश्लेषण कीजिए।
5. प्रवेश परीक्षाओं में शिक्षण संस्थानों का क्या योगदान है? व्याख्या कीजिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

ओर्मरॉड, जीन एलिस, *ह्यूमैन लर्निंग : थिअरीज, प्रिंसिप्ल्स एंड एजुकेशन ऐप्लिकेशंस,* न्यू यॉर्क : मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी।

सैंट्रॉक, जॉन डब्ल्यू., 2001, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* न्यू यॉर्क : मैकग्रॉ हिल्स।

अनीता ई., 1998, *एजुकेशनल साइकॉलॉजी,* मेसाच्युसेट्स : एलिन एंड बेकन।

ड्रिस्कॉल, एम.पी., 2005, *साइकॉलॉजी ऑफ लर्निंग फॉर इन्स्ट्रक्शन,* टोरंटो : पीयर्सन।